ॐ

# जैनहितैषी ।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और
धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

## मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक— नाथूराम प्रेमी ।

दशवाँ भाग । | कार्तिक, श्रीवीर नि० संवत् २४४० । | पहला अंक ।

विषयसूची ।



पत्रव्यवहार करनेका पता—
श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।



# जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

१० वाँ भाग] कार्तिक, श्री० वी० नि० सं० २४४०। [१ ला अंक

## विद्यार्थीके जीवनका क्या उद्देश्य होना चाहिए?

जिन लोगोंने मनुष्यके जीवन पर विचार किया है वे सब इस बातपर सहमत है कि बहुधा मनुष्य किसी वस्तुकी इच्छा करके उसके लिए उद्योग करते हैं किन्तु परिणाम उसके विपरीत होता है। क्योंकि प्रकृतिकी कोई शक्ति ऐसी नहीं जो पूरी तरह हमारे आधीन हो बहुतसी ऐसी शक्तियाँ है जो लगातार अपना कार्य किए जाती हैं परन्तु कभी कभी हमारे कामोंमें बाधा डाल देती है। इस कारणसे कभी कभी जिस कामके लिए मनुष्य उद्योग करता है उसीके विपरीत परिणाम दृष्टिगोचर होता है। यही चीज है, जिसने दैव, भाग्य, और लाचारीके खयालको लोगोंके दिलोंमें दृढताके साथ बिठा दिया है। जितनी ही लोगोंको अपने इरादों और कामोंमें सफलता होती जाती है उतना ही उनका उत्साह और कार्यसम्पादनका शौक बढ़ता जाता है। मानवी शक्ति और बुद्धि पर उनको एक प्रकारका भरोसा होता जाता है और उनका जीवन संसारके अनुरूप होता जाता है। परन्तु

जब कामोंमें हानि पर हानि होती है, उद्योग और परिश्रम अपना फल नहीं दिखाते या यह कि मनुष्य ऐसी बातोंके लिए उद्योग करता है जिनका प्राप्त करना सम्भव नहीं, तो अपनी शक्ति और मानवी बुद्धि पर भरोसा कम होते होते उसको इस बातका श्रद्धान हो जाता है कि मनुष्य एक कलके समान है। अपनी ओरसे अधिक उद्योग और परिश्रम करना व्यर्थ है। वह भाग्यका उपासक होकर एकान्त-वास करने लगता है और या तो जीवनकी कठिनाईयोको सतोष-पूर्वक सहन करता है या भाग्यको उलहना देता है। उद्योग और परिश्रम उसके लिए ऐसे शब्द हैं जिनका मनुष्यसे कुछ सम्बन्ध नहीं। जब यह विचार जातिके उच्च पुरुषोंके दिलोंपर अधिकार कर लेता है तब लोगोंकी मानसिक और मस्तकसम्बन्धी उन्नतिमे शिथिलता पैदा हो जाती है। जीवनकी घटनाओंसे उन्हें कुछ रुचि नहीं रहती। संसारसे उनको इतना भी सम्बन्ध नहीं रहता जितना ज्योतिषियोका तारागणके भ्रमणसे रहता है।

यदि पूर्ण उद्योग करने पर भी निराशा हो जाती है तो उत्तम मनुष्य तो एक प्रकारकी निद्रामे अचेत रहते है—उनका दूसरों पर कुछ असर नहीं पडता और यदि पड़ता है तो केवल इतना ही कि और लोग भी उनके समान ध्यानस्थ होना चाहते हैं। हॉ, साधारण मनुष्य जो न तो तत्त्वज्ञानी हैं और न जगतके रहस्यसे परिचित है, संसारिक कार्योंमें लगे रहते है और उनकी दूरदर्शिता और उनका साहस जो कुछ हो केवल इतना ही है कि जो कुछ उनके बापदादा करते आए है धीरे धीरे अवकाश मिलने पर उन्हीं कामोंको किए जाएँ। जगतकी गतिको वे स्थिर समझते हैं। बुराई, भलाई, पुण्य, पाप, धर्म, अधर्म आदि उनकी सब चीजे एक स्थान पर खड़ी रहती हैं। अंतर

केवल इतना होता है कि चूंकि वे कोई क्रिया नहीं करते इस कारण उनकी सब चीजें सड़ती जाती है और उनकी दशा धीरे धीरे खराब होती जाती है।

यही विचार नवयुवकों पर भिन्न भिन्न प्रभाव डालता है। उनके निकट भी उत्तम संकल्प और दृढ़ विचार निरर्थक वस्तुएँ हैं। अतएव वे वर्तमान समयको ही धन्य समझते हैं। न वे किसी धर्मका पालन करते हैं, न ज्ञान और सिद्धान्तका उनपर शासन है और न वे किसी रीतिरिवाजको मानते हैं। अतएव न तो उनके जीवनका कोई उद्देश्य होता है और न उनका कोई आदर्श होता है जो सदैव उनके सम्मुख रहे। जो बात किसी समय उनके मनमें आई, चाहे वह सच्चरित्रताके अनुसार अच्छी हो चाहे बुरी, संसारको उपयोगी हो अथवा हानिकारक, उचित हो अथवा अनुचित, वे उसे तत्काल कर डालते हैं। उसके परिणामपर विचार करना तो बड़ी बात है, वे यह भी नहीं जानते कि परिणाम कोई वस्तु भी है या नहीं। निन्द्य पुरुषोंपर इस विचारका यह प्रभाव पड़ता है कि वे अपनी दशाके सुधारनेको एक व्यर्थ बात समझकर केवल अपने जीवनको सुख चैनसे बिताना चाहते हैं। उनकी रायमे श्रमसे और धीरे धीरे अपने कर्तव्यका पालन करनेसे कष्टके सिवा और कुछ फल नहीं होता। इच्छित पदार्थोंकी प्राप्तिके लिए जो मार्ग उन्हें सबसे सरल जान पड़ता है वे उसे ही ग्रहण करते हैं। गरज यह कि श्रम और उद्योगसे उत्तम और उपयोगी फल प्राप्त करनेका विचार जिस समय मनुष्योंके दिलोंमेंसे निकल जाता है उस समय जो परिणाम होता है वह बड़ेसे लेकर छोटे तक सबके लिए हानिकारक है। मनुष्य एक विचित्र कलकी तरह चल रहा है, इस विचारके अनुसार कार्य करनेसे वास्तवमें मनुष्य एक विचित्र कल हो जाता है।

परन्तु इसमें भी सदेह नहीं कि उसके मनकी इच्छाएं, उसके दिलकी उमगें, सुधार और उन्नतिके विचार, दूसरोंका दुख दूर करनेकी अभिलाषा, आदर, सन्मान अथवा धनप्राप्तिकी आशाएं सब घुलकर नष्ट हो जाती हैं। असफलता उसके मनको मुरझाकर मानवी उद्योगको निरर्थक सिद्ध करती है। इसी भावको कवियों और बुद्धिमानोंने सैकड़ों स्थानोंपर बड़ी उत्तमतासे पुष्ट किया है। ऐसी ही निराशा प्रायः उन लोगोंको होती है जो अपनी सतानको, अपने सम्बन्धियोंको अथवा अपनी जातिको एक अभिप्रायसे शिक्षा दिलवाना चाहते हैं परतु जो परिणाम होता है वह यदि विपरीत नहीं तो उससे भिन्न अवश्य होता है। कुछ लोग अपने बच्चोंको केवल इस लिए शिक्षा दिलाते है कि वे धर्मशास्त्र पढ़कर बडे धर्मज्ञ और धार्मिक नेता हो जाएँ; परन्तु कभी कभी ऐसा भी होता है कि वे बालक बड़े होकर महान् धूर्त और पापी निकलते हैं। बहुतसे मनुष्य अपनी संतानको अँगरेजी इसलिए पढ़ाते है कि लड़का पढ़ लिखकर रुपया पैदा करेगा और मा बापकी सहायता करेगा; किन्तु परिणाम यह होता है कि वह उनकी सहायता तो क्या करेगा उलटा कभी कभी स्वय उनपर भार हो जाता है। किसी किसी की यह इच्छा होती है कि मेरे लडके अँगरेजी पढ़ लें जिससे उनकी अँगरेजो तक गति हो जाए और उनके सहारेसे हमारा घराना उन्नति करे; परन्तु सम्भव है कि लड़केको इस प्रकारके व्यवहारसे घृणा हो जाए। हमारे इस बातके कहनेका अभिप्राय यह है कि जो उद्देश्य मातापिता अथवा अध्यापक या शिक्षाप्रेमी शिक्षासे रखते हैं वह बहुत कम सिद्ध होता है। वास्तवमे वह उद्देश्य शिक्षाका होना ही न चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक मनुष्यका शिक्षा दिलानेसे कोई मुख्य अभिप्राय जरूर होता है। एक

विकालतके लिए पढता है, दूसरा डाक्टरीके लिए, तीसरा अध्यापकीके लिए, चौथा जमींदारीका प्रबन्ध करना चाहता है, पाँचवाँ अपनी शिक्षासे व्यापारमें लाभ उठाना चाहता है। ऐसे ही और बहुतसे काम हैं। जनसाधारणका यही विचार है कि विद्यार्थीके जीवनका यही उद्देश्य है कि वह अधिक धन और मान प्राप्त करे। यह उद्देश्य प्रारम्भसे विद्यार्थीके इतना सन्मुख नहीं रहता जितना उसके माता पिताके।

अब प्रश्न यह है कि आजीविकाका प्राप्त करना विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य होना चाहिए या नहीं?

(२)

इसमें संदेह नहीं कि विद्यार्थीको पढते समय यह खयाल बहुत कम होता है कि जो कुछ मै पढ़ता हूँ अथवा सीखता सोचता या लिखता हूँ उसका असली अभिप्राय यह है कि मेरे घर इतना सोना चाँदी हो जाए अथवा इतना माल असबाब जमा हो जाए; परन्तु मातापिताके दिलमें इसका विचार शुरूसे मौजूद रहता है। इसका कारण यह नहीं कि वे स्वार्थी अथवा लोभी है। सम्भव है कि किसी दशामें यह बात हो; किंतु प्रायः ऐसा होता है कि जवान बूढोंकी अपेक्षा, पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा और धनवान निर्धनोकी अपेक्षा अधिक स्वार्थी होते है और अपने थोड़े सुखके लिए दूसरोंके अधिक सुखकी कुछ परवा नहीं करते। किन्तु इसका कारण यह हैं कि उन्होंने संसारमे अत्यंत शोकप्रद अनुभवके पश्चात् रुपयेका मूल्य और सासारिक धनकी आवश्यकताको समझा है। वे जानते है कि सबसे ज्यादह जरूरी चीज दौलत। है इसके विना क्या विद्या, क्या धर्म, क्या उत्तम विचार, क्या शुभ संकल्प सब तुच्छ है।

वे यह भी देखते है कि अनेक व्यक्ति जो कल उनके समान थे, विद्याके कारण दिन दिन धन और सन्मानमें उनसे आगे बढ़ते चले जाते हैं। इसलिए वे भी सोचते हैं कि जिस लाभसे अर्थात् शिक्षासे हम वंचित रहे हैं, हमारी सन्तान उससे वंचित न रहे। उनको आशा है कि विद्याकी कृपासे हमारे पुत्र भी जगत्‌रूप नाटकशालामे बहु-तोंको धकेल कर आगे बढ जावेंगे। इसी कारण जब शिक्षासे कोई यथोचित आर्थिक लाभ नहीं होता तो ऐसे माता पिताओंको जो निराशा होती है वह स्वाभाविक है और इस कारण उनपर दूषण लगाना और उनको तुच्छ स्वार्थी कहना असभ्यता ही नहीं किन्तु मूर्खता भी है।

अतएव प्रत्येक विद्यार्थीका कर्तव्य है कि यदि उसके कुटुम्बका पालनपोषण उसपर निर्भर है और मातापिताको उसी सहारेकी आशा है, तो जिस योग्य रीतिसे हो सके उनका और अपना निर्वाह करनेका उद्योग करे। इसके सिवा यह कहना भी ठीक है कि प्रत्येक व्यक्तिकी आर्थिक उन्नतिसे सम्पूर्ण समाजकी उन्नति होती है। यद्यपि आजीविकाकी खोज करना उसका कर्तव्य है किन्तु विद्यार्थी होनेके कारण केवल धन प्राप्त करने अथवा आजीविकाकी खोज करनेको जीवनका उद्देश्य बनाना विद्यार्थीका ही नहीं किन्तु मनुष्यका भी अनादर है। विचार कीजिए कि आजकल जगत्‌में विद्याका कितना आन्दोलन है। कितने शास्त्रोंकी प्रतिदिन रचना होती है। कौन-कौनसे सिद्धान्तोंका महत्त्व स्थापित होता जाता है। यदि इन तमाम बातोंका कारण धन-प्राप्ति ही है तो धिक्कार है! उस विद्यार्थीकी दशा शोचनीय है जो माघ और कालिदासके ग्रंथोंका अवलोकन करता है, सादी अथवा उमर-ख्यामके उच्च विचारोंको दृष्टिके सामने रखता है, शेक्सपियरके नाटकों मिल्टनकी ओजस्विनी कविताओं, अफलातून और केंटके सिद्धांतोंसे

लाभ उठा रहा है परन्तु इनके साथ ही यह खयाल करता जाता है कि इन सबका तात्पर्य यह है कि मेरे पास इतने रुपये आएँगे, मैं अच्छे अच्छे कपड़े पहनूँगा, गाडीपर सवार होऊँगा और उच्चाधिकारियोसे हाथ मिलाऊँगा। यदि कोई मनुष्य ऐसा नीच और मूर्ख हो जो ऐसे विचार रखता हो तो उसको इसके सिवा और क्या कह सकते है कि रे मूर्ख, तू तोल लिया गया, तू वजनमें कम निकला।

सार यह है कि धनप्राप्तिके लिए अपने जीवनको अर्पण कर देना तुच्छ उद्देश्य है। विद्यार्थीका यह उद्देश्य कदापि न होना चाहिए।

धन प्राप्त करना एक ऐसा काम है कि इसपर बहुतसी व्यक्तिओंका सुख और आजीविका निर्भर है। अतएव यदि केवल अपने सम्बन्धियोंके लाभके लिए आवश्यकतासे अधिक भी धनप्राप्त किया जाए तो प्रशंसनीय है किन्तु सब चीजोको छोड़कर धनको ही अपना रक्षक तथा आराध्यदेव समझना एक प्रकारका पाप है।

जिस तरह धन प्राप्त करना विद्यार्थीके जीवनका उद्देश्य नहीं हो सकता, उसी तरह भोगविलासोकी प्राप्ति करना भी उसका उद्देश्य न होना चाहिए। इनसे पृथक् रहना ही उसका सर्वोपरि धर्म है। यदि कोई ऐसी वस्तु है जो विद्यार्थीके साथ कदापि नहीं रहनी चाहिए तो वह भोगविलासकी इच्छा है। यह इच्छा देखनेमें बिलकुल मामूली जान पड़ती है किन्तु यह एक ऐसी जड़ है जिसकी शाखाओंसे असंख्यात अवगुण नित्य निकलते है। मैं नहीं समझता कि लोग किस कारणसे इस बातको सम्भव समझते हैं कि विद्यार्थीके साथ साथ आराम-तलबी भी रह सकती है। प्रत्येक मनुष्यके जीवनके लिए और विशेष कर विद्यार्थीके लिए आरामतलबीसे बढ़कर कोई हानिकारक वस्तु नहीं। आरामतलबी अधिकतर धनवानोंके पुत्रोंमें पाई जाती

है। इसका परिणाम केवल यह ही नही होता कि मनुष्य विद्या प्राप्त नहीं कर सकता किंतु और बहुतसी बातोंमें असफलीभूत होता है। वह प्रायः खानेपीने और रहनेसहनेमें दूसरोसे वढ़ चढ़कर खर्च करता है और रातदिन अपने यहॉ मूर्खों और अशिक्षितोंकी मंडली जोड़े रहता है। इस मंडलीमें या तो वे लोग होते हैं जिनको सोसायटीके नियमोंने आज्ञा दे दी है कि विना श्रम किये लोगोंके रुपयेको जिस तरह चाहें खर्च करें और अपने सुखके लिए दूसरोंके कष्टोंकी कुछ भी चिंता न करे, या वे लोग होते है जो निर्धन है किन्तु सुखप्राप्तिके लिये अपव्यय करते हैं, या वे लोग होते हैं जो दरिद्र होनेपर भी ऐसे धनवानोंकी मूर्खतासे लाभ उठाते है और उनके संग रहकर उनको बुराइयोंमें दृढ करते जाते हैं। ये तीन प्रकारके मनुष्य विद्यार्थियोंके समूहसे वाहर है; परन्तु ये विद्यार्थी समझे जाते है, इस कारण इनका इनके साथियोंपर बुरा प्रभाव पड़ता है।

विद्यार्थियोंमें चाहे वे किसी जाति अथवा किसी धर्मके हों, धनवान् हों, अथवा दरिद्री हों, वहुमूल्य रेशम मखमलके वस्त्र पहिने हों अथवा गाढ़ेगजीके लपेटे हों, किसी प्रकारका पक्षपात न होना चाहिए सबको समान दृष्टिसे देखना योग्य है। धर्म, कुल, जाति, घर, सम्पदाका कुछ भी विचार न करना चाहिए। जिन वस्तुओंके अभाव अथवा सद्भावका विद्यार्थियोंके श्रम और उद्योगसे कोई सम्बन्ध नही, उनके कारण कुछ विद्यार्थियोंका अधिक आदर करना और कुछका कम, यह अति निन्दनीय है। कोई सभ्य पुरुष ऐसा नही कर सकता। केवल दो वातें हैं जो हर समय और हर स्थानपर देखना चाहिए। एक भलाई और दूसरी योग्यता। ये ही दो चीजें है जिनको मिस्टर वर्कने कहा है कि ‘ हर जगह वड़ाई देनी चाहिए। ’ अतएव

विद्यार्थियोंमें इन दो बातोंके कारण तो बड़ाई छुटाई होना आवश्यक है। इनके बिना विद्यार्थीमें उन्नतिकी इच्छा होना कठिन है; पर इनके अतिरिक्त अन्य बातोंमें समानता होना जरूरी है। जिन लोगोंका इस ओर ध्यान नहीं है वे शिक्षा और सभ्यतासे अपरिचित है।

अभी तक तो हमने उन बातोंका जिक्र किया है जिन्हें विद्यार्थियोंको अपने जीवनका उद्देश्य नहीं बनाना चाहिए; पर अब प्रश्न यह है विद्यार्थीके जीवनका क्या उद्देश होना चाहिए। केवल सभ्य और शिक्षित सृष्टिमें ही नही किन्तु, अशिक्षित देशोंमें भी विद्यार्थीका जीवन एक विशेष उद्देश्यके लिए निर्णीत होता है। कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि विद्या क्या वस्तु है और क्या क्या विद्या किस किस अवस्थामे पढ़ना योग्य है; परन्तु यह बात सब जानते और मानते हैं कि हर प्रकारकी शिक्षाका अभिप्राय केवल एक होता है। वह मानवीय उन्नति है। मानवीय उन्नति कोई सन्देहजनक बात नहीं। ऐसे पुरुष बहुत कम होंगे जिन्होंने वह अवस्था न देखी होगी जब किसीके घर पुत्र उत्पन्न होता है तो मातापिताके मनमें अकथनीय अपार आनन्द होता है; परन्तु इतना प्रेम होनेपर भी वे बहुत थोड़ी ही अवस्थामें उसपर जीवनका भार डाल देते है। हमारे देशमें तो ३, ४ वर्षकी उमरमें ही उन्हें पाठशालादिमे बिठा देते हैं। यद्यपि ऐसी अवस्थामें शिक्षा देना अत्यन्त हानिकर है। कमसे कम ६, ७ वर्ष तक घर ही धीरे धीरे मातापिता द्वारा शिक्षा होनी चाहिए; किन्तु इससे इतना अवश्य जान पडता है कि मातापिताकी यह इच्छा होती है कि यथासम्भव उनकी सन्तानकी दशा अच्छी हो। इस कारणसे मैंने कहा है कि शिक्षाका अभिप्राय सदा उन्नत होता है। चाहे यह शिक्षा स्कूलमें दी जाए, चाहे पाठशालामें और चाहे घरपर। अतएव विद्यार्थीके जीवनका

मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि प्रतिदिन अपनी मानसिक और मस्तकसम्बन्धी शक्तिमें वृद्धि करे। परन्तु प्रत्येक मनुष्यके अधिकारमें यह बात नहीं है कि वह बड़ा विद्वान्, तत्त्ववेत्ता अथवा शिक्षक हो। ससारके और बहुतसे कार्य भी हैं जिनके करनेमें उसके समयका बड़ा भाग व्यय होगा; परन्तु अपनी दशा सुधारनेका ऐसा काम हे जिसको मनुष्य हर समय पूरा कर सकता है। हाँ, यह जरूर है कि कोई विद्यार्थी अपनी दशाको नहीं सुधार सकता और न दूसरोंपर उसका कोई उत्तम प्रभाव ही पड़ सकता है जबतक कि वह दृढताके साथ इस बातका उद्योग न करे कि जीवनकी कठिनाइयोंमें अपने चरित्रको बनाए रक्खूँ और अपने कर्तव्यका भली भाँति पालन करता रहूँ। उन मनुष्योंको विद्यार्थी सज्ञा कदापि नहीं दी जा सकती जो गम्भीरतासे अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते और अपने समयको एक अमूल्य धन समझनेके बदले व्यर्थ कार्योंमें खर्च करते हैं।

यदि विद्यार्थी अपने छिछोरपन, असभ्यता और आलस आदि बुरी वासनाओंको धीरे धीरे दृढताके साथ दूर न करे और आशा यह रक्खे कि ज्यों ज्यों समय बढता जायगा मेरी दशा सुधरती जायगी तो वह उस किसानके सदृश हैं कि जो खेतमें काटे और घास बोता है और आशा रखता है कि आप ही आप उत्तम फल उसमें फल आएँगे।

बहुतसे लोग हैं जिनको न अपने कर्तव्यका विचार है, न वे मानसिक अथवा मस्तकसम्बन्धी उन्नति करते हैं और न उनमें वे उत्तम गुण हैं जिनसे मनुज्य मनुष्य कहलानेके योग्य होते हैं। उनका विद्याप्राप्ति अथवा उन्नतिकी अभिलाषा करना मातापिताके लिए एक धोखा है, सोसायटीका एक अपराध है और देशके लिए हानिकर है। जो नव-

युवक बजाए इसके कि जी तोड़कर परिश्रमके और स्वाध्यायादिमें अपने समयके उत्तम भागको व्यय करे अपना समय केवल खेलकूद और भोगविलासमें व्यय कर देते हैं वे अपने ही लिए हानिकर नही, किंतु अधिकतर उनके लिए होते हैं जो बेसमझ होते है और अल्पावस्था या अल्पबुद्धिके कारण सरलमार्गको ग्रहण कर लेते हैं। उनमें विचारशक्ति नहीं होती। इसकारण सर्व साधारण और बेसमझ लोग जिन कामोंको प्रसिद्धि और प्रतिष्ठाका कारण समझते है उनका ही ये विद्यार्थी अनुकरण करते है। अतएव सच्चरित्रता और योग्यताका उत्तम आदर्श स्थापित करना, अपने साथियोंके सुधारकी चिन्ता करना और जीवनके असख्यात कष्टो और दुःखोंका वीरतासे सामना करना ऐसा काम है जिसका परिणाम करनेवालेके लिए कुछ विशेष लाभदायक नहीं होता। जो मनुष्य विचारशील हैं वे तो सदा उसका आदर करते हैं परन्तु जो बेसमझ हैं उनमें जितनी बुद्धि और ज्ञान बढ़ता जाता है उतनी ही ऐसे मनुष्योंकी प्रतिष्ठा बढती जाती है। यदि जन साधारण और अविवेकी पुरुष उसके कामोंको न समझें और इस लिए उसे कष्ट दें अथवा उसका विरोध करें तो उससे दुखी होना एक अवगुण है। जिन मनुष्योंकी सम्मति आदरणीय है उनकी दृष्टिमें तुच्छ होना ही वास्तवमें शोकप्रद है, किन्तु जो मनुष्य उत्तम गुण और उच्चावस्थाके जीवनसे अपरिचित हैं उनकी दृष्टिमें बुरा होना अच्छा होनेकी दलील है।

शायद महात्मा सुकरातका कथन है और स्टोंक सम्प्रदायके विद्वान् भी इसका पालन करते थे कि रात्रिको सोते समय दिन भरके कामोंपर दृष्टि डालनी चाहिए और बुरे कामो व अच्छे कामोंकी परीक्षा करनी चाहिए। यही स्वभावका बड़ा संशोधन है। साराश, विद्यार्थीका जीवन

एक सीढ़ीके समान है जिसपर वह प्रति दिन चढ़ता है। अतएव जो मनुष्य इस सीढ़ी पर नहीं चढ़ता वह विद्यार्थी नहीं है। कभी कभी विद्यार्थियोंको यह बाधा भी होती है कि जो लोग उनकी दशाके निरीक्षक और उनकी शिक्षाके उत्तरदाता है वे ऐसी बातोंको पसद करते है जिनसे विद्याका वास्तविक तात्पर्य नहीं निकलता। वे उन बातोंको नापसंद करते है जिनसे विद्यार्थियोंमें असली योग्यता प्राप्त होती है। ऐसी दशामे यह काम अत्यन्त दृढता और वीरताका है कि मनुष्य अपने विचारों पर स्थिर रहे। उसे चाहिए कि अपनी सम्मतिको दूसरोकी इच्छाके आधीन न करे और जो बात उसने अच्छी तरह विचार कर स्थिर कर ली है उसे अपनेसे बडे आदमियोको खुश करनेके लिए त्याग न करे। पहले कहा है कि विद्यार्थी उस समय तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उसमें विचारशक्ति और गम्भीरता पैदा न हो। जीवनके वर्तमान अभ्यास मनुष्यके शेष जीवन पर बडा प्रभाव डालते हैं। यदि विद्यार्थीकी दृष्टि दीर्घ और विचार उच्च न हों तो वह भी लाखों मनुष्योंके समान पशुवत् जीवन व्यतीत करेगा और शिक्षासे उसके जीवन पर कुछ प्रभाव न पड़ेगा; बल्कि यह कहना चाहिए कि वह शिक्षासे वचित रहेगा। हम पूर्वमें कह आए है कि वास्तवमें विद्याका यह अभिप्राय है कि मनुष्य इस बातको भली भाँति समझ ले कि मुझे किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करना है। उन तमाम कठिनाइयोंके सामना करनेकी शक्ति उसमें पैदा होनी चाहिए जो प्रत्येक मनुष्यके सामने हैं। जो सम्बन्ध उसको अपने कुटुम्बियों सम्बन्धियों, जाति या पड़ोसियोंसे है उसकी पूर्तिमें यदि उसे सफलता न हुई अर्थात् स्वार्थ अथवा अज्ञानताके कारण यदि वह अपने कर्तव्यका पालन न कर सका तो उसकी शिक्षा अपूर्ण है, वह असभ्य है और उसका

जीवन व्यर्थ है। यदि उसने यह समझा कि मैं कुछ नहीं कर सकता तो वह कुछ भी न कर सकेगा; किन्तु यदि वह अपना कर्तव्यपालन करनेके लिए तत्पर हो तो उस काममें अवश्य उसे सफलता होगी।

गरज यह कि विद्यार्थीके जीवनके कार्य बड़े कठिन हैं। उससे आशा की जाती है कि वह परिश्रम और उद्योगसे विद्योपार्जन करे, अपनेमें विचारशक्ति उत्पन्न करे और मनुष्यके स्वभावसे भली भाँति परिचित हो। केवल यह ही नहीं है, किंतु अपने विचारोंसे उन मानवीय गुणोंको प्राप्त करे जिनका प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्यके लिए सम्भव है। बहुतसी व्यर्थ बातोंको जिनकी अल्पावस्थाके कारण इच्छा होती है एक हद्दतक रोकना पड़ता है। सभ्यता और सच्चरित्रताके नियमोंका पालन करना सबके लिए आवश्यक है, परन्तु उससे आशा की जाती है कि शिक्षाकी कृपासे उसमें उसके पूर्वजोंकी अपेक्षा अधिकतर गम्भीरता पैदा हो और वह उचित कार्य्य करे। विद्यार्थियो, तुमसे यह भी आशा की जाती है कि जब संसारिक कार्योंके करनेका तुमको अवसर मिले तो तुम पूर्ण स्वतंत्रता और दृढ़तासे अपने उत्तम विचारोंका प्रकाश करो।

जो आज विद्यार्थी है वह कलको एक पुराधिकारी होगा। यदि उसको आत्मोन्नति अथवा समाजोन्नतिकी चिन्ता न होगी तो उसमें और संकुचित हृदयवाले अशिक्षित मनुष्योंमें कुछ भी भेद न होगा। सम्पूर्ण समाज उसकी ओर टकटकी बाँधकर देख रहा है। भावी आशाएँ उसपर निर्भर है। लाखों करोड़ो जीव जो नानाप्रकारके असह्य दुःख सह रहे है और जिनको अपनी उन्नति करनेका कोई अवसर नहीं मिलता, वे हाथ जोड़कर उससे प्रार्थना कर रहे हैं कि उस कर्त्तव्यका पालन कर जो एक भाग्यशाली भ्राताके सिरपर अन्य

दुखी जनोंकी सहायता करनेका होता है। यह विद्यार्थी सहस्रों उपाय करता है कि यह बोझ उसपरसे उठा लिया जावे। आजीविकाकी चिन्ताका बहाना भी करता है; परन्तु अच्छी तरह जानता है कि कैसा ही परिश्रम मनुष्य करता हो फिर भी उसको सदा समय मिल सकता है कि अपनी उन्नतिके साथ साथ परोन्नतिके लिए भी थोड़ा थोड़ा समय व्यय करे। वह परिश्रमसे जी चुराता है और शिक्षाकी कठिनाइयोंके सम्मुख कायरतासे सिर झुका देता है। जब उससे कहा जाता है कि उस आशाको पूरी क्यों नहीं करता जो उसके विषयमें की गई थी तो यद्यपि वह मनमें अच्छी तरह जानता है कि मैंने असली शिक्षा नहीं पाई किन्तु अपनी अज्ञानतासे इन सब आशाओं व विचारोंको व्यर्थ समझकर वैसा ही निरुद्देश जीवन व्यतीत करता है जिसके सुधारके लिए ही शिक्षा प्रारम्भ की गई थी। वह किसी भाषाके बुरा भला लिखने पढ़ने अथवा कतिपय सर्टीफिकटोंकी प्राप्तिसे शिक्षाकी इतिश्री मानता है और सदा यह उद्योग करता है कि जिस तरह हो परिश्रम करके लोगोको यह धोखा दे कि मेरी योग्यता बहुत बढ़ी चढ़ी हुई है। उसके आगे और पीछे कर्त्तव्य हैं। यही कर्त्तव्य उसके दाऐं बाऐं हैं। हर तरफसे वह जकड़ा हुआ है किन्तु वह अपने आवश्यकीय कामोंको भूलना चाहता है और अपनी जंजी-रके तोडनेकी चिन्तामें रहता है। अन्तमें इसी गडबड़मे वह अज्ञानता और अपमानके भयंकर भँवरमे गिर पडता है। उस समय उसको पशुवत् स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती है अर्थात् वह अज्ञानताके बंधनमें पड़ जाता है। परन्तु मानवीय स्वतन्त्रता—जिसके अर्थ अपने आपको वशमें करना, जीवनके कर्तव्योंका पालन करना और सदा आगे बढ़े जाना है—उसमेंसे नष्ट हो जाती है।

इस विपयमें हमने अधिकतर यह कहा है कि शिक्षाका उद्देश्य और उसका अभिप्राय यही होना चाहिए कि वह हमको एक सभ्य, सुशिक्षित पुरुष बनाए—जिससे हम अपने कर्तव्यपालनके लिए कटिबद्ध हों और उन सर्व उत्तम गुणोसे—जिनका होना मनुष्यमें सम्भव है—विभूषित हो। शिक्षाका उद्देश्य और विद्यार्थीकी दृष्टि केवल वहुतसी वातोके संग्रह कर लेने और बहुतसी कठिन समस्याओंके हल कर लेने तक ही नही होना चाहिए। सारांश, जो शिक्षा विद्यार्थीको मनुष्य न वनाए वह शिक्षा कदापि शिक्षा कहलानेके योग्य नहीं है। जो कुछ हमने पढ़ा और सोचा है तदनुसार करनेकी शक्ति और कार्यतत्पर होनेका उत्साह और जीवनकी आवश्यकताओंको उत्तम रीतिसे पूर्ण करनेकी योग्यताका होना भी आवश्यक है। इस बातपर जहाँ तक जोर दिया जाए थोड़ा है। परन्तु इसके साथ ही यह भी न भूलना चाहिए कि विद्यार्थी अवस्थाका प्रारम्भिक और वास्तविक उद्देश्य यही है कि हम अपनी शक्तिको वढ़ावें और उत्तम विचारोसे अज्ञानता और मूर्खताका परदा अपने ऊपरसे उठा दें। जो मनुष्य तुमसे यह कहें कि तुमको बड़ा विद्वान् वननेकी आवश्यकता नहीं, कोई जरूरत नहीं कि तुम कालिजों और यूनीवर्सिटियोंसे डिगरियाँ लेकर निकलनेका उद्योग करो, क्यों व्यर्थमे पुस्तकोंके कीड़े वन रहे हो? उनकी बातको शाति और धैर्यके साथ सुन लेना चाहिए परन्तु तुममें जो बुद्धि है उससे भी तो काम लो। तुम्हें सोचना चाहिए कि वे तुमसे क्या चाहते है और तुम कहाँ तक उनकी शिक्षा मान सकते हो।

आजकल कुछ लोगोकी यह आदत हो गई है कि वे मानसिक और मस्तकसम्बन्धी शक्तिके बढ़ानेके विषयमे असावधान ही नहीं है

किन्तु उस असावधानीपर अभिमान भी करते हैं और हमसे यह आशा करते हैं कि हम भी उनकी प्रशंसा करें। कौन कहता है कि हमारा सभ्य और सत्यप्रिय बनना विद्वान् बननेसे भी ज्यादह जरूरी नहीं है? कौन नहीं जानता कि केवल विद्याकी पूर्णतासे सांसारिक कार्य नहीं चल सकते; परन्तु दुहाई परमात्माकी, ऐसा विचार तो हममें पैदा न करो जिससे हम विद्याको ही तुच्छ दृष्टिसे देखने लगें और जो व्यक्ति हमसे अधिक विद्वान् और बुद्धिमान् हैं उनको हम अपनेसे तुच्छ समझने लगें। इस प्रकारकी मूर्खतासे क्या लाभ है? सभ्यता, सुशीलता आदि उत्तम गुण एक विद्वान् मनुष्यमें भी वैसी आसानीसे पैदा हो सकते हैं जैसे उन मनुष्योंमें जिनको ये महाशय पसंद करते हैं—बल्कि असली सभ्यता और सच्चरित्रता उच्च शिक्षाके बिना एक तरहसे असंभव है। हम यह सुनकर आश्चर्य करेंगे; परन्तु विचार कीजिए कि चरित्रसम्बन्धी गुणोंको कौन समझ सकता है। क्या वह व्यक्ति जिसका मस्तक विद्या और तत्त्वोंसे शून्य है? भूत अवस्थाकी घटनाओंसे कौन पुरुष शिक्षा ग्रहण कर सकता है? इतिहास और सम्पत्ति-शास्त्रके स्वाध्याय करनेवालोंने सोच विचारके बाद जो फल निश्चय किया है उसको जीवनकी दैनिक घटनाओंपर कौन घटित कर सकता है? क्या वे जो इन विद्याओंसे शून्य हैं या वे जो इनसे अपरिचित हैं? सबसे आसान और साफ बात यह है कि जब तक मनुष्यका मस्तक उच्चावस्थापर न पहुँच जाय, तब तक यह उसकी समझमें नहीं आ सकता। यह बात जानते हुए भी विचार-शक्तिकी असावधानी करना मानो अपनी शिक्षाकी जड़को काट डालना है। विशेष कर समाजकी ऐसी अवस्थामें जिसमें हम रहते हैं और जहाँ विद्योन्नति, बुद्धि वृद्धि अभी प्रारम्भिक दशामें ही हैं, इस प्रकारकी शिक्षासे लाभ कम और हानि अधिक होगी। यह

भी प्रत्यक्ष है कि एक नवयुवकको इस बातका समझा देना कि वह अति उत्तम पुरुष है ओर सारे सद्गुण उसमे एकत्रित हैं, कुछ कठिन नहीं। उसके जीमें यह बात बिठा देना कि मस्तकसम्बन्धी शक्तिकी बढ़तीके लिए परिश्रम करना व्यर्थ है फिर भी वह अपनेको विद्यार्थियोंसे उत्तम ही समझे कुछ कठिन नहीं; परन्तु हमको उचित है कि हम इस व्यर्थ पागलपनसे बचें।

अन्तमें यह और कह देना चाहता हूँ कि हमको इस बातका खयाल रखना जरूरी है कि जब हम शिक्षासे निर्वृत्त हो और हमारी विद्यार्थी अवस्था समाप्त हो, उस समय शिक्षाका कोई न कोई विशेष फल हममें अवश्य पाया जाना चाहिए जो साधारण जनोमे न पाया जाय। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि शिक्षित जनोंमे अन्य मनुष्योंसे कोई भिन्नता प्रतीत हो। यह तो अत्यन्त घृणित है। हाँ, मेरी इच्छा यह जरूर है कि हम उन मनुष्योंकी तरह न हो जायें जो देखनेमे उत्तम शिक्षा पाये हुए है; परन्तु उनसे संभाषण कीजिए, उनके पास रहिए, उनके विचार सुनिए और उनके अभ्यास और चरित्रपर दृष्टि डालिए तो कठिनाईसे उनमें और अत्यन्त संकुचित विचारवाले मूर्ख लोगोंमें कोई भेद होगा। शिक्षाके प्रचलित सिक्कोंमें ऐसे खोटे सिक्के भी आपको बहुत मिलेंगे, परतु उनसे शिक्षा लेनी चाहिए। ऐसे मनुष्य जिनके हृदयोंमे उत्तम विचारोंने प्रवेश ही नहीं किया, जिनके दिलमें असली शिक्षाका महत्त्व ही स्थापित नहीं हुआ, आपको प्रतिदिन मिल सकते हैं। हमारी यही प्रार्थना होनी चाहिए कि हम उनके समान अपनी जातिके हानिकर सदस्य न हों और शिक्षाको कलंकित न करें।*

—दयाचन्द गोयलीय, बी. ए.

* आनरेबल मौलवी ख्वाजा गुलामुस्सकलीन बी. ए. एलएल बी. केम्ब्रिज प्राइज स्पीकर, लैंसिडोन मेडलिस्टके उर्दू लेखका अनुवाद।

# जैनइतिहासकी दुर्दशा ।

आलस्य-निद्रामें सोये हुए जैनियोंको अब यह प्रतीत हो चला है कि सर्वश्रेष्ठ जैनजाति उन्नतिके शिखरसे गिर कर अवनतिके गढ़ेमे पहुँच चुकी है । प्रिय बधुओ, यदि तुम्हें अपनी प्राचीन श्रेष्ठता और सभ्यताका भलीभाँति कोई अनुभव करावे तो मुझे दृढ विश्वास है कि तुम एक क्षण भी इस गढ़ेमें पडा रहना कदापि न सहन कर सकोगे; किन्तु इस अवनतिके बंधनको एकदम तोड़कर उन्नति-शिखरकी ओर शक्तिपूर्वक गमन करनेको उत्कठित हो जाओगे । क्या तुम अन्तिम तीर्थकर श्रीवर्द्धमान महावीरस्वामीका जीवनचरित्र भूल गये ? क्या तुमको नहीं याद कि उन्होंने स्वात्मकल्याण, और प्राणी-मात्रके हितके लिए कैसे कैसे कष्ट उठाये थे ? क्या तुमको नहीं माऌम कि जिस समय बौद्ध आदिक अनेक धर्मावलम्बी हमको हड़प जानेको कटिबद्ध थे और हमारा अस्तित्व ही मिटा देना चाहते थे, उस समय हमारे आचार्योंने हमारे धर्मकी कैसे रक्षा की थी और अनेक दिग्गज वादियोंपर विजय प्राप्त करके जैनधर्मकी विजय-पताका फहरायी थी ? क्या तुम भूल गये कि श्रीअकलङ्कदेवने बाल–ब्रह्मचारी रह-कर बौद्धोंके यहाँ विद्याध्ययन किया और अतमे उनका महत्त्व मिट्टीमें मिला दिया ? क्या तुम श्रीजिनसेनाचार्यके पाण्डित्यसे अपरचित हो ? क्या तुमने श्रीसमतभद्र और श्रीमानतुङ्गका नाम नहीं सुना ? क्या श्रीरामचद्र सरीखे धार्मिक महात्माओंका प्रभाव तुम्हारे हृदयसे सर्वथा ही उठ गया ? क्या तुमको अविदित है कि एक ऐसा भी समय था जब तुम्हारे पूर्वजोंके प्रभावसे जैनधर्मका डका भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक बज रहा था ? क्या तुम्हें इन बातोको मनन करते हुए भी यह प्रतीत नहीं होता कि तुम जिन महात्माओं और विज्ञवरोंकी

सन्तान हो उन्हींके नाम पर धब्बा लगा रहे हो? क्या तुम ऐसी अवस्थासे संतुष्ट हो?

प्रिय भ्राताओ, जरा दृष्टि पसार कर देखो तो सही, कि तुम्हें सर्व साधारण क्या कह रहे हैं; तुम्हारे उत्कृष्ट धर्मके विषयमे कैसी कैसी किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं? तुम्हारी हीनावस्थाके कारण तुम्हारे विषयमें सर्व साधारणका कैसा मिथ्या ज्ञान हो रहा है? तुम्हारे ऊपर कैसे कैसे आक्षेप हो रहे है किन्तु तुम्हारे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। जब तक तुम बड़े जोरके साथ इन आक्षेपोका निवारण न करोगे तब तक याद रक्खो कि तुम जैनधर्मका महत्त्व सर्व साधारण पर प्रकट करनेमें असमर्थ रहोगे और अतएव तुम्हारे भाई स्वात्म-कल्याण और वास्तविक सुखसे वञ्चित रहेंगे। यदि तुम विचार करके देखो तो तुमको ज्ञात होगा कि ये आक्षेप दो प्रकारके है; एक तो तात्त्विक जो जैनधर्मके तत्त्वों अथवा सिद्धान्तोंसे सबंध रखते है और दूसरे ऐतिहासिक जो जैनधर्मके प्रचारकों और अनेक आचार्यों, महात्माओं और राजा महाराजादिकोंके समय, राज्य इत्यादिसे संबध रखते हैं; किन्तु कुछ आक्षेप ऐसे भी हैं जो दोनों विभागोंमे गर्भित हो जाते है। दोनों ही प्रकारके आक्षेपोंका निवारण करना अति आवश्यकीय है। यहाँ पर मैं पहिले प्रकारके आक्षेपोंके विषयमें कुछ न कह कर ऐतिहासिक आक्षेपोंकी ही चर्चा करूँगा और अपनी तुच्छ बुद्धिके अनुसार उनके निवारणार्थ उपाय भी बतानेका प्रयत्न करूँगा।

आजकलके समयमें अन्ध-विश्वासकी परम्परा सर्वथा ही उठ गई है। आजकल बच्चे बच्चेके मुँहमें 'क्या,' 'क्यों' और 'कैसे' प्रश्न सदैव उपस्थित रहते हैं। बीसवीं शताब्दिमें सर्व साधारणके सम्मुख सब बातें सप्रमाण उपस्थित करनी पड़ेंगी। भारतवर्षका प्राचीन इतिहास बड़े

अंधकारमें पडा हुआ है और विशेष कर जैन इतिहासकी तो बड़ी दुर्दशा हो रही है। आजकलके इतिहासमर्मज्ञोंने भारतवर्षके प्राचीन इतिहासको चार बातोंपर निर्भर कर दिया है:—

( १ ) वैदिक, बौद्ध और जैनधर्मसम्बन्धी पुराण जो कि विशेष कर सस्कृत, पाली, प्राकृत, आदि भाषाओंमें लिखे हुए हैं;

( २ ) अनेक भारतवर्षीय विद्वानोंके प्राचीन काव्य अथवा प्रामाणिक ग्रथ,

( ३ ) भारतभ्रमण करनेवाले विदेशी यात्रियोंकी लिखित पुस्तकें;

( ४ ) प्राचीन इमारतें, शिलालेख, ताम्रपत्र और सिक्के।

इनमेंसे पुराणोपर तो लोगोंकी बहुत ही कम श्रद्धा है क्योंकि उनमे परस्पर बड़ा मतभेद मिलता है, और अतिम प्रमाण अर्थात् शिलालेख, ताम्रपत्र इत्यादि पर भारतवर्षके प्राचीन इतिहासका सबसे अधिक आधार रक्खा गया है। इसी आधार पर पुरातत्त्वान्वेषी महाराज विक्रमादित्यका अस्तित्व ईसाके ५७ वर्ष पूर्व (जैसा कि होना चाहिए) मानते ही नहीं। क्योंकि विक्रमादित्य सरीखे पराक्रमी राजाका कोई शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्का इत्यादि आज तक मिला ही नहीं—जब कि इनके पूर्व और समकालीन अशोक इत्यादि अनेक राजाओंके शिलालेख, ताम्रपत्र इत्यादि मिलते है। इसी आधार पर अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानोंने विक्रमके समयनिर्णयार्थ अपनी अपनी कल्पनायें स्थापित करके आकाश पाताल एक कर डाले हैं। विषयान्तर हो जानेके कारण उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता।

हमारे तीर्थकरों और जैनधर्मानुयायी राजा, महाराजाओं कवियों और ग्रथकारोंके विषयमें बड़ी निर्मूल कल्पनाये प्रचलित हैं और उनसे सर्व साधारणका इस विषयमें बडा मिथ्या ज्ञान हो रहा है। सरकारी

स्कूलो और कालिजोंकी ऐतिहासिक पुस्तकोंमें ऐसी बहुतसी बातें मिलती हैं। विशेषकर इन पुस्तकोंमें जैनधर्मका संस्थापक श्रीमहावीर स्वामीको ही बतला दिया है और किसी किसी पुस्तकमें श्रीपार्श्व-नाथको लिखा है। कहीं पर जैनमत बौद्धधर्मकी शाखा मात्र है, अथवा जैनधर्मकी वैदिक धर्मसे उत्पत्ति हुई ऐसे भी उल्लेख हैं। मगधाधिपति श्रेणिक महाराज (अपर नाम बिम्बसार) को पाश्चात्य विद्वानोने जैन लिखा ही नहीं। यही बात उनके पुत्र कोणिक (अपर-नाम अजातशत्रु) के विषयमें है। मौर्यवंशी महाराज चंद्रगुप्त (दीक्षित नाम प्रभाचंद्र) को-जो श्रीभद्रबाहुस्वामीके शिष्य थे कई विद्वा-नोंने बौद्धधर्मावलम्बी बताया है। उनके पौत्र महाराज अशोकने तेरह वर्षतक जैनधर्म पालन किया और इसके पश्चात् धर्मपरिवर्तनकरके बड़े जोरोशोरसे बौद्ध मतका प्रचार किया। उनके समयके अनेक स्तम्भ, शिला इत्यादि अब तक विद्यमान् हैं जिनके लेख इस बातको सूचित कर रहे है कि महाराज अशोकने बौद्धधर्मका प्रचार किया था। परन्तु खेदका विषय है कि उनके बौद्धधर्म ग्रहण करनेके पूर्वके शिलालेख आजतक कोई मिले ही नहीं और यदि अन्वेषण किया जाय तो उनकी प्राप्ति बहुत सम्भव है। इसी आधार पर विद्वानोकी बहुसम्मति यही है कि महाराज अशोक कभी जैन थे ही नहीं, किन्तु कोई कोई तो यह कहते है कि वह प्रारम्भमें वैदिक धर्मके अनुयायी थे* अशोकके पुत्र सम्प्रति जिन्होंने अपनी राजधानी उज्जैन बनाई थी जैनधर्मानुयायी थे; किंतु

* अशोक जैनधर्मके अनुयायी थे, सचमुच ही इसका अब तक कोई सुबूत नहीं मिला है। जैनग्रन्थोंमें भी इस विषयका कोई उल्लेख नहीं। अशोकके एक शिलालेखमें लिखा है कि मेरी भोजनशालामें पहले बहुतसे पशुओंका घात किया जाता था, पर अब केवल एक जीवकी हत्या होती है और आगे वह भी नहीं होगी। इससे यही सिद्ध होता है कि बौद्ध होनेके पहले अशोक वेदा-नुयायी थे।—सम्पादक जै० हि०।

बहुतसे इतिहासकारोंने ऐसा नहीं लिखा। विन्सैन्ट स्मिथने बड़ी दबी जबानसे लिखा है कि पुराणोंके अनुसार सम्प्रति जैनधर्मपर कृपादृष्टि रखते थे। गुजरात और दक्षिणके अनेक जैन राजाओंका प्रायः उल्लेख ही नहीं मिलता। यह तो राजा महाराजाओंके विषयकी बात हुई, अब ग्रन्थकारों और विद्वानोका हाल यह है कि हजारों जैनग्रथ जैनमतके विरोधियोंने जलमें डुबो दिये अथवा वे ईधनकी जगह काममे लाये गये, बहुतसे कीटादिके भक्ष्य बन गये, कुछ विरोधियोंने चुरा कर और उनमें इधर उधर परिवर्तन करके और नाम बदल कर अपने बना लिये, * बहुतसे सात तालोंके भीतर पडकर जीर्णशीर्ण हो गये और उनको वायु और सूर्यके दर्शन तक नहीं होते। शेषकी दशा भी बड़ी शोचनीय है। सर्व साधारणने पचतत्रके कर्त्ताको वैदिक धर्मानुयायी ही मान रक्खा था किन्तु हर्षका विषय है कि एक विदेशी विद्वाने यह सिद्ध कर दिया है कि इसके कर्त्ता जैन थे। श्रीजिनसेन, शाकटायन, श्रीमहावीराचार्य इत्यादिकी विद्वत्ता अभी सर्व साधारण पर प्रकट ही नहीं हुई। श्रीवर्द्धमान महावीर स्वामीके पश्चात्के इतिहासकी जब यह दशा है तो उनके पूर्वके इतिहासका क्या कहना ? श्रीऋषभदेव आदि तीर्थंकरोंको तो पूछता ही कौन है ?

इस प्रकारकी और भी सैकड़ों बातें लिखी जासकती हैं। इन्हींके कारण हमारे महत्त्वसे सर्व साधारण वंचित हैं। यदि इनकी सत्यता प्रकाश कर दी जाय तो हमारी श्रेष्ठता सर्व साधारणके हृदयपर अंकित हो जाय। अतएव हमारा यह परम कर्तव्य है कि इस ओर ध्यान दें और अपने प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र इत्यादि खोज कर जैन इतिहासका उद्धार करें और सर्व साधारण पर उसका तिमिरनाशक

---

* लेखक महाशयको ऐसे किसी एकाध ग्रन्थका प्रमाण देना था।—

—सम्पादक।

प्रभाव। डाले ऐतिहासिक अन्वेपणके अर्थ रोयल एशियाटिक सोसायटीका अटूट परिश्रम और उसका फल आपको अविदित नहीं है। सौ वर्ष हुए सर्व साधारण महाराज अशोकका नाम तक न जानते थे और उनके स्तंभ जिन ग्रामोमे हैं वहाके निवासी अज्ञातवश उनको 'भीमकी गदा' इत्यादि कहा करते थे। किन्तु इस सुसायटीके परिश्रमसे यह अज्ञान दूर होगया। इसी प्रकारकी सैकड़ों वातोंकी खोज इस सोसाइटीने कर डाली है। यदि हमारे जैनी भाई भी इस ओर ध्यान दे तो जैन इतिहाससंवधी वहुतसे अन्वेषण हो जायँ जिससे वर्तमान ऐतिहासिक पुस्तकोमे वड़ा भारी परिवर्तन हो जाय और जैनधर्मकी सच्ची प्रभावना हो।

परम हर्षका विपय है कि स्वर्गीय वावू देवकुमारजीकी उदारतासे आरा ( विहारप्रान्त ) मे 'श्रीजैनसिद्धान्तभवन' नामकी एक उच्च श्रेणीकी संस्था खुल गई है और इसके अन्वेषण और परिश्रम, इसकी वार्षिक रिपोर्ट और इसके मुखपत्र 'श्रीजैनसिद्धान्तभास्कर' से भली भाति प्रकट है। इतने अल्प कालमें और कार्यकर्ताओंकी कमी होनेपर इस सस्थाने जितनी सामग्री एकत्रित की है और जो जो कार्य किये हैं वे वहुत ही प्रशसनीय है। किंतु क्या आप इसको पर्याप्त समझते है? कदापि नहीं। अभी हमको वहुत परिश्रम करना है अतएव यह हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है कि तन मन धनसे ऐतिहासिक उद्धारमे लग जावे और यथाशक्ति इस संस्थाकी सहायता करें। अपने अपने अन्वेषणोंसे, लेखोंसे, सामग्रीसे और धनसे इस संस्थाको परिपूर्ण और चिरस्थायी कर दें। थोड़ेसे स्वार्थत्यागसे वहुत कुछ हो सकता है।

जातिसेवक—

**मोतीलाल जैन, सी॰ टी॰,**

आगरा।

# ग्वालियरके किलेकी जैनमूर्तियाँ ।

ग्वालियरका किला बहुत पुराना है। यह बात इतिहासोंको देखने से स्पष्ट हो जाती है। यह सम्भव है कि उसके बनानेवालेका पता आजतक न चला हो और उसके बनाए जानेकी बाबत जो रवायतें मशहूर हो रही हैं उनमें भले ही इख्तलाफ हो; मगर इस बातको आम तौरपर सब इतिहासज्ञ स्वीकार करते है कि यह किला बहुत प्राचीन है। किलेकी बुनियाद हिन्दू राजाओंने डाली यह भी ठीक है। कछवाहे और परिहार राजपूतोने बहुत समय तक इस किलेको अपने अधिकारमें रखकर इस प्रान्तका राज्य किया। राजपूतोंके अलावा जैनलोगोंके कब्जेमे भी यह किला बहुत दिनोंतक रहा।

किलेपर जो जैन मूर्तियॉ हैं वे जैनधर्मकी दृष्टिसे जितने महत्त्वकी है उतने ही महत्त्वकी ये चित्रनिर्माणशास्त्रकी दृष्टिसे भी हैं। उनको देखनेसे प्राचीन समयकी उत्तम कारीगरीका अपूर्व उदाहरण हमें दिखाई पडने लगता है। ग्वालियरके अलावा हिन्दुस्थानमें इसी प्रकारकी अपूर्व मूर्तियॉ एलोरा, एलिफेंटा और एजंटामें देखी जाती है और उनकी कारीगरीकी, आजकलके विदेशी गृहनिर्माणशास्त्रवेत्ता लोग मुक्तकठसे प्रशसा करते हैं। परन्तु उन स्थानकी मूर्तियोंसे ग्वालियरके किलेकी मूर्तियोंमें विशेषता है। क्योंकि ग्वालियर दिगम्बरी जैनियोंका प्राचीन समयसे विद्यापीठ रहा है।

किलेके अन्दर जैनियोके पूजनीय देव पार्श्वनाथका एक छोटासा मन्दिर भी मौजूद है। अलावा इसके अन्य जैनमन्दिरोंके चिह्न भी अब तक पाये जाते हैं। जहाँ तक पता चला है उससे जाना जाता है कि बारहवीं शताब्दीमें जैनियोंका इस किलेपर पूरा अधिकार था।

किलेमें जो सासबहूके उत्तम मन्दिर है वे ग्यारहवीं शताब्दीकी कारीगरीका नमूना बताये जाते हैं। पार्श्वनाथमन्दिर भी बारहवीं शताब्दीका ही है। सासबहूका मन्दिर हिन्दुओंकी कारीगरीका नमूना है या जैनलोगोंका, इस विषयमें अनेक मतभेद हैं। सासबहूके मन्दिरको सहस्रबाहुका मन्दिर भी कहते है और इस नामपरसे यह हिन्दुओंकी कारीगरीका नमूना जान पड़ता है।

किलेमे जो जैनमूर्तियाँ है उन्हें जैनियोंने अपने पूजनीय देवताओके स्मरणार्थ बनवाया था। ये मूर्तियाँ भारतवर्पकी अन्य जैनमूर्तियोसे सर्वोत्तम समझी जाती हैं। कर्निंघम साहबने इनकी उत्तमताकी बहुत प्रशसा की है। ग्वालियरके किलेमे बहुतसे मन्दिर, महलात और इमारतें होनेके कारण दर्शक लोग बहुधा समयाभावसे इन महत्त्वपूर्ण मूर्तियोंकी ओर दुर्लक्ष्य कर जाते है। परन्तु ये मूर्तियाँ भी चित्रनिर्माणशास्त्र और जैनधर्मकी प्राचीनताकी झलकके कारण बहुत बड़े महत्त्वकी है।

ग्वालियरके किलेमें मानसिंहके महलके पास पहुँचते ही महलकी दीवारपर कई छोटी छोटी मूर्तियाँ दिखाई पड़ती है; परन्तु वे अधिक महत्त्वकी नहीं है। पश्चिमकी ओर जानेसे और भी मूर्तियाँ दिखाई पड़ती है। परन्तु उस ओरकी सड़क वन्द होनेसे दर्शक उनके दर्शनोंका लाभ नहीं उठा सकते। दक्षिण पश्चिमकी ओर जानेसे भी कुछ मूर्तियाँ मिलती हैं, इनकी भी गणना उत्तम मूर्तियोमे नहीं की जाती। दक्षिण पूर्वकी ओर जानेसे जो मूर्तियाँ उर्वाई दरवाजेके पास मिलती हैं उन्हें ग्वालियरका किला देखनेवाले दर्शकोको कभी नहीं भूलना चाहिए। उर्वाई दरवाजेसे किलेके ऊपर चढते ही थोड़ी दूर आगे चलकर पहाड़की कन्दरामें पत्थरमें ही कटी हुई ये विशालकाय मूर्तियाँ

दृष्टिगोचर होने लगती है। जहाँपर ये मूर्तियाँ विराजमान है, वहाका दृश्य भी वडा मनोहर है। उर्वाई दरवाजेके ऊपरी फाटकपरसे पहाड़ ढाल हो गया है। इसी ढालमे ये मूर्तियॉ काटी गई हैं। ये मूर्तियॉ कब वनाई गई इस बातका भी पता चलता है। सम्वत् १४९१ व १५१० में जब तॅवर राजपूत यहॉ राज्य करते थे उस समयकी बनी हुई ये मूर्तियॉ हैं। अर्थात् ईस्वी १५ वीं शताब्दीकी ये मूर्तियॉ हैं। ये मूर्तियाँ बहुत ऊंची है। इनकी ऊॅचाईका इसीसे अनुमान कर लेना चाहिए कि उर्वाई दरवाजेकी एक मूर्ति ५१ फूट ऊॅची है। जैनियोंके धार्मिक विचारके अनुसार ये सब मूर्तियॉ नंगी खड़ी हैं। मुसलमानी राज्यकालमें इस किलेकी बहुतसी मूर्तियॉ तोड़ी गईं; परन्तु जो मूर्तियॉ पहाडीमें अधर वनी थीं वे ज्यादातर नहीं टूटीं। बाबरने एक स्थान पर लिखा है कि "मैंने इन तमाम मूर्तियोंको तोड़नेका हुक्म दे दिया था मगर वे ही मूर्तियॉ किसी कदर तोडी गई जिन तक आसानीसे पहुॅच हो सकती थी।" अब यह बात सोचने की है कि इन मूर्तियोंको ढाल पहाडीके बीचोबीच अधर बनानेमें कितनी विद्या, बुद्धि और परिश्रम खर्च करना पड़ा होगा। इन मूर्तियोंको देखनेसे इस देशकी प्राचीन कारीगरी और गृहनिर्माणशास्त्रकी जानकारीका बहुत कुछ पता चलता है।

( जयाजी प्रतापसे उद्धृत )

---

# कर्मवीर।

एक विद्वान् कहता है कि "डरपोक अपनी मौतसे पहले ही हजारों बार मर चुकते है पर वीर पुरुष एक हीं वार मरता है।" वीरोंको लेनेके लिए मौत एक ही बार आती है और वह उन्हें सोनेके सिंहासन पर चढ़ाके अपने अमर धाममें ले जाती है; किन्तु होना चाहिए कर्मवीर। उसी वीरके गुणगानसे लेखककी लेखनी तीखी मानी जाने लगती है और कविकी कविता जीवित हो जाती है। वह वीर वाते नहीं वनाता वल्कि काम करता है और उसका काम ही उसे एकदम संसारके सामने लाके खडा कर देता है। तमाम मनुष्य उसे अपना पूज्य मानते हैं और सव जातियाँ उसे देवता कहती है। वुद्ध धर्मके जमानेमें कोई नही जानता था क्रि एक मनुष्यका हृदय धार्मिक प्रेमकी आगसे धधक रहा है। उस समय कोई नहीं जानता था किं एक हृदयमें वड़ी वड़ी भीषण लपटें उठ रही है; किन्तु समय कुछ आगे वढ़ा और संसारके सामने अकलङ्कदेवका शरीर आगया। इस कर्मवीरने ससारमें वह आग फूँक दी कि जो अव तक शान्त नही हुई और न होगी; क्योंकि यह उस कर्मवीरके हृदयकी सच्ची आग थी–यह आग–यह बिजली वडे वडे पहाड़ोंको भेदती हुई, नदियोंको उलाँघती हुई और समाजोंको चमकाती हुई एक सिरेसे दूसरे सिरे तक जा पहुँची। दूसरी आग अरवमें उस समय उठी थी, जव सव मनुष्य अज्ञानके गढ़ेमें गिरकर अत्याचारोंकी सीमा पर पहुँच चुके थे। फिर एक हृदयमें धार्मिक अग्नि जलने लगी और उस आगका स्फोट इतना भयङ्कर हुआ कि उससे संसारकी जड़े हिल गई और अरवके नीरव जङ्गलोके रेतीले मैदानों, नदियों और पश्चिमोत्तर वायुसे भी वे शब्द सुनाई देने लगे। ये कर्मवीर हजरत मुहम्मद थे जिनके

हार्दिक समुद्रने अरबसे विन्ध्याचल तकको अपनी लहरोंसे डुबो दिया था। यही सच्ची आग योरपमें उस समय निकली थी, जब वहाँके निवासी अपने कर्तव्यज्ञानसे शून्य हो चुके थे और उनमें निर्जीवता आगई थी। तब वहाँके जगल और पहाड़ोंमें भटकनेवाला एक मनुष्य वस्तीमें आगया और उसने वह कूक ससारमे मचा दी जो सूलीकी तीखी नोकको भेदती हुई आज तक सुनाई दे रही है। इस महात्मा क्राइस्टके पौद्गलिक शरीरका सूलीके ऊपर ही परिवर्तन होगया; पर वह वीर नहीं है जो मुर्देमें भी जान न डाल दे। क्राइस्टके स्पर्शसे वह शूली आज एक तिहाई ससारकी प्रिय होगई है और अपने गलेमें डालके हजारों मनुष्य उसी क्रॉससे अपना परिचय देते हैं। भारतवर्षमें जिस समय यज्ञोंमें जीवोंका हवन होता था उस समय भी एक पहाड़की खोहमें सोनेवाला पुरुष जाग उठा था और उसकी "बुद्धोऽहं" की आवाज पर ससार चकित होगया था। उस समय उसका कोई सहायक नहीं था किन्तु वह कर्मवीर था। उसकी अवाजसे पाखडियोंके घटाटोप जाल टूट गये, उसका स्वागत करनेके लिए प्रकृतिने उसके गमनका मार्ग साफ कर दिया और पक्षियोंने उसके जानेसे पहले ही उसके शब्दोंको पहुँचाया, नदियाँ उसीका गान गाने लगीं और आज भी उसकी जीती जागती वाणी ससारके अधिकाश मनुष्योंमें भिद रही है।

ससारमें समय समय पर ये कर्मवीर आये और अपना अपना काम करके चले गये। जो रोनेवाले हैं वे अपना रोना लिए बैठे ही रहे और जो आलसी थे वे पडे पड़े मिट्टी हो गये, आज ससार नहीं जानता कि वे कहाँ हुए थे और क्यों हुए थे? यदि तुम कुछ चाहते हो तो अपने मनसे चाहनाको निकाल डालो और संसारको अपने सामने

रखके उसीके हितमें लग जाओ। ससार कर्मक्षेत्र है। इसमें जिसने अपने अस्तित्वको जितना ही अधिक नष्ट करके ससारका काम किया है ससारने उसे उतना ही ऊपर उठा लिया है। जिसने संसारकी जितनी अधिक निस्वार्थ सेवा की, उतना ही अधिक संसारने उसके निकट अपना हृदय खोल दिया। किन्तु जहाँ चाहनाका सबसे बडा स्वार्थ भरा है वहाँ लोग जाते हुए डरते है। यदि चित्त है तो उन दुतकारनेवाले लोगोंसे मत डरो—बल्कि याद रक्खो कि सबसे पहले वे ही तुम्हारे भक्त बनेगे। इन बादलोंकी गडगड़ाहटसे मत डरो, क्योंकि तुम इनमें बिजली बनके चमकोगे, धुँएमें अग्निशिखा तुही बनोगे और कूड़े करकटमे पुष्परूपसे तुम्हारा ही जन्म होगा।

संसारने उसीको अपना पूजनीय माना है जो इसके काममें अपने आपको भूल गया है; यह संसार उन्हींकी मूर्ति बनाके पूजता है जो इसीके चिन्तनमे मग्न रहते थे।

प्रात.काल होता है, सूर्यकी चमकसे दिशाएँ चमकने लगती है, पक्षी आनन्दके मारे नाचने लगते हैं; परन्तु मनुष्य कहानेवाले जीवो, तुम मिट्टीके ढेलेकी तरह क्यो निर्जीव पडे रहते हो? तुम्हारी चैतन्यता क्यो पत्थरके समान स्थिर रहती है? बल्कि पत्थरपर भी यदि प्रातःकाल हाथ लगाओगे तो ठंडा मालूम होगा और दिनमें गर्म हो जायगा, पर तुम्हारे मनपर इतना सा भी परिवर्तन नहीं होता। यह हम जानते है कि तुम हरसमय चिन्तामें मग्न रहते हो, पर वह चिन्ता केवल तुम्हारे लिए ही है, तुम केवल अपने ही घाटे और नफेका विचार करते हो ·इसीलिए तुम्हारी निर्जीवता पत्थरसे गई बीती है। तुम्हें कभी इस बातका विचार नहीं आया कि अब हमारी संख्या केवल साड़े तेरह लाख ही रह गई है। तुमने कभी यह नहीं सोचा

कि हमारी संख्या थोड़ी होनेपर भी हममे आपसमे ऐक्य नहीं है। तुमने कभी विचार नहीं किया कि हम किस ओर जा रहे हैं। यही कारण है कि हम निर्जीव हैं। पर अब हम निर्जीव नहीं रहेगे:—

आये हैं तेरे दर पै तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल ही होगा या अब मरके उठेंगे॥

—देवदूत।

---

## शिक्षा-समस्या।

हम स्कूलोंको एक प्रकारकी शिक्षा देनेकी मशीनें या कलें समझते हैं। मास्टर लोग इस कारखानेके एक तरहके पुरजे हैं। साढ़े दश बजे घण्टा बजाकर कारखाना खुलता है और कलका चलना आरम्भ हो जाता है। मास्टरोंके मुँह भी चलने लगते हैं। चार बजे कारखाना बन्द होता है, मास्टररूपी पुरजे भी अपने मुँह बन्द कर लेते है। तब विद्यार्थी इन पुरजोंकी काटी-छाँटी हुई दो चार पन्नोंकी विद्या लेकर अपने अपने घर लौट आते हैं। इसके बाद परीक्षाके समय इसविद्याकी जॉच होती है और उसपर मार्क लगा दिये जाते हैं।

कलों या मशीनोंमें एक बडी भारी खूबी यह रहती है कि जिस मापकी और जिस ढॅगकी चीजकी फरमायश की जाती है ठीक उसी माप और ढॅगकी चीज तैयार हो जाती है। एक कलसे तैयार हुई सामग्रीमें और दूसरी कलसे तैयार हुई सामग्रीमें कोई बडा फर्क नहीं पड़ता और इससे मार्क लगानेमें बड़ा सुभीता होता है।

किन्तु एक मनुष्यके साथ दूसरे मनुष्यका मिलान नहीं हो सकता- दोनोंमें बड़ा अन्तर रहता है; यहाँ तक कि एक ही मनुष्यके एक दिनके साथ उसीके दूसरे दिनकी समानता नहीं देखती जाती।

इसके सिवा मनुष्य जो कुछ मनुष्यके पाससे पा सकता है वह कलके पाससे नहीं पा सकता। कल किसी वस्तुको सामने तो उपस्थित कर देती है परन्तु दान नहीं कर सकती। वह तेल तो दे सकती है; परन्तु चिराग जला देना उसकी शक्तिसे बाहर है।

यूरोपकी दशा हमारे देशसे भिन्न है। वहाँ मनुष्य समाजके भीतर रहकर मनुष्य बनता है, स्कूल उसे थोड़ीसी सहायता-भर देते हैं। लोग जो विद्या प्राप्त करते हैं, वह वहाँके मनुष्यसमाजसे जुदा नहीं-वहीं उसकी चर्चा होती है और वहीं उसका विकाश होता है। समाजके बीच नाना आकारों और नाना भावोंसे उसका सञ्चार होता रहता है-लिखने पढ़नेमें, बातचीतमें, कामकाजमें वह निरन्तर प्रत्यक्ष हुआ करती है। वहाँ जनसमाजने जो कुछ समय समय पर, नाना घटनाओं और नाना लोगोंके द्वारा पाया है, सञ्चय किया है और अपना भोग्य बनाया है, उसीको विद्यालयोंके भीतर होकर बालकोंको परोस देनेका केवल एक उपाय कर दिया है-इससे अधिक और कुछ नहीं।

इसी लिए वहाँके विद्यालय समाजके साथ मिले हुए हैं-वे समाजकी मिट्टीमेंसे ही रस खींचते है और समाजको ही फल देते हैं।

किन्तु, जहाँ विद्यालय अपने चारों ओरके समाजके साथ इस तरह एक होकर नहीं मिल सकते-समाजके ऊपर बाहरसे चिपकाये हुए होते हैं वहाँ वे शुष्क और निर्जीव बने रहते हैं। हमारे यहाँके विद्यालय ठीक इसी प्रकारके हैं। उनसे हम जो कुछ पाते हैं, वह कष्टसे पाते है और वह पाई हुई विद्या ऐसी होती है कि प्रयोग करनेके समय कुछ काम नहीं दे सकती। दशसे लेकर चार बजे तक हम जो कुछ कण्ठ करते हैं, जीवनके साथ, चारों ओरके मनुष्यसमाजके साथ,

और घरके साथ उसका कोई मेल नहीं दीख पड़ता। घरोंमे मा बाप, भाई बन्धु जो कुछ बातचीत करते हैं और जिन विषयोंकी आलोचना करते हैं हमारे विद्यालयोंकी शिक्षाके साथ उनका कोई मेल नहीं, बल्कि अकसर विरोध ही रहता है। ऐसी अवस्थामें हमारे विद्यालय एक प्रकारके एञ्जिन हैं—वे वस्तुयें तो बना सकते हैं, पर उनमें प्राण नहीं डाल सकते। हमें उनसे प्राणहीन विद्या मिलती है।

इसी लिए कहते हैं कि यूरोपके विद्यालयोंकी ठीक ज्योंकी त्यों बाहरी नकल करनेसे ही ऐसा न समझ लेना चाहिए कि हमने वैसे ही विद्यालय पा लिये जैसे कि यूरोपमें हैं। इस नकलमें वैसी ही बेञ्चें, वैसी ही कुर्सियाँ, टेबिलें और वैसी ही कार्यप्रणालियाँ मिल सकती हैं—इनमे कोई फर्क नहीं रहता, परन्तु हमारे लिए ये सब ऊपरी पदार्थ एक तरहके बोझे हैं।

पूर्वकालमे जब हम गुरुओंसे शिक्षा पाते थे शिक्षकोंसे नहीं, मनुष्योंसे ज्ञान प्राप्त करते थे कलोंसे नहीं, तब हमारी शिक्षाके विषय इतने बहुत और विस्तृत नहीं थे और उस समय हमारे समाजमे जो भाव और मत प्रचलित थे उनके साथ हमारी पोथी–शिक्षाका कोई विरोध नहीं था। परन्तु यदि ठीक वैसा ही समय हम आज फिर लाना चाहें—इसके लिए प्रयत्न करें, तो यह भी एक प्रकारकी नकल ही होगी, उसका बाहरी आयोजन बोझा हो जायगा–किसी काममें नहीं लगेगा।

अतएव यदि हम अपनी वर्तमान आवश्यकताओंको अच्छी तरह समझते हों तो हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे विद्यालय हमारे घरका काम कर सकें, पाठ्य विषयोंकी विचित्रताके साथ

अध्यापनकी सजीवता मिल सके; पोथियोंकी शिक्षा देना और हृदय तथा मनोंको गढ़ना ये दोनों ही भार विद्यालय ग्रहण कर लें। हमको देखना होगा कि हमारे देशमें विद्यालयोंके साथ विद्यालयोंके चारों ओरका जो विच्छेद या विरोध है उससे छात्रोंका मन विक्षिप्त न हो जाय और इस प्रकारकी विद्याशिक्षा केवल दिनके कुछ घण्टोंके लिए बिलकुल स्वतन्त्र होकर, वास्तविकतासे रहित एक अत्यन्त कठिनाईसे हजम होनेवाली चीज न बन जाय।

विलायतमें विद्यालयोंके साथ घर या बोर्डिंग स्कूल रहते हैं। हमारे यहाँ भी इनकी नकल होने लगी है। परन्तु इस प्रकारके बोर्डिंग-स्कूलोंको एक तरहकी बारकें, पागलखाने, अस्पताल या जेलखाने ही समझने चाहिए।

अतएव विलायतके दृष्टान्तोंसे हमारा काम न चलेगा—उन्हें छोड़ ही देना पड़ेगा। कारण विलायतका इतिहास और विलायतका समाज हमारा नहीं है—हममें और उसमें बहुत प्रभेद है। हमारे देशके लोगोंके मनको कौनसा आदर्श बहुत समयसे मुग्ध कर रहा है और हमारे देशके हृदयमें रस-सञ्चार कैसे होगा, यह हमें अच्छी तरह समझ लेना होगा।

परन्तु यह हम समझ नहीं सकते। क्योंकि हमने अँगरेजी स्कूलोंमें पढ़ा है। हम जिस ओर देखते हैं उसी ओर अँगरेजोका दृष्टान्त हमारे नेत्रोंके सामने प्रत्यक्ष हो जाता है। और इसकी ओटमें, हमारे देशका इतिहास—हमारी स्वजातिका हृदय छुप जाता है—स्पष्ट नहीं रहता। हम नेशनल पताकाको ऊँची उठाकर स्वाधीन चेष्टासे काम करेंगे, इस खयालसे जब हम कमर कसके तैयार होते है, तब भी विलायतकी बेड़ी कमरबन्द बनकर हमें बाँध लेती है और हमें नजीर या दृष्टान्तसे बाहर हिलने डुलने नहीं देती।

हमारे लिए बड़ी भारी कठिनाई यह है कि हम अँगरेजी विद्या और विद्यालयोंके साथ साथ अँगरेजी समाजको अर्थात् वहाँकी विद्या और विद्यालयोंको यथास्थान नहीं देखने पाते। हम इसे सजीव लोकालयके साथ मिश्रित करके नहीं जानते। और इसीसे हम यह भी नहीं जानते कि विलायती विद्यालयोंके प्रतिरूप जो हमारे देशके विद्यालय हैं उन्हें अपने जीवनके साथ किस तरह मिला लेना होगा; और यह जानना ही सबसे अधिक प्रयोजनीय है। विलायतके किस कालेजमें कौनसी पुस्तक पढ़ाई जाती है और उसके नियम क्या हैं, इन बातोंको लेकर तर्कवितर्क करते हुए कालक्षेप करना ठीक नहीं इससे समयका दुरुपयोग होता है।

इस विषयमें हमारी हड्डियोंके भीतर एक अन्धविश्वास घुस गया है। जिस तरह तिब्बतनिवासी समझते है कि किसी मनुष्यको किरायेसे लेकर उसके द्वारा एक मन्त्रलिखित चक्र चलवा देनेसे ही पुण्यलाभ हो जाता है, उसी तरह हम भी समझते हैं कि किसी तरह एक सभा स्थापित करके यदि वह एक कमेटीके द्वारा चलाई जा सके, तो बस हमें फलकी प्राप्ति हो जायगी। मानो सभा स्थापन कर लेना ही एक बड़ा भारी लाभ है। कई वर्ष वीत गये, हमने एक विज्ञानसभा स्थापित कर रक्खी है। तबसे हम बराबर प्रतिवर्ष विलाप करते आ रहे हैं कि देशवासी विज्ञानशिक्षासे उदासीन हैं। किन्तु विज्ञानसभा स्थापित करना एक बात है और देशवासियोंके चित्तको विज्ञानशिक्षाकी ओर आकर्षित करना दूसरी बात है। सभास्थलमें कूद-पड़ते ही लोग विज्ञानी हो जावेंगे, ऐसा समझना इस घोर कलियुगकी कलनिष्ठाका परिचय देना है।

असली बात यह है कि हमें मनुष्यके मनको पाना चाहिए। जब हम उसे पालेंगे तब ही हम जो कुछ आयोजन या उद्योग करेंगे वह

पूर्ण फलप्रद होगा। हमें इस बातका अच्छी तरहसे विचार कर लेना चाहिए कि जिस समय भारतवर्ष अपनी निजी शिक्षा देता था उस समय उसने मनुष्यका मन किस तरह पाया था। विदेशी यूनिवर्सिटियोंके क्यालेण्डर खोलके, उनका रस बाहर करनेके लिए उनपर पेन्सिलके दाग लगानेसे हम आपको मना नहीं करना चाहते; परन्तु साथ ही यह अवश्य कहे देते हैं कि यह विचार भी उपेक्षा या उदासीनताका विषय नहीं है। विद्यालयोंमें क्या सिखाना चाहिए, यह बात भी विचारणीय अवश्य है; परन्तु जिन्हें सिखाना है उनके मन किस तरह पाये जा सकते हैं, यह उससे भी अधिक विचारणीय है।

भारतवर्षके गुरुगृह एक समय तपोवनोंमें थे। अवश्य ही इस समय उन तपोवनोंका स्पष्ट चित्र हमारे मनमें नहीं उठता—वह अनेक अलौकिकताओंके कुहासेसे छुप गया है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि किसी समय उनका अस्तित्व अवश्य था।

जिस समय उक्त आश्रम थे उस समय उनका वास्तविक स्वरूप क्या था, इस विषयको लेकर हम तर्क नहीं करना चाहते और कर भी नहीं सकते। परन्तु यह निश्चय है कि इन आश्रमोंमें जो लोग निवास करते थे, वे गृही थे और उनके शिष्य सन्तानके समान उनकी सेवा करके उनसे विद्या प्राप्त करते थे।

हमारे देशकी कहीं कहींकी विशेष कर बंगालकी पुरानी संस्कृत पाठशालाओंमें ( टोलोंमें ) आज भी उक्त भाव थोड़े बहुत अंशोंमें दिखलाई देता है।

इन पाठशालाओंपर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि उनमे केवल पोथियाँ पढ़ना ही सबसे अधिक महत्त्वकी बात नहीं है—वहाँ चारों ही ओर अध्ययन अध्यापनकी हवा बहती है। स्वयं गुरु भी वहाँ पढ़ना

लिखना लिए वैठे रहते है। केवल इतना ही नहीं, वहाँ जीवनयात्रा बिलकुल ही साधीसादी रहती है; धनदौलत, विलासिताकी खेंचतान नहीं है और इस लिए वहाँ शिक्षा एक साथ स्वभावके साथ मिल जानेका समय और सुभीता पा लेती है। पर इस कहनेसे हमारा यह मतलब नहीं है कि यूरोपके बड़े वड़े विद्यालयोंमें भी यह, शिक्षाका स्वभावके साथ मिल जानेका भाव नहीं है।

प्राचीन भारतवर्षका यह सिद्धान्त था कि अध्ययन करनेका जितना समय है उतने समयतक विद्यार्थीको ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए और गुरुगृहमें निवास करना चाहिए।

जो ससारके बीच रहते हैं वे ठीक स्वभावके मार्गपर नहीं चल सकते। तरह तरहके लोगोंके सघातमें नाना दिशाओंसे नाना लहरें आकर जब तब विना जरूरत ही उन्हें चञ्चल किया करती है—जिस समय हृदयकी वृत्तियाँ भ्रूण अवस्थामें रहती है उस समय वे कृत्रिम आघातोंसे विना समयके ही उत्पन्न हो जाती हैं। इससे शक्तिका बड़ा भारी अपव्यय होता है और मन दुर्बल तथा लक्ष्यभ्रष्ट हो जाता है। इस लिए जीवनके आरम्भकालमें स्वभावको विकारोंके सारे कृत्रिम कारणोंसे बचाके रखना बहुत ही आवश्यक है। प्रवृत्तियाँ असमयमें ही न जाग उठें और विलासिताकी उग्र उत्तेजनासे मनुष्यत्वकी नवोद्गम अवस्था झुलस न जावे—वह स्निग्ध और सजीव बनी रहे, यही ब्रह्मचर्यपालनका उद्देश्य है। वास्तवमें देखा जाय तो बालकोंका इस स्वाभाविक नियमके भीतर रहना उनके लिए सुखकर है। क्योंकि इससे उनके मनुष्यत्वका पूर्ण विकाश होता है, इससे ही वे जैसी चाहिए वैसी स्वाधीनताका आनन्द भोग सकते हैं और इससे उनका वह निर्मल और उज्ज्वल मन—जो कि उसी समय अकुरित होता है—उनके सारे शरीरमें प्रकाशका विस्तार करता है।

आजकल ब्रह्मचर्यपालन करानेके वदले नीतिपाठ पढ़ानेकी पद्धति निकली है। देशके सुशिक्षित नेता और बालकोंके मातापिता समझते हैं कि छात्रोंको नीतिका उपदेश देना वहुत ही जरूरी है। परन्तु हमारी समझमें यह भी एक तरहका कल या मशीन जैसा काम है। प्रतिदिन नियमपूर्वक थोड़ासा 'साल्सा' पीलेनेके समान ही यह नीति-उपदेश है। मानो बच्चोंको अच्छा बनानेका यह एक निर्दिष्ट उपाय है।

नीतिका उपदेश यह एक विरोधी विषय है। यह किसी भी तरह मनोहर नहीं हो सकता। क्योंकि जिसको उपदेश दिया जाता है वह मानो आसामियोंके कठघरेमें खड़ा किया जाता है और ऐसी अवस्थामें या तो वह उपदेश उसका मस्तक लँघकर चला जाता है या उस पर चोट करता है। इससे केवल हमारा यह प्रयत्न ही निष्फल नहीं होता है वल्कि कभी कभी इससे उलटा अनिष्ट हो जाता है। अच्छी बातको विरस और विफल कर डालना, इसके समान हानिकर कार्य मनुष्यसमाजके लिए और दूसरा नहीं है। नीत्युपदेश जैसी अच्छी बात, बच्चोंको बिना जरूरत और बिना समय देनेका प्रयत्न कर विरस और विफल वना डाली जाती है। परन्तु लोग इस विषयको समझते नहीं; अच्छे अच्छे सुशिक्षितोंका झुकाव भी इस ओर अधिकतासे देखकर मनमें बड़ी आशङ्का होती है।

जहाँ इस कृत्रिम जीवनयात्रामें हजारों तरहके असत्य और विकार हर घड़ी हमारी रुचिको नष्ट किया करते है, वहाँ यह आशा कैसे की जा सकती है कि स्कूलके दशसे लेकर चार बजे तकके थोड़ेसे समयमें एक दो पोथियोंके वचन हमारा संशोधन कर डालेंगे—हमारे चरित्रको नीतिपूर्ण वनाये रक्खेंगे। इससे और तो कुछ नहीं होता—केवल वहा-

नेवाजीकी सृष्टि होती है और नैतिक ढोंग—जो कि सब तरहके ढोंगों-से अधम है—सुबुद्धिकी स्वाभाविकता और सुकुमारताको नष्ट कर देता है।

ब्रह्मचर्यपालनके द्वारा धर्मके सम्बन्धमें सुरुचिको स्वाभाविक कर दिया जाता है। कोरा उपदेश नहीं दिया जाता, शक्ति दी जाती है। नीतिकी बातें बाहरी आभूषणोंकी तरह जीवनके ऊपर लटका दी जाती हैं उनका भीतर प्रवेश नहीं होता; परन्तु ब्रह्मचर्यपालन ऐसा नहीं है। इससे जीवन ही धर्मके साथ गढ़ दिया जाता है और इस तरह धर्मको विरुद्ध पक्षमें खड़ा न करके वह अन्तरंगमें मिला दिया जाता है—तन्मय कर दिया जाता है। अतएव जीवनके आरम्भमें मनको और चरित्रको गढ़नेके समय नीतिके उपदेशोंकी ज़रूरत नहीं; किन्तु अनुकूल अवस्था और अनुकूल नियमोंकी ही सबसे अधिक आवश्यकता है।

केवल ब्रह्मचर्यपालन ही नहीं, इस अवस्थामें विश्वप्रकृतिकी अनुकूलता भी होनी चाहिए। शहर हमारे स्वाभाविक निवासस्थान नहीं हैं—मनुष्यके कामकाजोंकी जरूरतसे और मतलबसे ये बन गये है। विधाताकी यह इच्छा नहीं थी कि हम जन्म लेकर ईंट-काठ-पत्थरोंकी गोदमें पलकर मनुष्य बनें। हमारे आफिसोंके और शहरोंके साथ फल फूल-पत्र-चन्द्र-सूर्यका कोई सम्बन्ध नहीं। ये शहर हमें सजीव सरस विश्वप्रकृतिकी छातीसे छीनकर अपने उत्तप्त उदरमें डालकर पका डालते है। पर जिन लोगोंको इनमें रहनेका अभ्यास हो गया है और जो कामकाजके नशेमें विह्वल रहते है, वे इस शहर-निवासमें कष्टका अनुभव नहीं करते—वे धीरे धीरे स्वभावसे भ्रष्ट होकर विशाल जगतसे बराबर जुदा होते जाते हैं।

किन्तु, कामके चक्करमे पड़कर सिर टकरानेके पहले, सीखनेके समय —उस समय जब कि बच्चोंकी मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ बढ़ती है, उन्हें प्रकृतिकी सहायता बहुत ही जरूरी है। फूल पत्ते, स्वच्छ आकाश, निर्मल जलाशय और विस्तृत दृश्य ये सब वस्तुयें बेंच और बोर्ड, पुस्तक और परीक्षाओंसे कम जरूरी नहीं हैं।

भारतवर्षका मन चिरकालतक इन सब विश्वप्रकृतियोके साथ घनिष्ट सम्बन्ध रहनेसे ही गढ़ा गया है और इस लिए जगत्की जड़-चेतन सृष्टिके साथ आपको एकात्मभावसे व्याप्त कर देना—मिला देना भारतवर्षके लिए बिलकुल स्वभाव सिद्ध है। भारतके तपोवनोंमें द्विजातियोंके बालक निम्नलिखित मन्त्रकी आवृत्ति किया करते थे:—

यो देवोऽग्न्यौ योऽप्सु यो विश्वभुवनमाविवेश।
यो औषधिषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः॥

अर्थात् जो प्रकृति देवता अग्निमें, जलमे, विश्वभुवनमें प्रविष्ट हो रही है और जो औषधियोमें तथा वनस्पतियोंमें है उसे नमस्कार हो, नमस्कार हो।

अग्नि, वायु, जल, स्थलरूप विश्वको विश्वात्माके द्वारा सहज ही परिपूर्ण करके देखना सीखना ही सच्चा सीखना या शिक्षा है। यह शिक्षा शहरोंके स्कूलोंमें ठीक ठीक नहीं दी जा सकती। क्योंकि वहाँ विद्या सिखानेके कारखानोंमें हम जगतको एक प्रकारका यन्त्र समझना ही सीख सकते हैं।

किन्तु आजकलके दिनोमें जो कामकाजमें मस्त रहनेवाले लोग हैं वे इन सब बातोंको मिस्टिसिजम् या भावकुहेलिका समझ कर उड़ा देवेंगे—इस पर उनकी श्रद्धा न होगी। अतएव हम नहीं चाहते कि इस विषयको लेकर हम अपनी सारी आलोचनाको ही अश्रद्धाभाजन

बना डालें। तो भी मालूम होता है कि इस बातको तो कामकाजी लोग भी एकबार ही न उडा दे सकेंगे कि खुला आकाश, खुली हवा और फूलपत्ते मानवसन्तानके शरीर और मनकी परिणतिके लिए बहुत ही आवश्यक हैं। जब उमर बढ़ेगी, ऑफिस जिस समय अपनी ओर खींचेंगे, लोगोंकी भीड़ जब हमें ठेलकर चलेगी, और मन जब नाना प्रयोजनोंसे नाना दिशाओंमें घूमेगा, तब विश्वप्रकृतियोंके साथ हमारे हृद-यका प्रत्यक्ष मिलाप होना बन्द हो जायगा। इस लिए इसके पहले हमने जिस जल-स्थल-आकाश-वायु-रूप माताकी गोदमें जन्म लिया है, उसके साथ जब हम अच्छी तरह परिचय कर लें, माताके दूधके समान उसका अमृतरस खींच लें और उसका उदार मन्त्र ग्रहण कर लें, तब ही सच्चे और पूरे मनुष्य बन सकेंगे। बालकोंका हृदय जब नवीन रहता है, उनका कौतूहल जब सजीव होता है और उनकी सारी इन्द्रियोंकी शक्ति जब सतेज रहती है, तब उन्हें खुले हुए आकाशमें जहाँ कि मेघ और धूप खेलती रहती है--खेलने दो। उन्हें इस पृथ्वी माताके आलिङ्गनसे वंचित करके मत रक्खो। सुन्दर और निर्मल प्रातःकालमें सूर्यको उनके प्रत्येक दिनका द्वार अपनी ज्योतिर्मय उँग-लियोंके द्वारा खोलने दो और सौम्य गंभीर सन्ध्याको उनका दिवाव-सान नक्षत्रखचित अन्धकारमें चुपचाप निमिलित होने दो। वृक्ष और लताओंके शाखा पल्लवोंसे सुशोभित नाटकशालामें छह अकोंमें छह ऋतुओंका नानारसविचित्र गीतिनाटकका अभिनय उनके सामने होने दो। वे झाड़ोंके नीचे खडे होकर देखें कि नव वर्षा यौवराज्यपदपर अभिषिक्त राजपुत्रके समान अपने दलके दल सजल बादल ले कर आनन्द गर्जन करती हुई चिरकालकी प्यासी वनभूमिके ऊपर आसन्न चर्पणकी छाया डाल रही है और शरत्कालमें अन्नपूर्णा धरतीकी

छातीपर ओससे सींची हुई, वायुसे लहराती हुई, तरह तरहके रंगोंसे चित्रित, चारों दिशाओंमें फैली हुई खेतोंकी शोभाको अपनी आँखोंसे देखकर उन्हें धन्य होने दो। हे बालकोंके रक्षक अभिभावकगण, तुम अपनी कल्पनावृत्तिको चाहे जितनी निर्जीव और अपने हृदयको चाहे जितना कठिन बना लो; परन्तु दोहाई तुम्हारी, यह बात कमसे कम लज्जाकी खातिर ही मत कहना कि, इसकी कुछ आवश्यकता नहीं है। अपने बच्चोंको इस विशाल विश्वमें रहकर विश्वजननीके लीलास्पर्शका अनुभव करने दो। तुम्हारे इन्स्पेक्टरोंके मुलाहिजों और परीक्षकोंके प्रश्नपत्रोंकी अपेक्षा यह कितना उपयोगी है इसका भले ही तुम अपने हृदयमें अनुभव न कर सकते हो, तो भी बालकोंके कल्याणके लिए इसकी बिलकुल उपेक्षा न करना। * (अपूर्ण)

---

# ग्रन्थ-परीक्षा।

## (१)

## उमास्वामि-श्रावकाचार।

(लेखक—बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, देववन्द)

जैनसमाजमें उमास्वामि या उमास्वाति नामके एक बड़े भारी विद्वान् आचार्य होगये हैं; जिनके निर्माण किये हुए तत्त्वार्थसूत्रपर सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक और गंधहस्तिमहाभाष्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण बड़ी बड़ी टीकायें और भाष्य बन चुके हैं। जैन सम्प्रदायमें भगवान् उमास्वामिका आसन बहुत ऊँचा है और उनका पवित्र नाम बड़े ही आदरके साथ लिया जाता है। उमास्वामि महाराज श्रीकुन्दकुन्द मुनिराजके प्रधान शिष्य थे और उनका अस्तित्व विक्र-

---

* श्रीयुक्त कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बंगलालेखका अनुवाद।

मकी पहली शताब्दीके लगभग माना जाता है। तत्त्वार्थसूत्रके सिवा उमास्वामिने किसी अन्य ग्रंथका प्रणयण किया या नहीं? और यदि किया तो किस किस ग्रंथका? यह बात अभीतक प्रायः अप्रसिद्ध है। आमतौर पर जैनियोमें, आपकी कृतिरूपसे, तत्त्वार्थसूत्रकी ही सर्वत्र प्रसिद्धि पाई जाती है। शिलालेखों तथा अन्य आचार्योंके बनाए हुए ग्रंथोंमें भी, उमास्वामिके नामके साथ, तत्त्वार्थसूत्रका ही उल्लेख मिलता है।*

" उमास्वामि—श्रावकाचार " भी कोई ग्रंथ है, इतना परिचय मिलते ही पाठकहृदयोमे स्वभावसे यह प्रश्न उत्पन्न होना संभव है कि क्या उमास्वामि महाराजने कोई पृथक् ' श्रावकाचार ' भी बनाया है? और यह श्रावकाचार, जिसके साथमें उनके नामका सम्बन्ध है, वास्तवमे उन्हीं उमास्वामि महाराजका बनाया हुआ है जिन्होंने कि ' तत्त्वार्थसूत्र ' की रचना की है? अथवा इसका बनानेवाला कोई दूसरही व्यक्ति है? जिस समय सबसे पहले मुझे इस ग्रंथके शुभ नामका परिचय मिला था उस समय मेरे हृदयमें भी ऐसे ही विचार उत्पन्न हुए थे। मेरी बहुत दिनोंसे इस ग्रंथके देखनेकी इच्छा थी। परन्तु ग्रंथ न मिलनेके कारण वह अभीतक पूरी न हो सकी थी। हालमें श्रीमान्

---

* यथा—

" अभूदुमास्वातिमुनि पवित्रे वंशे तदीये सकलार्थवेदी।
सूत्रीकृत येन जिनप्रणीतशास्त्रार्थजात मुनिपुगवेन ॥ "

—शिलालेखः

" श्रीमानुमास्वातिरय यतीशस्तत्वार्थसूत्र प्रकटीचकार।
यन्मुक्तिमार्गाचरणोद्यताना पाथेयमर्घ्यं भवति प्रजालाम् ॥ "

—वादिराजसूरिः

साहु जुगमन्दरदासजी रईस नजीबाबादकी कृपासे मुझे ग्रंथका दर्शन-सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसके लिये मैं उनका हृदयसे आभार मानता हूँ और वे मेरे विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

इस ग्रंथपर एक हिन्दी भाषाकी टीका भी मिलती है; जिसको किसी 'हलायुध' नामके पंडितने बनाया है। हलायुधजी कब और कहाँपर हो गये है और उन्होंने किस सन् या सम्वत्में इस भाषा-टीकाको बनाया है, इसका कुछ भी पता उक्त टीकासे नहीं लगता। इस विषयमें, हलायुधजीने अपना जो परिचय दिया है उसका एक-मात्र परिचायक, ग्रंथके अन्तमें दिया हुआ, यह छन्द है:—

"चंद्रवाडकुलगोत्र सुजानि। नाम हलायुध लोक बखानि।
तानैं रचि भाषा यह सार। उमास्वामिको मूल सुसार॥"

इस ग्रथके श्लोक नं० ४०१ की टीकामे, 'दुश्रुति' नामके अनर्थ-दंडका वर्णन करते हुए, हलायुधजीने मोक्षमार्गप्रकाश, ज्ञानानंद-निर्भरनिजरसपूरितश्रावकाचार, सुदृष्टितरंगिणी, उपदेशसिद्धान्तरत्नमाला, रत्नकरंडश्रावकाचारकी पं० सदासुखजीकृत, भाषावचनिका और विद्वज्जनबोधकको पूर्वानुसाररहित, निर्मूल और कपोलकल्पित बतलाया है। साथ ही यह भी लिखा है कि "इन शास्त्रोंमें आगम-विरुद्ध कथन किया गया है; ये पूर्वापरविरुद्ध होनेसे अप्रमाण, वाग्जाल हैं; भोले मनुष्योको रजायमान करैं हैं; ज्ञानी जनोंके आदरणीय नहीं हैं, इत्यादि।" पं० सदासुखजीकी भाषावचनिकाके विषयमें खास तौरसे लिखा हैं कि, "रत्नकरंड मूल तो प्रमाण है बहुरि देशभाषा अप्रमाण है। कारण पूर्वापरविरुद्ध, निन्दाबाहुल्य, आगमविरुद्ध, क्रमविरुद्ध, वृत्तिविरुद्ध, सूत्रविरुद्ध, वार्तिकविरुद्ध कई दोषनिकरि मंडित है यातैं अप्रमाण, वाग्जाल है।" इन ग्रथोंमे क्षेत्र-

पालपूजन, शासनदेवतापूजन, सकलीकरणविधान और प्रतिमाके चंदन-चर्चन आदि कई वातोंका निषेध किया गया है, जलको अपवित्र वतलाया गया है, खड़े होकर पूजनका विधान किया गया है; इत्यादि कारणोंसे ही शायद हलायुधजीने इन ग्रंथोंको अप्रमाण और आगम-विरुद्ध ठहराया है। अस्तु इन ग्रंथोंकी प्रमाणता या अप्रमाणताका विषय यहाँ विवेचनीय न होनेसे, इस विषयमें कुछ न लिखकर मैं यह वतला देना जरूरी समझता हूँ कि हलायुधजीके इस कथन और उल्लेखसे यह बात बिलकुल हल हो जाती है और इसमें कोई सदेह वाकी नहीं रहता कि आपकी यह टीका 'रत्नकरडश्रावकाचार' की (पं० सदासुखजीकृत) भाषावचनिका तथा 'विद्वज्जनवोधक' की रचनाके पीछे वनी है; तभी उसमें इन ग्रंथोंका उल्लेख किया गया है। पं० सदासुखजीने रत्नकरंडश्रावकाचारकी उक्त भाषावचनिका विक्रम सम्वत् १९२० की चैत्र कृष्ण १४ को वना कर पूर्ण की है और विद्वज्जनवोधककी रचना उसके वाद सधी पन्नालालजी दूणीवालोंके द्वारा हुई है, जो प० सदासुखजीके शिष्य थे और जिनका देहान्त वि० सं० १९४० के ज्येष्ठमासमें हुआ है। इसलिए हलायुधजीकी यह भाषाटीका विक्रम सवत् १९२० के कई वर्ष बादकी वनी हुई निश्चित होती है। वल्कि उपर्युक्त श्लोक (न० ४०१) की टीकामें विद्वज्जनवोधकके सम्वन्धमें दिये हुए, "स्वगृहमें ही गुप्त विद्वज्जनबोधक नाम करि" इत्यादि वाक्योंसे यहाँ तक मालूम होता है कि यह टीका उस वक्त लिखी गई है जिस वक्त कि विद्वज्जनवोधक बनकर तय्यार ही हुआ था और शायद एक दो वार शास्त्रसभामें पढ़ा भी जाचुका था, किन्तु उसकी प्रतियें होकर उसका प्रचार होना प्रारंभ नहीं हुआ था। इसी लिए उसका 'स्वगृहमें ही गुप्त' ऐसा विशेषण

किया गया मालूम होता है। विद्वज्जनबोधक किस सालमे बनकर तय्यार हुआ है, यह बात उसके देखनेसे मालूम हो सकती है।

पर यह बात निसदेह कही जा सकती है कि इस टीकाके बनानेवाले हलायुधजी संघी पन्नालालजीके समकालीन थे, जयपुर या उसके निकटवर्ती किसी ग्रामके रहनेवाले थे और उन्होंने विक्रम सं० १९३० से १९४० के दरम्यानमे ही इस टीकाको बनाया है।

हलायुधजीने अपनी इस टीकामें स्थान स्थान पर इस बातको प्रगट किया है कि यह 'श्रावकाचार' सूत्रकार भगवान् उमास्वामी महाराजका बनाया हुआ है। और इसके प्रमाणमें आपने निम्नलिखित श्लोक पर ही अधिक जोर दिया है। जैसा कि उनकी टीकासे प्रगट है:—

"सूत्रे तु सप्तमेऽप्युक्ताः पृथक् नोक्तास्तदर्थतः।
अवशिष्टः समाचारः सोऽत्र वै कथितो ध्रुवम् ॥ ४६२ ॥"

टीका—"ते सत्तर अतीचार मै सूत्रकारने सप्तम सूत्रमे कह्यो है ता प्रयोजन तैं इहा जुदा नहीं कह्या है। जो सप्तमसूत्रमें अवशिष्ट समाचार है सो यामैं निश्चय करि कह्यो है। अब याकूं जो अप्रमाण करै ताकूं अनंतसंसारी, निगोदिया, पक्षपाती कैसे नहीं जाण्यो जाय जो विना विचारया याका कर्त्ता दूसरा उमास्वामी है सो याकूं किया है (ऐसा कहै)। सो भी या वचन करि मिथ्यादृष्टि, धर्मद्रोही, निंदक, अज्ञानी जाणना। ॥"

इस श्लोकसे भगवदुमास्वामिका ग्रन्थ-कर्तृत्व सिद्ध हो या न हो; परन्तु इस टीकासे इतना पता जरूर चलता है कि जिस समय यह टीका लिखी गई है उस समय ऐसे लोग भी मौजूद थे जो इस 'श्रावकाचार' को भगवान् उमास्वामि सूत्रकारका बनाया हुआ नहीं मानते

थे; बल्कि इसे किसी दूसरे उमास्वामिका या उमास्वामिके नामसे किसी दूसरे व्यक्तिका बनाया हुआ बतलाते थे। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे लोगोंके प्रति हलायुधजीके कैसे भाव थे और वे तथा उनके समान विचारके धारक मनुष्य उन लोगोंको कैसे कैसे शब्दोंसे याद किया करते थे। 'सशयतिमिरप्रदीप' में, पं० उदयलालजी काशलीवाल भी इस ग्रंथको भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ लिखते हैं। लेकिन, इसके विरुद्ध पं० नाथूरामजी प्रेमी, अनेक सूचियोंके आधारपर संग्रह की हुई अपनी 'दिगम्बरजैनग्रन्थकर्त्ता और उनके ग्रन्थ' नामक सूचीद्वारा यह सूचित करते हैं कि यह ग्रंथ तत्त्वार्थसूत्रके कर्त्ता भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ नहीं है, किन्तु किसी दूसरे (लघु) उमास्वामिका बनाया हुआ है। परन्तु दूसरे उमास्वामि या लघु उमास्वामि कब हुए हैं और किसके शिष्य थे, इसका कहीं भी कुछ पता नहीं है। दरयाफ्त करनेपर भी यही उत्तर मिलता है कि हमें इसका कुछ भी निश्चय नहीं है। जो लोग इस ग्रंथको भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ बतलाते हैं उनका यह कथन किस आधारपर अवलम्बित है और जो लोग ऐसा मानने से इनकार करते हैं वे किन प्रमाणोंसे अपने कथनका समर्थन करते हैं, आधार और प्रमाणकी ये सब बातें अभी तक आम तौरसे कहींपर प्रकाशित हुई मालूम नहीं होतीं; न कहींपर इनका जिकर सुना जाता है और न श्रीउमास्वामि महाराजके पश्चात् होनेवाले किसी माननीय आचार्यकी कृतिमें इस ग्रंथका नामोल्लेख मिलता है। ऐसी हालतमें इस ग्रंथकी परीक्षा और जॉंचका करना बहुत जरूरी मालूम होता है। ग्रंथ-परीक्षाको छोड़कर और कोई समुचित साधन इस बातके निर्णयका प्रतीत नहीं होता कि यह ग्रंथ वास्तवमें किसका बनाया हुआ है और कब बना है?

ग्रन्थके साथ उमास्वामिके नामका सम्बन्ध है; ग्रन्थके अन्तिम श्लोकसे पूर्वके काव्यमें *'स्वामी' शब्द आया है अथवा खुद ग्रन्थकार उपर्युक्त श्लोक नं. ४६९ द्वारा यह प्रगट करते हैं कि इस ग्रन्थमें सातवें सूत्रसे अवशिष्ट समाचार वर्णन किया गया है। इसी लिये ७० अतीचार जो सातवें सूत्रमें वर्णन किये गये हैं वे यहां पृथक् नहीं कहे गये; इन सब बातोंसे यह ग्रन्थ सूत्रकार भगवदुमास्वामिका बनाया हुआ सिद्ध नहीं हो सकता। एक नामके अनेक व्यक्ति भी होते हैं; जैन साधुओंमें भी एक नामके धारक अनेक आचार्य और भट्टारक हो गये हैं; किसी व्यक्तिका दूसरेके नामसे ग्रन्थ बनाना भी असंभव नहीं है। इस लिए जब तक किसी माननीय प्राचीन आचार्यके द्वारा यह ग्रन्थ भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ स्वीकृत न किया गया हो या खुद ग्रन्थ ही अपने साहित्यादिसे उसका साक्षी न हो तब तक नामादिकके सम्बन्ध मात्रसे इस ग्रंथको भगवदुमास्वामिका बनाया हुआ नहीं कह सकते। किसी माननीय आचार्यकी कृतिमें इस ग्रंथका कहीं नामोल्लेख तक न मिलनेसे अब हमें यही देखना चाहिए कि यह ग्रंथ, वास्तवमें, सूत्रकार भगवदुमास्वामिका बनाया हुआ है या कि नहीं। यदि परीक्षासे यह ग्रंथ, वास्तवमें, सूत्रकार श्रीउमास्वामिका बनाया हुआ सिद्ध हो तब ऐसा प्रयत्न होना चाहिए जिससे यह ग्रंथ अच्छी तरहसे उपयोगमें लाया जाय और तत्त्वार्थसूत्रकी तरह इसका भी सर्वत्र प्रचार हो। अन्यथा विद्वानोंको सर्व साधारणपर यह प्रगटकर देना चाहिए कि, यह ग्रंथ-

---

* अन्तिम श्लोकसे पूर्वका वह काव्य इस प्रकार है—

"इति हतदुरितौघं श्रावकाचारसारं गदितमतिसुबोधावसथकं स्वामिभिश्च विनयभरनतांगाः सम्यगाकर्णयन्तु विशदमतिमवाप्य ज्ञानयुक्ता भवंतु ॥ ४७३ ॥

सूत्रकार भगवदुमास्वामिका बनाया हुआ नहीं है; जिससे लोग इस ग्रंथको उसी दृष्टिसे देखें और वृथा भ्रममें न पड़ें।

ग्रंथको परीक्षा-दृष्टिसे अवलोकन करनेपर मालूम होता है कि इस ग्रंथका साहित्य बहुतसे ऐसे पद्योंसे बना हुआ है जो दूसरे आचार्योंके बनाये हुए सर्वमान्य ग्रंथोंसे या तो ज्योंके त्यो उठाकर रक्खे गये हैं या उनमें कुछ थोडासा शब्द-परिवर्त्तन किया गया है। जो पद्य ज्योंके त्यों उठाकर रक्खे गये हैं वे 'उक्त च' या 'उद्धृत' रूपसे नहीं लिखे गये हैं और न हो सकते है; इसलिए ग्रंथकर्त्ताने उन्हें अपने ही प्रगट किये हैं। भगवान् उमास्वामि जैसे महान् आचार्य दूसरे आचार्योंके बनाये हुए ग्रंथोंसे पद्य लेवें और उन्हे अपने नामसे प्रगट करें, यह कभी हो नहीं सकता। यह उनकी योग्यता और पदस्थके विरुद्ध ही नहीं बल्कि महापापका काम है। श्रीसोमदेव आचार्यने साफ तौरसे ऐसे लोगोंको '**काव्यचोर**' और '**पातकी**' लिखा है। जैसा कि 'यशस्तिलक' के निम्नलिखित श्लोकसे प्रगट है:—

" कृत्वा कृतीः पूर्वकृता पुरस्तात्प्रत्यादर ताः पुनरीक्षमाणः।
तथैव जल्पेदथ योऽन्यथा वा स काव्यचोरोस्तु स पतकी च ॥ "

लेकिन पाठकोंको यह जानकर और भी आश्चर्य होगा कि इस ग्रंथमें जिन पद्योंको ज्योंका त्यों या परिवर्तन करके रक्खा गया है वे अधिकतर उन आचार्योंके बनाये हुए ग्रंथोंसे लिये गये हैं जो सूत्रकार श्रीउमास्वामिसे अनेक शताब्दियोंके पीछे हुए हैं। वे पद्य, ग्रंथके अन्य स्वतंत्र बने हुए पद्योंसे, अपनी शब्दरचना और अर्थ-गाभीर्यादिके कारण स्वतः भिन्न मालूम पड़ते हैं। और उन मणिमा-लाओं (ग्रंथों) का स्मरण कराते हैं जिनसे वे पद्यरत्न लेकर इस ग्रंथमें गूथे गये हैं। उन पद्योंमेंसे कुछ पद्य, नमूनेके तौरपर, यहा पाठकोंके अवलोकनार्थ प्रगट किये जाते हैं:—

(१) ज्योंके त्यों उठाकर रक्खे हुए पद्य—

क—पुरुषार्थसिद्ध्युपायसे।

"आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैश्च जिनधर्मः ॥ ६६ ॥
ग्रंथार्थोभयपूर्णं काले विनयेन सोपधान च।
बहुमानेन समन्वितमनिह्नवं ज्ञानमाराध्यम् ॥ २४९ ॥
संग्रहमुच्चस्थानं पादोदकमर्चनं प्रणामं च।
वाक्कायमनःशुद्धिरेषणशुद्धिश्चविधिमाहुः ॥ ४३७ ॥
ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्निष्कपटतानसूयत्वं।
अविषादित्वमुदित्वे निरहंकारत्वमिति हि दातृगुणाः॥४३८॥"

उपर्युक्त चारों पद्य श्रीअमृतचंद्राचार्य विरचित 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपायसे' लिये हुए मालूम होते हैं। इनकी टकसाल ही अलग है; ये 'आर्या' छंदमें हैं। समस्त पुरुषार्थसिद्ध्युपाय इसी आर्याछंदमें लिखा गया है। पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें इन पद्योंके नम्बर क्रमशः ३०, ३६, १६८ और १६९ दर्ज हैं।

ख—यशस्तिलकसे।

"यदेवाङ्गमशुद्धं स्यादद्भिः शोध्यं तदेव हि।
अंगुलौ सर्पदष्टायां न हि नासा निकृत्यते ॥४५ ॥
संगे कापालिकात्रेयी चांडालशबरादिभिः।
आप्लुत्यदंडवत्सम्यग्जपेन्मंत्रमुपोषितः ॥ ४६ ॥
एकरात्रं त्रिरात्रं वा कृत्वा स्नात्वा चतुर्थके।
दिने शुध्यन्त्यसंदेहमृतौ व्रतगताः स्त्रियः ॥ ४७ ॥
जीवयोग्या विशेषेण मयमेषादिकायवत्।
मुद्गमाषादिकायोऽपि मांसमित्यपरे जगुः ॥ २७३ ॥
मांसं जीवशरीर जीवशरीरं भवेन्नवा मांसम्।
यद्वन्निम्बो वृक्षो वृक्षस्तु भवेन्नवा निम्बः ॥ २७६ ॥
शुद्धं दुग्धं न गोमांसं वस्तुवैचित्र्यमीदृशं।
विषघ्नं रत्नमाहेयं विषं च विपदे यतः ॥ २७९ ॥

हेयं पलं पयः पेय समे सत्यपि कारणे
विषद्रोरायुषे पत्र मूलं तु मृतये मतम् ॥ २८० ॥
तच्छाक्यसांख्यचार्वाकवेदवैद्यकपर्दिनाम्।
मतं विहाय हातव्यं मांसं श्रेयोर्थिभि· सदा ॥ २८४ ॥
शरीरावयवत्वे पि मांसे दोषो न सर्पिषि ॥ २८२ ॥"

उपर्युक्त पद्य श्रीसोमदेवसूरिकृत यशस्तिलकसे लिये हुए माल्रम होते हैं। इन पद्योंमे पहले तीन पद्य यशस्तिलकके छट्टे आश्वासके और शेष पद्य सातवें आश्वासके है।

ग—योगशास्त्र ( श्वेताम्बरीय ग्रथ ) से।

"सरागोपि हि देवश्चेद्गुरुरब्रह्मचार्यपि।
कृपाहीनोऽपि धर्मश्चेत्कष्टं नष्टं हहा जगत् ॥ १९ ॥
म्रियस्वेत्युच्यमानोऽपि देही भवति दुःखित।
मार्यमाणः प्रहरणैर्दारुणै स कथं भवेत् ॥ ३४ ॥
कुणिर्वरं वरं पंगुरशरीरी वरं पुमान्।
अपि संपूर्णसर्वांगो न तु हिंसापरायणः ॥ ३४१ ॥
हिंसा विघ्नाय जायेत विघ्नशांत्यै कृतापि हि।
कुलाचारधियाप्येषा कृता कुलविनाशिनी ॥ ३२९
मांसं भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वे निरुक्तिं मनुरब्रवीत् ॥ २६५ ॥
उलूककाकमार्जारगृध्रशंवरशूकराः।
अहिवृश्चिकगोधाश्च जायंते रात्रिभोजनात् ॥ ३२६ ॥"

उपर्युक्त पद्य श्रीहेमचन्द्राचार्य विरचित 'योगशास्त्र' से लिये हुए माल्रम होते है। इनमेसे शुरूके चार पद्य योगशास्त्रके दूसरे प्रकाश ( अध्याय ) के हैं और इस प्रकाशमें क्रमश: नं १४-२७ २८-२९ पर दर्ज हैं। अन्तके दोनों पद्य तीसरे प्रकाशके है और इनकी सख्या १६ और १६७ है।

### घ—कुन्दकुन्दश्रावकाचारसे*।

"आरभ्यैकांगुलाद्बिम्बाद्यावदेकादशांगुलं। (उत्तरार्ध) १०३॥
गृहे संपूजयेद्बिम्बमूर्ध्वं प्रासादगं पुनः।
प्रतिमा काष्टलेपाश्मस्वर्णरूप्यायसां गृहे॥ १०४॥
मानाधिकपरिवाररहिता नैव पूजेयत्। (पूर्वार्ध) १०५॥
प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकं।
सर्वं विलुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः॥ १०७॥
अतीताब्दशतं यत्स्यात् यच्च स्थापितमुत्तमैः।
तद्व्यंगमपि पूज्यं स्याद्बिम्बं तन्निष्फलं न हि॥ १०८॥"

उपर्युक्त पद्य कुन्दकुन्दश्रावकाचारसे लिये हुए मालूम होते हैं। इनमेंसे अन्तके दो पद्य आठवें उल्लासके हैं जिनका नम्बर, इस उल्लासमें, ७९ और ८० दिया है। शेष पद्य प्रथम उल्लासके है। प्रथम उल्लासमें इन पद्योंका नम्बर क्रमशः १३७, १७१ और १३३ दिया है। ऊपर जिन उत्तरार्ध और पूर्वार्धोंको मिलाकर दो कोष्टक दिये गये हैं, कुन्दकुन्दश्रावकाचारमें ये दोनों श्लोक इसी प्रकार स्वतंत्र रूपसे नं. १३७ और १३८ पर लिखे हैं। अर्थात् उत्तरार्धको पूर्वार्ध और पूर्वार्धको उत्तरार्ध लिखा है। उमास्वामिश्रावकाचारमें उपर्युक्त श्लोक न. १०३ का पूर्वार्ध और श्लोक नं. १०५ का उत्तरार्ध इस प्रकार दिया है:—

"नवांगुले तु वृद्धिः स्यादुद्वेगस्तु षडांगुले (पूर्वार्ध) १०३॥"
"काष्ठलेपायसां भूताः प्रतिमाः साम्प्रतं न हि (उत्तरार्ध)१०५॥"

---

* यद्यपि इस श्रावकाचारकी कुछ सधियोंमें यह प्रगट किया गया है कि यह ग्रंथ श्रीजिनचद्राचार्यके शिष्य कुन्दकुन्दस्वामीका बनाया हुआ है। और मगलाचरणमें 'वन्दे जिनविधुं गुरुं' इस पदके द्वारा ग्रथकर्ताने जिनचन्द्र गुरुको नमस्कार भी किया है। तथापि यह ग्रंथ समयसारादि ग्रथोंके प्रणेता भगवत्कुदकुन्दाचार्यका बनाया हुआ नहीं है। परंतु उमास्वामिश्रावकाचारसे पहलेका बना हुआ जरूर मालूम होता है। इस ग्रथकी परीक्षा फिर किसी स्वतत्र लेख द्वारा की जायगी।

लेखक।

श्लोक न. १०५ के इस उत्तरार्धसे माळूम होता है कि उमास्वामिश्रावकाचारके रचयिताने कुन्दकुन्दश्रावकाचारके समान काष्ठ लेप और लोहेकी प्रतिमाओंका श्लोक न. १०४ में विधान करके फिर उनका निषेध इन शब्दोंमें किया है कि आजकल ये काष्ठ, लेप और लोहेकी प्रतिमायें पूजनके योग्य नहीं हैं ? इसका कारण अगले श्लोकमें यह बतलाया है कि ये वस्तुयें यथोक्त नहीं मिलतीं और जीवोत्पत्ति आदि बहुतसे दोषोंकी संभावना रहती है। यथाः—

"योग्यास्तेषां यथोक्तानां लाभस्यापित्वभावतः ।
जीवोत्पत्त्यादयो दोषा बहवः संभवंति च ॥ १०६ ॥"

ग्रंथकर्त्ताका यह हेतु भी विद्वज्जनोंके ध्यान देने योग्य है।

ङ—उपासकाचारसे*।

"एतेषु निश्चयो यस्य विद्यते स पुमानिह ।
सम्यग्दृष्टिरिति ज्ञेयो मिथ्यादृक्तेषु संशयी ॥ २० ॥
मांसरक्तार्द्रचर्मास्थिखुरादर्शनतस्त्यजेत् ।
मृताङ्गिवीक्षणादन्नं प्रत्याख्यानान्नसेवनात् ॥ ३१५ ॥"

ये दोनों श्लोक पूज्यपादकृत उपासकाचारमें नं. ८ और ३८ पर दर्ज हैं। वहींसे उठाकर रक्खे हुए माळूम होते हैं।

च—धर्मसंग्रहश्रावकाचारसे ।

"माल्यधूपप्रदीपाद्यैः सचित्तैः कोऽर्चयेज्जिनम् ।
सावद्यसंभवाद्वक्ति यः स एवं प्रबोध्यते ॥ १३७ ॥
जिनार्चानेकजन्मोत्थं किल्विषं हन्ति या कृता ।
सा किन्न यजनाचारैर्भवं सावद्यमंगिनाम् ॥ १३८ ॥
प्रेर्यन्ते यत्र वातेन दन्तिनः पर्वतोपमाः ।
तत्राल्पशक्तितेजस्सु दंशकादिषु का कथा ॥ १३९ ॥

---

* यह उपासकाचार ग्रंथ, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रंथोंके प्रणेता श्रीमत्पूज्यपादस्वामीका बनाया हुआ नहीं है। इसकी परीक्षा भी फिर किसी स्वतंत्र लेख द्वारा की जायगी।

—लेखक।

भुक्तं स्यात्प्राणनाशाय विषं केवलमंगिनाम् ।
जीवनाय मरीचादिसदौषधविमिश्रितम् ॥ १४० ॥
तथा कुटुम्बभोग्यार्थमारंभः पापकृद्भवेत् ।
धर्मकृद्दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा ॥ १४१ ॥"

ये पाचों पद्य पं० मेधावीकृत 'धर्मसंग्रहश्रावकाचारके' ९ वें अधिकारमें नम्बर ७२ से ७६ तक दर्ज है। वहींसे लिये हुए माळूम होते है।

छ—अन्यग्रंथोंके पद्य ।

"नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधात्स्वर्गस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ २६४ ॥
आसन्नभव्यता कर्महानिसंज्ञित्वशुद्धपरिणामाः ।
सम्यक्त्वहेतुरन्तर्बाह्योप्युपदेशकादिश्च ॥ २३ ॥
संवेगो निर्वेदो निन्दा गर्हा तथोपशमभक्ति ।
वात्सल्यं त्वनुकम्पा चाष्टगुणाः सन्ति सम्यक्त्वे ॥ ७० ॥"

इन तीनों पद्योंमेंसे पहला पद्य मनुस्मृतिके पांचवें अध्यायका है। योगशास्त्रमें श्रीहेमचन्द्राचार्यने इसे, तीसरे प्रकाशमें, उद्धृत किया है और मनुका लिखा है। इसीलिये या तो यह पद्य सीधा 'मनुस्मृति' से लिया गया है या अन्य पद्योंकी समान योगशास्त्रसे ही उठाकर रक्खा गया है। दूसरा पद्य यशस्तिलकके छठे आश्वासमें और धर्मसंग्रहश्रावकाचारके चौथे अधिकारमें 'उक्तं च' रूपसे लिखा है। यह किसी दूसरे ग्रंथका पद्य है— इसकी टकसाल भी अलग है—इसलिए ग्रंथकर्त्ताने या तो इसे सीधा उस दूसरे ग्रथसे ही उठाकर रक्खा है और या उक्त दोनों ग्रथोंमेंसे लिया है। तीसरा पद्य 'वसुनन्दिश्रावकाचार' की निम्नलिखित प्राकृत गाथाकी संस्कृत छाया है:—

"संवेओ णिव्वेओ णिंदा गरुहा य उवसमो भत्ती ।
वच्छल्लं अणुकंपा अट्ठगुणा हुंति सम्मत्ते ॥ ४९ ॥

इस गाथाका उल्लेख 'पञ्चाध्यायी' में भी, पृष्ठ १३२ पर, 'उक्तं च' रूपसे पाया जाता है। इसलिये यह तीसरा पद्य या तो वसुनन्दिश्रावकाचारकी टीकासे लिया गया है या उस गाथापरसे उल्था किया गया है। (शेष आगे)

---

## लक्खी बाई।

### (पद्यगल्प)

(१)

कार्शीमें थी एक अनोखी लक्खी बाई।
रंभासे भी रुचिररूपवाली मनभाई॥
दूर दूर तक थी प्रसिद्ध उसकी सुघराई।
चित्र देखकर हुए हजारों थे सौदाई॥
कथकोंने की शायरी, भाव बतानेके लिए।
कितनोंने तोड़े कलम कवि कहलानेके लिए॥

(२)

मिला बाहरी रूप-रंग था उसको जैसा।
था स्वभाव भी सहृदयतासे सुन्दर वैसा॥
कामशास्त्रका ग्रंथ चाहिए उसको कहना।
थे सब सिद्ध प्रयोग, सदा लड़ता था लहना॥
नाच और गाना कभी उसका होता था कहीं।
तिल रखनेको भी जगह तो फिर मिलती थी नहीं॥

(३)

धनी, सेठ, जौहरी, महाराजा, रजवाड़े।
जिनके देखे दूत अनेकों तिरछे आड़े॥

आते–जाते और बुलाते थे आदरसे।
बरसाते थे रत्न और धन लाकर घरसे ॥
एक लाख रुपया अगर कोई देता था कभी।
एक रात उसके निकट रहती थी लक्खी तभी॥

( ४ )

किन्तु उधर जो दीन दुखी दुख रोता आकर।
जाता वह होकर निहाल मनमाना पाकर ॥
विश्वनाथको अगर कभी घरसे जाती थी।
या गंगापर पर्व दिवसमें वह आती थी ॥
तो लक्खी पर दृष्टियाँ पड़तीं थीं इस ढंगसे।
ज्यों भौंरोकी पंक्तियाँ मिले कमलके अंगसे ॥

( ५ )

कोढ़ी छूले एक विप्र थे उसी पुरीमें।
होता था रोमाञ्च देखकर दशा बुरीमें ॥
पीव अंगसे वस्त्र फोड़ बाहर छनता था।
'त्राहि त्राहि भगवान!' यही कहते बनता था ॥
प्रायश्चित्त उसे समझ अपने पहले कर्मका।
सहते थे चुपचाप सब कष्ट हृदयके मर्मका ॥

( ६ )

पापी थे, पर पुण्य न-जाने कौन किया था।
जिससे पत्नी पतिव्रताने साथ दिया था॥
चन्द्र साथ चाँदनी और काया सँग छाया।
वह थी पति-अनुचरी, जीवके जैसे माया॥
सेवा करती हरघड़ी अपने पतिकी भक्तिसे।
होने देती थी नहीं कष्ट उन्हें निज शक्तिसे॥

( ७ )

करती थी सब काम सबेरे उठकर अपने।
पतिके पैरों पास लगे फिर हरिको जपने ॥
पतिकी आँखें खुली देखकर लाती पानी।
करती उन्हें प्रसन्न बोलकर मीठी बानी ॥
शौच कराकर प्रेमसे धोती थी सब अंगको।
अपने हाथोंसे उन्हें घोट पिलाती भंगको ॥

( ८ )

भोजन कर तैयार खिलाती अपने क र।
और सुलाती पलँग बिछाकर अति आदरसे ॥
फिर करके सत्कार अतिथिका भोजन करती।
तन मन धनसे आठ पहर पतिका दम भरती ॥
एक अलौकिक तेजका परिचय मुखमें मिल रहा।
दया शान्ति सन्तोष था आँखों भीतर खिल रहा ॥

( ९ )

स्वामीका मुख मलिन देखकर इतने पर भी।
पतिव्रताने चैन न पाई फिर दम भर भी ॥
बोली दोनों हाथ जोडकर—"बोलो प्यारे!
चिन्तित सा है चित्त कौनसे दुखके मारे? ॥
वारूँ तुमपर नाथ, मै, हँसते हँसते जान भी।
पूर्ण करूँगी कामना, आप कहेंगे जो, अभी" ॥

( १० )

कई बार यों कहा, कबूला मगर न स्वामी।
टाल दिया, 'कुछ नहीं प्रिये!' कह भरी न हामी ॥

पीछे जब पड़ गई, लगी रोने वह बाला।
हाथोंसे मुँह ढाँप विप्रने तब कह डाला ॥
" मै पामर हूँ पातकी, किस मुँहसे प्यारी, कहूँ।
लक्खी पर आसक्त हूँ—इसी हेतु दुःखित रहूँ ॥

( ११ )

मुझको है यह विदित, रूपधन उसको प्यारा।
मै हूँ कोढ़ी घृणित बना वैतरणी-धारा ॥
कपड़ा देते लोग नाकमें देख मुझे सब।
लक्खीबाई फिर दरिद्रको मिलनेकी कब ?
किन्तु, नीच मन यह तदपि होता नहीं निरस्त है।
लोक—हँसाई तुच्छ कर अपनी धुनमें मस्त है " ॥

( १२ )

पतिकी सुनकर बात सतीने सोचा दिलमे।
" डालूँगी मैं हाथ, नाथ, नागिनके बिलमें ॥
इच्छा पूरी करूँ, जिस तरह वह हो पूरी।
हूँ पतिव्रता तो न रहेगी बात अधूरी " ॥
यों विचार कर ब्राह्मणी, बोली उस दम कुछ नहीं।
पतिको सोया देखकर, चल दी फिर घरसे कहीं ॥

( १३ )

लक्खी सन्ध्यासमय द्वारपर आजाती थी।
होता था जो दुखी उसे घरमें लाती थी ॥
जो वह माँगे वही उसे देकर आदरसे।
करती थी वह विदा नित्य ही अपने घरसे ॥
देखा उसने एक दिन देवी सी कोई खड़ी।
किसी प्रतीक्षामें अड़ी, चिन्तित सी है हो पड़ी ॥

( १४ )

आँखे मिलते हाथ जोड़कर लक्खी बोली।
"किसकी तुम्हें तलाश? किधरको इच्छा डोली?
जो चाहो सो देवि, यहाँपर मिल सकता है।
नव आशामय मुकुल-मनोरथ खिल सकता है॥
खडे न होने योग्य है किन्तु राह यह पापकी।
लक्खी बाई अति-अधम दासी हूँ मैं आपकी"॥

( १५ )

युक्तिपूर्ण यह उक्ति श्रवण कर ब्राह्मणबाला।
बोली, "मैंने यहाँ ढंग सब देखा भाला॥
पुण्य कार्यको पापपथ पर जो हो जाना।
तो उसमें कुछ दोष नहीं ऋषियोंने माना॥
गुण-धर जीवन नीचसे पावें ऐसी चाहमें।
यही सोचकर आज मैं आई हूँ इस राहमें"॥

( १६ )

सुन सादर ले गई उसे घर लक्खी बाई।
पतिव्रताने बात खुलासा सभी सुनाई॥
चुप रहकर कुछ देर, सोचकर बाई बोली।
"देखो देवी, आठ रोजमें होगी होली॥
उस दिन ब्राह्मणदेवको दावत दूँगी भौनमें।
दासी होकर करूँगी जौन कहेंगे तौन मैं"॥

( १७ )

ब्राह्मणको जब मिला निमन्त्रण बाईजीका।
विस्मित तकता रहा देरतक मुख पत्नीका॥

बुरी दुराशा हृदय बीच जो देती थी दुख।
वह आशा बन लगी कल्पनाका देने सुख॥
ज्यों त्यों काटे आठ दिन, होलीका दिन आगया।
गली गलीके गोलमें होलीका रँग छागया॥

( १८ )

उबटन सौरभ-सना बनाकर घना लगाया।
फिर नहलाकर, बाँध पट्टियाँ, साफ बनाया॥
वस्त्र इतरमें बसे हाथसे फिर पहनाये।
करके यों सिंगार सतीने सब सुख पाये॥
लक्खीकी थी पालकी आई लेने द्वारपर।
भेज दिया पतिदेवको उसपर स्वयं सवारकर॥

( १९ )

अतिथि-आगमन समाचार सुनकर उठ धाई।
अगवानीको आप द्वारपर लक्खी आई॥
आदरसे ले गई भवनके भीतर बाई।
पैर पखारे प्रथम आरती फिर उतराई॥
फल, गोरस, मिष्टान्न कुछ ब्राह्मणको अर्पण किया।
और रसीली दृष्टिसे उनको सुखी बना दिया॥

( २० )

आया फिर दो जगह भरा पानी पीनेका।
एक स्वर्णका कलश, काम जिसपर मीनेका॥
मिट्टीका भी वहीं दूसरा और पात्र था।
जो जलका सामान्य एक आधार मात्र था॥
ब्राह्मणको यह देखकर, मनमें कौतूहल हुआ।
पूछा, यह क्यों, किस लिए, दो पात्रोंमें जल हुआ? ॥

( २१ )

तब लक्खीने कहा, "बात यह है साधारण।
जरा सोचिए, जान पडेगा इसका कारण ॥
स्वर्ण-कलशमें भरा बर्फका ठंडा जल है।
मिट्टीकेमें भरा हुआ गगाका जल है ॥
क्षणिक तृप्तिके बाद ही तृष्णा बढती एकसे।
और मिटे सन्ताप सब ठंडक पड़ती एक से ॥

( २२ )

आडम्बर है उधर, इधर गुण-गरिमा सोही।
इनमेंसे जो रुचे ग्रहण करिए उसको ही"॥
सुनकर सोचे विप्र, ग्रहण गगाजल करना।
जो न सुलभ, मन उसी तरफ क्यों चञ्चल करना ॥
बोले-"बाईजी सुनो, मै ब्राह्मण हूँ जातिका।
गंगाजलको छोडकर, पिऊँ न जल इस भाँतिका" ॥

( २३ )

तब होकर कुछ नम्र, दृष्टि अपनी थिर करके।
बोली लक्खी विप्र ओर यो ही फिर करके ॥
"योग्य आपके देव, आपका यह विचार है।
फिर गणिकाकी चाह हृदयमें किस प्रकार है ?
स्वर्ण-कलशका बर्फ-जल मेरे मिलन-समान है।
इस सु-वर्णकी चमकमें बड़े बड़ोंका ध्यान है ॥

( २४ )

जैसे ठडी बर्फ तापको क्षणभर हरती।
फिर न मिले, तो और प्यासको दूना करती॥

वैसे गणिका-प्रणय-साधनाका सुख होता ।
बढ़ती जीकी जलन शान्तिका सूखे सोता ॥
गंगाजल है आपकी शीतल विमल पतिव्रता ।
उसे छोड क्या उचित है करना ऐसी मूर्खता ?"

( २५ )

सुन वेश्याके वचन विप्र जैसे जागेसे ।
मोह होगया दूर, हटा पर्दा आगेसे ॥
"सच तो है, यह कहाँ रूप-मृगतृष्णा ऐसी ?
और कहाँ वह शान्ति-रूपिणी गंगा जैसी ?
मुझसे तो वेश्या भली, इतना जिसे विचार है ।
मेरी मतिको, ज्ञानको, शिक्षाको धिक्कार है !"

( २६ )

लक्खीने ऐसे उपायसे काम निकाला ।
विप्र बचे, वह बची, प्रतिज्ञाको भी पाला ॥

* * *

ब्राह्मणने फिर अनुष्ठान गंगापर ठाना ।
गायत्रीसे मिटा कोढ, पाया मनमाना ॥

* * *

पतिव्रता भी अन्त तक पतिपदपूजारत रही ।
पाठकगण, तुम भी कहो—'धन्य धन्य भारतमही !"

रूपनारायण पाण्डेय ।

# विविध समाचार।

**कुमारोंकी संख्या**—पृथ्वीके सब देशोंकी अपेक्षा भारतवर्षमें अविवाहितोंकी सख्या बहुत ही कम है। यहाँ कोई अविवाहित रहना ही नहीं चाहता अथवा और देशोंकी अपेक्षा यहाँ विवाह करना एक बहुत ही मामूली बात है। सारे बगालमें जिसकी जन संख्या ५ करोड़ है केवल ६७८७ मनुष्य कौमार्य जीवन भोगनेवाले है। इग्लेण्डमें जब हजार पुरुषोंमें ३५७ पुरुष और हजार स्त्रियोंमें ३४० स्त्रियाँ विवाहित जीवन भोगनेवाली हैं तब बंगालमें यथाक्रम ४४९, और ४६३, मद्रासमें ४२७ और ४३९, पजाबमे ३८८ और ४८० मध्यम प्रदशमें ५१९ और ५२९, बम्बईमे ४७४ और ५११ पुरुष स्त्रियाँ वैवाहिक सुख भोगनेवाली है। यहाँ तो साल साल दो दो सालके ही बालक बालिकायें विवाहसूत्रमें बँध जाते है। फिर अविवाहितोंकी सख्या अधिक क्यो होगी? जो कुछ है वह उन जातियोंकी कृपासे है जिनमें लड़कियोका मूल्य कई हजार तक बढ़ गया है।

**पतित जातियोका उद्धार**—भारतवर्षमें कुछ जातियाँ ऐसी है जो अस्पर्श्य समझी जाती हैं और उनके स्पर्शसे उच्च जातियोंका धर्म चला जाता है। ऐसे लोगोकी सख्या बहुत ही ज्यादा कई करोड़ है। ये लोग अस्पर्श्य तो हैं ही, इसके सिवा इनकी विद्या शिक्षा आदिका कोई प्रवन्ध न होनेसे ये मनुष्यत्वसे भी वञ्चित रहते है। पशुओंसे भी ये गये बीते हैं। इनके प्रति देशवासियोंके असद्व्यवहारका एक वड़ा भारी कटुक फल यह हो रहा है कि देशमें ईसाइयोंकी संख्या बड़ी ही तेजीसे बढ़ रही है। ईसाई लोग सहज ही इन अस्पृश्य लोगोंको ईसाई बनाकर ऊँचा उठा लेते हैं। यह देख सारे देशके शिक्षितोंने इन लोगोंके उद्धार करनेके लिए कमर कस ली है।

कहीं इनके लिए स्कूल खोले जा रहे है, कहीं छात्रालय बनाये जा रहे है और कहीं इनकी शुद्धि की जा रही है। बडौदा, कोल्हापुर, महसूर, आदिके बड़े बड़े राजा भी इस विषयमें खूब प्रयत्न कर रहे हैं। पाठकोंको मालूम है कि कर्नाटकके समान मद्रासमें भी एक 'पचम' नामकी जाति है। जहाँ तक खोजकी गई है उससे मालूम होता है कि ये लोग पहले जैनी थे और जैनद्वेषी ब्राह्मणोने इन्हें चतुर्वर्णसे बहिर्भूत पंचम वर्णके नामसे प्रसिद्ध किया था। इस समय इस जातिकी बड़ी ही दुर्दशा है। यह अत्यंत ही दरिद्री है और नाई धोबी आदि नीचे जातियोसे भी अधिक नीच समझी जाती है। जिस कुए या तालाबसे सर्व साधारण पानी ले सकते हैं उससे इन्हें पानी लेनेका भी अधिकार नहीं। यह देखकर पालघाटकी वेदान्त सभाके कुछ दयाप्रवण लोगोंने इस जातिके उद्धारके लिए कमर कसी है। श्रीयुक्त शेषार्य और व्येंकटराव नामके दो सज्जन इस कार्यके अगुए हैं। इन्होंने रात दिन परिश्रम करके पालघाटमें पंचम लोगोंके लिये एक प्राथमिक विद्यालय स्थापित किया है जिसमें शिल्पशिक्षाका भी प्रबन्ध किया गया है। लगभग ८० लड़के इसमें पढ़ने लगे हैं। उन्हें शिक्षापयोगी वस्तुयें तथा कपडे लत्ते और भोजन भी दिया जाता है। और और तरहसे भी पचम लोगोको सहायता दी जाती है। उनके लिए एक जुदा जलाशय भी बना दिया गया है। क्या कभी जैनियोंका ध्यान भी अपने इन बिछुड़े हुए दरिद्र भाइयोंकी ओर जायगा ?

**कविसम्मान**—बंगालके सुप्रसिद्ध लेखक और कवि श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ ठाकुरको ससारका सबसे बडा पारितोपिक 'नोबेल प्राइज' मिला है। सवा लाख रुपयेका यह पारितोषिक है। आज तक किसी

भी भारतवासीको यह पारितोषिक न मिला था—भारत ही क्यों इंग्लेण्डमें भी अब तक केवल एक ही विद्वान् इसे प्राप्त कर सका था। रवीन्द्रबाबू इस समय संसारके सर्वश्रेष्ठ महाकवि गिने जाने लगे हैं। रवीन्द्रबाबू बड़े ही उदार हैं। उन्होंने पारितोषिककी यह बड़ी रकम बोलपुरके महाविद्यालयको दे डाली है जो कि गुरुकुलके ढँगकी एक बहुत ही ऊँचे दर्जेकी सस्था है।

**आदर्शविवाह**—जयपुरके लाला मोतीलालजी सघईके पुत्र सूर्यनारायणजीका विवाह लाला फूलचन्द्रजी गोधा वाकीवालोंकी कन्या कमलादेवीके साथ आदर्श पद्धतिसे हुआ। इस विवाहमें सब कार्य नई संशोधित पद्धतिके अनुसार हुए। पिताने विदाके समय अपनी लडकीको बहुत ही आवश्यक उपदेश दिये और उन्हें ग्रहण कर लड़कीने अपनी कृतज्ञता प्रगट की। दहेजमें जेवर न देकर पुस्तकोंका एक अच्छा समूह दिया गया। और सब दस्तूरोंको तोड़कर १०१) भारतकी जैन और अजैन सस्थाओंको दान दिया गया।

**मारवाड़ी विद्यालय**—कानपुरके मारवाड़ियोंने अभी हालही एक विद्यालय स्थापित किया है। सेठ विलासराय हरदत्तरायजीने इस विद्यालयके लिए ४५ हजार रुपयेका दान किया।

**विद्यार्थियोंकी आवश्यकता**—जैन बोर्डिंगहाउस वर्धा (सी. पी.) के सैक्रेटरी प० जयचन्द्र श्रावणे सूचित करते हैं कि बोर्डिंग हाउसमें विद्यार्थियोंकी जरूरत है। गरीब विद्यार्थियोंको भोजनादिका खर्च दिया जाता है। समर्थ विद्यार्थियोंसे ७) मासिक लिया जाता है।

**नई जैनग्रन्थमाला**—बम्बईसे पं० उदयलालजी काशलीवालने "जैनसाहित्यसीरीज" नामकी एक ग्रन्थमाला निकालनेका प्रारंभ किया है। पहला ग्रन्थ नागकुमारचरित तैयार है। जैनीभाइयोंको ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक बन जाना चाहिए।

---

# नये नये जैन ग्रन्थ।

**नागकुमार चरित**—उभय भाषा कवि चक्रवर्ती मल्लिषेण सूरिके संस्कृत ग्रन्थका सरल हिन्दी अनुवाद। पं० उदयलालजीने लिखा है। हालही छपा है। मू० ।=)

**यात्रादर्पण**—तीर्थोंकी यात्राका इसमें बड़ा विवरण अब तक नहीं छपा। इसमें सम्पूर्ण सिद्धक्षेत्र, प्रसिद्ध मन्दिर और शहरोंका वर्णन है। इतिहासकी बातें भी लिखी गई है। जैन डिरेक्टरी आफिसने इसे बड़े परिश्रम और खर्चसे तैयार कराई है। साथमें रेलवे आदिका मार्ग बतलानेवाला एक बड़ा नकशा है। पक्की कपड़ेकी जिल्द है। बड़े साइजके २५९ पृष्ठ है। मूल्य दो रुपया।

**चरचाशतक**—मूल और नई सरल हिन्दी टीका सहित। कपड़ेकी जिल्द। मूल्य ) बारह आना।

**न्यायदीपिका**—प्रसिद्ध न्यायका ग्रन्थ हिन्दी भाषाटीका सहित मूल्य ॥|)

**धर्म प्रश्नोत्तर श्रावकाचार**—श्रीसकलकीर्तिके प्रसिद्ध ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद। सबका सब प्रश्न और उत्तरोंसे लिखा गया है। साधारण बुद्धिके लोग भी समझ सकते हैं। मूल्य २)

**धर्मविलास या द्यानतविलास**—कविवर द्यानतरायजीका प्रसिद्ध ग्रन्थ। एक महीनेमें तैयार हो जायगा। मूल्य १)

# दूसरोंके पढ़ने योग्य ग्रन्थ।

## प्रेम प्रभाकर।

रूसके प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा टालसटायकी २३ कहानियोंका हिन्दी अनुवाद। प्रत्येक कहानी दया, करुणा, विश्वव्यापी प्रेम, श्रद्धा और भक्तिके तत्त्वोंसे भरी हुई है। बालक स्त्रियाँ, जवान बूढे सब ही

## धर्मदिवाकर।

इसमें मनुष्यके जीवनका आदर्श बतलाया गया है। संसारमें कितना दुःख है और परोपकार स्वार्थत्याग प्रेममें कितना सुख है यह इसमें एक कथाके बहाने दिखलाया है। मूल्य ।)

# हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकरके अनमोल ग्रन्थ।

लगभग डेढ वर्षसे हमने 'हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर सीरीज' नामकी एक ग्रन्थमाला निकालना शुरू की है। इसके अभीतक जितने ग्रन्थ निकले है उनकी सब ही विद्वानो लेखकों और सम्पादकोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा की है। यह माला बराबर निकला करेगी। इसके जो स्थायी ग्राहक होंगे उन्हे सब ग्रन्थ पोनी कीमतपर दिये जावेंगे। पहले आठ आना जमा करा देना चाहिए। ग्रन्थोंकी प्रशंसाका बड़ा सूचीपत्र मॅगाके देखिए। नीचे लिखे ग्रन्थ तैयार हैं।

१ स्वाधीनता—लिबर्टीका हिन्दी अनुवाद। लेखक प० महावीरप्रसादजी द्विवेदी। मूल्य २)

२ मिलका जीवन चरित-स्वाधीनताके मूल लेखकका शिक्षाप्रद चरित। लेखक, नाथूराम प्रेमी। मूल्य ।)

३ प्रतिभा—हिन्दीका अपूर्व उपन्यास। मू० १।)

४ फूलोंका गुच्छा—मनोहर शिक्षाप्रद कहानियोंका संग्रह मूल्य ॥=)

५ ऑखकी किरकिरी—जिन्हें अभी हाल ही सवालाख रुपयाका इनाम मिला है। जो इस समय दुनियाके सबसे बडे लेखक और कवि हैं, उन बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रसिद्ध उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। ऐसा उपन्यास आपने अबतक नहीं पढ़ा होगा। मूल्य १॥।)

चौबेका चिट्ठा—छप रहा है।

मैनेजर जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
गिरगाव—बम्बई।

पिंक मूल्य १॥)                Reg. No. B. 719.

ॐ

# जैनहितैषी ।

जैनियोंके साहित्य, इतिहास, समाज और
धर्मसम्बन्धी लेखोंसे विभूषित

## मासिकपत्र ।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी ।

दशवाँ भाग । | मार्गशिर श्रीवीर नि० संवत् २४४० | दूसरा अंक ।

विषयसूची । पृष्ठ



---

पत्रव्यवहार करनेका पता—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई ।

Printed by (

## केशर।

काश्मीरकी केशर जगत्प्रसिद्ध है। नई फसलकी उम्दा केशर शीघ्र मगाईये। दर १) तोला।

## सूतकी मालायें।

सूतकी माला जाप देनेके लिए सबसे अच्छी समझी जाती है। जिन भाइयोंको सूतकी मालाओंकी जरूरत होवे हमसे मगावें। हर वक्त तैयार रहती है। दर एक रुपयेमें दश माला।

## फूलोंका गुच्छा।

इस गुच्छेमें चपला, वीरपरीक्षा, कुणाल, विचित्रस्वयंवर, मधुस्रवा, शिष्यपरीक्षा, अपराजिता, जयमाला, कञ्चुका, जयमती और ऋणशोध ये ११ पुष्प है। प्रत्येक पुष्पकी सुगन्धि, सौन्दर्य और माधुर्यसे आप मुग्ध हो जावेंगे। हिन्दीमें खण्ड-उपन्यासों या गल्पोंका यह सर्वोत्तम संग्रह प्रकाशित हुआ है। प्रत्येक कहानी जैसी सुन्दर और मनोरजनक है वैसी ही शिक्षाप्रद भी है। मूल्य ॥=)

### कहानियोंकी पुस्तक।

इसमें छोटी छोटी सरल भाषामें लिखी हुई ७८ कहानियाँ है। ये कहानियाँ छोटे बडे वृद्ध सबके ही लिये शिक्षादायक है। इसकी भाषा बडी ही सरल सबके समझने लायक है। लड़के लड़कियोंको इनाम देने योग्य पुस्तक है। मूल्य पांच आना।

### यशोधर चरित।

स्याद्वाद विद्यापति-वादिराज सूरिके संस्कृत काव्यका सरल हिन्दी अनुवाद। इसमें यशोधर स्वामीका चरित वर्णन है। मुल्य चार आना।

मिलनेका पता—मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग पो० गिरगाव—बम्बई।

श्री मन्दिरजी की स्थापना * * *

* * * जैन हाईस्कूलका खुलना

पधारिए ! अक्षय धर्मप्रभावना !!

मिती चैत्र शु० ६, ७, ८, ९ और १० सं० २४४० वी० नि०
तदनुसार तारीख २, ३, ४, ५ और ६ अप्रेल १९१४
ई० को इन्दौर नगरमें उत्सव होगा.

दानवीर रायबहादुर सेठ कल्याणमलजीके दो लाखके दानसे जैन हाईस्कूल खुलेगा और सेठ साहिबकी माताजीके बनवाये हुए मन्दिरजीकी प्रतिष्ठा होगी.

उत्सवमें श्रीमन्महाराजा तुकोजीराव इन्दौर नरेश ओर उनके मन्त्री प्रसिद्ध देशभक्त सर नारायण गणेश चंदावरकर, नाइट, पधारेंगे.

उत्सवमें प्रायः समस्त जैन पण्डित, व्याख्यानदाता और प्रतिष्ठित सज्जन पधारेंगे, जैन सभाओंके विशेष अधिवेशन होंगे ।

एक शिक्षाप्रद और नवीन जैन नाटक खेला जायगा.

पधारिए ! धर्मप्रभावना कीजिए !!

पत्रव्यवहारका पता:—
प्रबन्धकर्ता—उत्सव प्रबन्धकारिणी कमेटी,
तिलोकचंद जैन हाईस्कूल, इन्दौर.



# जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम्।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

१० वाँ भाग] मार्गशीर्ष, श्री० वी० नि० सं० २४४०। [२ रा अंक

## प्राचीन भारतमें जैनोन्नतिका उच्च आदर्श।

( टी. पी. कुप्पूस्वामी शास्त्री, एम. ए, असिस्टेंट, गवर्नमेंट म्यूजियम, तजौरके एक अगरेजी लेखका अनुवाद। )

यह निधड़क कहा जा सकता है कि वेदानुयायियोंके समान जैनियोंकी प्राचीन भाषा ( प्राकृतसहित ) सस्कृत थी। जैनी अवैदिक भारतीय-आर्योंका एक विभाग है। जैन, क्षपण, श्रमण, अर्हत् इत्यादि शब्द जो इस विभागके सूचक है, सब सस्कृतमूलक है। दिगम्बर और श्वेताम्बर यह दो शब्द भी, जो इस विभागकी संप्रदायोंके बोधक हैं, स्पष्टतया सस्कृतके हैं। जैन-दर्शनमें नौ पदार्थ माने गए है—जीव, अजीव, आस्रव ( कर्मोंका आना ), बंध ( कर्मोंका आत्माके साथ बँधना ), संवर ( कर्मोंके आगमनका रुकना ), निर्जरा ( बँधे कर्मोंका नाश होना ), मोक्ष ( आत्माका कर्मोंसे सर्वथा रहित होना ), पुण्य ( शुभ कर्म ) और पाप ( अशुभ कर्म )। इन पदार्थोंमेंसे पहिले सात जैन-दर्शनमें तत्त्व कहे जाते हैं। हम यह भी देखते

है कि उपर्युक्त नौ पदार्थोंके नाम और वे शब्द भी, जो इनके अनेक विभागोंके सूचक हैं, सब संस्कृतशब्द-संग्रहसे लिए गये है।

२—इसके अतिरिक्त सब तीर्थंकर, जिनसे जैनियोंके विख्यात सिद्धांतोंका प्रचार हुआ है, आर्य्य—क्षत्रिय थे। यह बात सर्वमान्य है कि आर्य्य—क्षत्रियोंके बोलने और विचार करनेकी भाषा संस्कृत थी। जैसे कि वेदानुयायियोंके वेद हैं इसी प्रकार जैनियोंके प्राचीन संस्कृत ग्रंथ हैं जो जैनमतके सिद्धांतोंसे विभूषित हैं और वर्तमान-कालमें भी दक्षिण कर्नाटकमें मूडबद्रीके मंदिरोंके शास्त्रभंडारों और कुछ अन्य स्थानोंमें संग्रहीत है। ये प्राचीन लेख विशेषकर भोज-पत्रों पर संस्कृत और प्राकृत भाषाओंमें हस्तलिखित हैं। प्रसिद्ध मुनिवर उमास्वातिविरचित तत्त्वार्थ—शास्त्र, जो कि जैनधर्मके तत्त्वोंसे परि-पूर्ण है, संस्कृतका एक स्मारक ग्रंथ है, यह ग्रंथ महात्मा वेदव्यास कृत उत्तरमीमांसाके समान है। ईस्वी सन्‌की द्वितीय शताब्दिके आरंभमें प्रसिद्ध समंतभद्रस्वामीने विख्यात गंधहस्ति महाभाष्य रचा। जो कि पूर्वोक्त ग्रंथकी टीका है। तत्पश्चात् पूर्वोक्त दोनों ग्रंथोंपर औरोंने भी संस्कृतकी कई टीकायें रचीं। समंतभद्रस्वामीने उत्तरमें पाटलीपुत्रनगरसे दक्षिणी भारतवर्षमें भ्रमण किया। यही महात्मा पहले पहल दक्षिणमें दिगम्बरसंप्रदायके जैनियोंके निवास करनेमें सहायक और वृद्धिकारक होनेमें अग्रगामी हुए थे। इस संबंधमें यह बात याद रखने योग्य है कि श्वेताम्बरसंप्रदायके जैनी आजकल भी दक्षिण भारतवर्षमें बहुत ही कम हैं।

३—ऐसा मालूम होता है कि बहुत प्राचीन कालसे जैनियोंमें भी उपनयन ( यज्ञोपवीत—धारण ) और गायत्रीका उपदेश प्रचलित है। आजकल भी जैनमंदिरोंमें पूजन करनेमें और उन संस्कारोंमें जो

साधारणतया जैनियोके घरोंमें किये जाते हैं जिस भाषाका प्रयोग किया जाता है वह संस्कृत ही है।

४—जैनग्रंथकारोने अपना ध्यान केवल धर्म–विषयमें ही नही किन्तु सर्व–रोचक विषयोंपर भी लगाया है, संस्कृतमें ऐसे, अगणित अन्यान्य ग्रंथ हैं जो कि अटूट परिश्रम करनेवाले जैनियोंने रचे है। शाकटायन व्याकरण, जो संस्कृत व्याकरणका एक ग्रंथ है, एक जैन ग्रथकर्ता शाकटायनका रचा हुआ कहा जाता है। "लङः शाकटायनस्यैव," "व्योर्लघु प्रयत्नतरः शाकटायनस्य," पाणिनिके सूत्र हैं जो इस बातको स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि शाकटायनकी स्थिति पाणिनिके पूर्व थी। शाकटायन–व्याकरणके टीका–कर्त्ता यक्ष-वर्माचार्यने ग्रंथकी प्रस्तावनाके श्लोकोमें यह स्पष्टतया प्रगट किया है कि शाकटायन जैन थे और वे श्लोक ये हैः—

स्वस्ति श्रीसकलज्ञानसाम्राज्यपदमासवान्।
महाश्रमणसङ्घाधिपतिर्यः शाकटायनः ॥१॥
एकः शब्दाम्बुधिं बुद्धिमन्दरेण प्रमथ्य य.।
स यशःश्रियं समुद्दध्रे विश्वं व्याकरणामृतम् ॥२॥
स्वल्पग्रंथं सुखोपायं संपूर्णं यदुपक्रमम्।
शब्दानुशासनं सार्वमर्हच्छासनवत्परम् ॥३॥

* * * * * *

तस्यातिमहतीं वृत्तिं संहृत्येयं लघीयसी।
संपूर्णलक्षणा वृत्तिर्वक्ष्यते यक्षवर्मणा ॥५॥

इनका अर्थ यह है कि "सकलज्ञान–साम्राज्यपदभागी श्रीशाकटा-यनने,—जो कि जैन समुदायके स्वामी थे—अपने ज्ञानरूपी मंद्राचलसे (संस्कृत) शब्दरूपी सागरको मथ डाला और व्याकरणरूपी अमृ-

तको यशरूपी लक्ष्मी सहित प्राप्त किया। यह महाशास्त्र—जो कि अर्हत् भगवानके शासनके समान है—सर्वसाधारणके हितार्थ संपूर्ण, सुगम, और संक्षिप्त रीतिसे लिखा गया है। यह सरल टीका जो इसी ग्रंथकी ( अमोघवृत्ति नामक ) वृहद् टीका है—के आधारपर रची गई है और व्याकरणके सर्व गुणोंसे अलंकृत है—यक्षवर्मोक्त है"।

५—इसके उपरान्त अमरकोश नामक प्राचीन कोशके रचयिता एक जैन कोशकार अमरसिंह[1] थे जो कि महाविद्वान् तथा संस्कृत साहित्यके श्रेष्ठ—जगद्विख्यात—वैयाकरणोंमेंसे थे। सर्व टीकाकारोने इस, अमर ग्रंथका जैनकृत होनेपर भी सदृश मान किया है। क्रमशः ब्राह्मणोंके समान जैनियोंने भी उन लोगोंकी भाषा ग्रहण कर ली जिनके मध्यमें उन्होंने निवास किया; किन्तु कई शताब्दि होजानेपर भी वह आदर और प्रेम, जो उनको अपनी मातृ-भाषा संस्कृतसे था, नहीं घटा। क्योंकि उस अपूर्व विद्वत्तासे जो उन्होंने संस्कृतसाहित्यमें आगामी कालमें प्राप्त की, यह स्पष्ट है कि संस्कृतके अर्थ उनका आवेश अपरमित था। निम्नलिखित ग्रंथ जैनग्रंथकर्ताओंके रचे हुए हैं। **व्याकरणके ग्रंथ**—न्यास ( प्रभाचंद्रकृत ), कातंत्रव्याकरण अपरनाम कौमार व्याकरण ( शर्ववर्मकृत ), शब्दानुशासन ( हेमचंद्रकृत ), प्राकृत-व्याकरण ( त्रिविक्रमकृत ), रूपसिद्धि ( दयापाल मुनिकृत ), शब्दार्णव ( पूज्यपादस्वामीकृत ), इत्यादि; **कोश**—त्रिकांडशेष, नाममाला ( धनञ्जयकृत ), अभिधानचिंतामणि, अनेकार्थसंग्रह और हेमचन्द्रकृत अन्य कोश; **पुराण**—महापुराण, पद्मपुराण, पाडवपुराण, हरिवंशपुराण (प्राकृतमें),

---

1 अमरसिंह बौद्धसम्प्रदायके थे ऐसा प्रसिद्ध है। इनके जैन होनेके विषमें अभीतक कोई सन्तोषयोग्य प्रमाण नहीं मिला है। —सम्पादक।

त्रिषष्टिशलाका महापुराण और अन्य ग्रंथ; गद्यग्रंथ—गद्य-चिन्तामणि, तिलकमंजरी, इत्यादि; पद्यग्रंथ—पार्श्वाभ्युदय, पार्श्वनाथचरित, चंद्रप्रभचरित, धर्मशर्माभ्युदय, नेमिनिर्वाणकाव्य, जयतचरित, राघवपांडवीय ( उपनाम द्विसंधानकाव्य ), त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, यशोधरचरित, क्षत्रचूडामणि, मुनिसुव्रतकाव्य, बालभारत, बालरामायण, नागकुमारकाव्य और अन्यग्रंथ; चम्पू—जीवंधरचम्पू, यशस्तिलकचम्पू, पुरुदेवचम्पू, इत्यादि; अलंकारग्रंथ—वाग्भटालङ्कार, अलंकारचिंतामणि, अलकारतिलक, हेमचद्रकृत काव्यानुशासन, इत्यादि; नाटक—विक्रांतकौरवपौरवीय, अजनापवनंजय, ज्ञानसूर्योदय, इत्यादि; चिकित्साग्रंथ—अष्टांगहृदय; गणित ( खगोल ) व फलित ज्योतिषग्रंथ—गणितसारसंग्रह, त्रिलोकसार, भद्रबाहुसंहिता, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चंद्रसूर्यप्रज्ञप्ति, इत्यादि; न्यायग्रंथ—आप्तपरीक्षा, पत्र परीक्षा, समयप्राभृत(?)न्यायविनिश्चयालंकार, न्यायकुमुदचंद्रोदय, आप्तमीमासालंकृति ( अष्टसहस्री ), इत्यादि; हेमचंद्रकृत योगशास्त्र और अन्यग्रंथ। जैन महात्माओं द्वारा रचित सैकड़ो ग्रंथोंकी गणना करना यहाँ संभव नहीं है। इनमेंसे कुछ ग्रंथ तो प्रभावशाली और अप्रशाली मनुष्योद्वारा, जिन्होने इस कार्यको प्रेम-कृत्य समझा है, प्रकाशित हो चुके हैं और शेष अभी समयके प्रकाशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

६—प्राचीन जैनियोंने अपने निवासस्थानोंमें अपने मतका प्रचार करनेके लिये बहुतसे अनुपम और उत्तम ग्रंथ लिखे। उन स्थानोंकी देशी भाषाओंके साहित्यकी वृद्धि करनेमें भी उन्होंने कुछ कम परिश्रम न किया। जो ग्रंथ उन्होंने देशी भाषाओंमें लिखे हैं वे अधिक-

---

१ अष्टाङ्गहृदयके कर्त्ता वैद्यवर वाग्भट जैन थे, इसमें भी सन्देह है। अब तककी खोजोंसे वे बौद्ध प्रतीत होते हैं। —सम्पादक।

तर सस्कृत मूलग्रथोंके आधारपर है। कुछ अज्ञात कारणोंके वश जैनी पराक्रम और सख्यामे घटने लगे, तब उनका गौरव भी नष्ट होने लगा। उपर्युक्त बातोंपर विचार करनेसे यही अकाट्य अनुमान होता है कि प्राचीनकालमें जैनियोंकी भाषा सस्कृत थी।

७—इसके पश्चात् अब हम इस बातपर विचार करेंगे कि जैनियोंने दक्षिण भारतवर्षमे अपने ग्रहण किये हुए देशोंके साहित्यकी उन्नतिके अर्थ क्या किया। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण भारतवर्षकी चार मुख्य द्रविडभाषाओं अर्थात् तामिल, तैलग, मलायालम और कानडीमेंसे केवल प्रथम और अतिमके साथ जैनियोंका सबंध रहा। यह बात बड़ी आश्चर्यजनक है कि तैलग तथा मलायालम भाषामें ऐसे किसी भी ग्रथका अस्तित्व नहीं है जो किसी जैनकी लेखनीसे निकला हो। जबसे जैनी कर्नाट अथवा कनड़ी बोलनेवाले लोगोंके देशमें गए तबसे उन्होने कनड़ी भाषामें हजारों ग्रथ रच डाले है किन्तु इस छोटेसे लेखमें उनके विस्तारपूर्वक वर्णन करनेका अवकाश नहीं। तामिल भाषाके साहित्यमें जो उन्नति जैनग्रथकारोंने की है, उसके विषयमें ये बातें जानने योग्य हैः—

(क) तिरुकुरलको, जो एक शिक्षाप्रद ग्रथ है, और वास्तविकमें तामिल काव्य है, अमर तिरुवल्लुवानयनरने रचा था। इनका यश इतना अधिक है कि कदाचित् हिन्दू इन्हे अपनोंमेंसे ही बतावे किन्तु फिर भी यह निर्विवाद सिद्ध किया जा सकता है कि वे जैन थे। इस ग्रथमें सदाचार, धन और प्रेमका वर्णन १३३ अध्यायोंमें है और प्रत्येक अध्यायमें १० दोहे हैं। यह ग्रंथ अपने स्वभावमें ऐसा सर्व-देशीय है कि इसको बडे बड़े लेखकोंने, जो कि भिन्न भिन्न धर्मोके

अनुयायी हैं सहर्ष उद्धृत किया है और इसका अनुवाद यूरोपकी चारसे अधिक भाषाओंमें हो चुका है।*

( ख ) नालदियार नामक ग्रंथका संबंध कई जैन मुनियोसे है और यह कहा जाता है कि इसको पद्मनार नामक जैनने उन्हीं मुनियोंके ग्रथोंसे सग्रह किया था। इस काव्य-सग्रहमें ४०० चौपाइयाँ है और इसमें उन्हीं विषयोंकी व्याख्या है जिनकी कि तिरुक्कुलमें है। यह ईस्वी सन्‌की आठवीं शताब्दिके अंतिम अर्धभागमें रचा गया था जैसा कि मद्रूराके " सर्डोमिल" ( वौल्यूम नं० ४,५ और ६)में इस लेख लेखकके दिये हुए एक लेखके अवलोकनसे मालूम होगा। इस ग्रथमें कई छद हैं जो भर्तृहरि और अन्य संस्कृत लेखकोंके श्लोकोंके, आधारपर लिखे गये हैं।†

* इस मतकी पुष्टिमें डाक्टर जी ए. ग्रियर्सन लिखते हैं कि " इस ( तिरुवल्लुवानयर कृत कुरलमें......२६६० छोटे छंद हैं। इसमें सदाचार, धन और सुखके तीन विषय हैं। यह तामिल साहित्यका सर्वमान्य महाकाव्य है। शैव, वैष्णव अथवा जैन प्रत्येक सप्रदायवाले इसके कर्त्ताको अपनी ही संप्रदायका बतलाते है, परन्तु बिशप कौल्डवैलका विचार है कि इस ग्रंथका ढंग औरोंकी अपेक्षा जैन है। इसके कर्त्ताकी विख्यात भगिनी जिसका नाम औवेयार "प्रतिष्ठित माता " था सबसे अधिक प्रशसनीय तामिल कवियोंमेंसे है। ( देखो इम्पीरियल गजेटियर, वौल्यूम २, पृष्ठ ४३४ )। —अनुवादक

† डा० ग्रियर्सन इस सबधमें लिखते हैं कि मुख्य तामिल साहित्य जैनियोंके ही परिश्रमका फल है। जिन्होंने ८ या ९ से लेकर १३ वीं शताब्दि तक इस भाषामें ग्रंथ रचनेका उद्योग किया। सबसे प्राचीन महत्त्वका ग्रथ 'नालदियार' समझा जाता है और कहा जाता है कि इसमें पहिले ८००० छद थे जिनको एक एक करके उतने ही जैनियोंने लिखा था। एक राजाने इसके लेखकोंसे विरोध किया और इन छदोंको नदीमें फेंक दिया। इनमेंसे केवल ४०० छंद पानीके ऊपर तैरे और शेप लोप हो गए। आजकल 'नालदियार' में ये ही ४०० छद हैं। प्रत्येक छंद सदाचारकी एक एक पृथक् सूक्ति है और शेपसे कोई संबंध नहीं रखता। इस संग्रहकी बहुत प्रतिष्ठा है और यह अब भी तामिल भाषाकी प्रत्येक पाठशालामें पढाया जाता है। ( इ० ग० वौ० २, पृष्ठ ४३४ )

( ग ) जीवकचिन्तामणि अर्थात् पौराणिक जीवक राजाका चरित जो एक विख्यात जैन मुनि तिरुत्तकुदेवर रचित है। इस पुस्तकमें १३ खंड अर्थात् लम्बक हैं जिनमें ३१४५ गाथायें हैं। इस संबंधमे यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसकी कुछ गाथाओंकी ठीक ठीक छाया (बिम्ब-प्रतिबिंब) वादीभसिंहकृत ( संस्कृत ) क्षत्रचूड़ामणिमें है और दोनोंमे इतनी समानता है कि यह बतलाना सर्वथा सम्भव नहीं है कि किसने किसका अनुकरण किया है। तामिल साहित्यके पंच-महाकाव्योंमें इसका स्थान प्रथम है। शेष चार काव्योंमेंसे दो काव्य अर्थात् ' वल्यापि ' और ' कुदलकेसी ' दो ग्रन्थ जैन लेखकोंके बनाये हुए है। मालूम होता है कि इन दोनोंमेंसे कुदलकेसीका अस्तित्व तो है नहीं और दूसरे काव्यके भी टुकड़े ही समय समय पर प्रकाशित होते रहे हैं।

( घ ) पांच लघु कवितायें भी ( जिनको सिरु-पंचकाव्य कहते है ) सब जैनियोंद्वारा रची गई हैं।

(१) तोलामोलित्तेवर ( विवादमें अजेय ) कृत चूलामणिमें २१३१ चौपाइयाँ १२ सर्गोंमें हैं और यह ग्रंथ ईसाकी दसवीं शताब्दिके आरभमें रचा गया था। मिस्टर टी. ए. गोपीनाथ एम. ए., सुपरिन्टेंडेन्ट ऑफ आर्चिऔलाजी, ट्रावनकोर, ने जो संस्कृत यशोधरकाव्यकी प्रस्तावना लिखी है उसमें स्पष्टतया अपनी यह सम्मति दी है कि श्रवणबेलगोलाके मल्लिषेणके समाधिलेखके श्रीवर्द्धदेव और तोलामोलित्तेवर एक ही हैं और जिस ग्रथका हवाला उस लेखमें दिया है वह उसी नामका तामिल काव्य ही है।

(२) यशोधरकाव्य एक अज्ञात जैन कृत है। इसमें चार सर्ग है जिनमें ३२० छंद हैं। यह पौराणिक राजा यशोधरका चरित्र है। इस

---

१. चूलामणि कवीना चूलामणिनामसेव्यकाव्यकवि ।
श्रीवर्द्धदेव एव हि कृतपुण्य. कीर्तिमाहर्तुम् ॥

ग्रंथमे कई ऐसी गाथायें है जो उसी नामके संस्कृत ग्रंथके कई श्लोकोंसे इतनी विशेषतर मिलती जुलती है कि यह तामिलका ग्रंथ उस संस्कृत ग्रन्थका पद्यानुवाद कहा जा सकता है।

(३) उदयानन गथई, जो कि वत्सदेशके राजा उदयनका चरित है। छह सर्गोंका एक अज्ञात जैन कृत ग्रंथ है, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इस ग्रंथको एक दूसरे उदयन-काव्य नामक ग्रंथके साथ न मिला देना चाहिए। क्योंकि उसमें भी वही चरित है किन्तु वह एक दूसरे ग्रंथकर्ताका बनाया हुआ है। इसमें ६ सर्ग हैं जिनमें ३६७ गाथायें सर्वथा भिन्न भिन्न छदोंकी है। वह ग्रंथ जिसकी गणना पांच लघु कविताओंमें है उपर्युक्त पहला ग्रंथ है, क्योंकि विख्यात टीकाकार जैसे 'नच्छनर्किनियर' इत्यादिने अपने ग्रन्थोंमें इसी ग्रंथ-मेंसे वचन उद्धृत किये हैं।

(४) नागकुमार काव्य, जो कि कालके विनाशसे बञ्चित नहीं रहा है।

(५) नीलकेसी जो १० सर्गोंमें है। इस ग्रंथमे जैनधर्मके तत्त्वोंकी पुष्टि की गई है; इसके कर्त्ताका पता नहीं। इस ग्रंथपर मुनि 'समय दिवाकर' की लिखी हुई एक बड़ी टीका है।

( ङ ) पंडित गुणवीररचित 'वज्रिरानादिमलई,' जो कि एक कविता है।

( च ) मेरुमंदरपुराण, जिसके कर्ता वामनाचार्य हैं जो कि संस्कृत और तामिल दोनोंके समान पडित हैं। इस ग्रंथमें १४०६ गाथाये हैं जो १२ सर्गोंमें हैं। इसमें दो भाई मेरू और मंदरका वृत्तांत और जैनमतका संपूर्ण विवरण दिया है।

( छ ) शिक्षाप्रद कवितायें—

(१) 'पलामोली,' जनकवि 'मुतरुरई अरायनर' कृत बुद्धिविषयक सूक्तियोंका ग्रथ है जिसमें ४०० गाथायें हैं और प्रत्येक गाथामें किसी विख्यात सूक्तिकी व्याख्या है जो उसीके अतमें दी गई है।

(२) 'आचारक्कोवई,' 'पेरूवेपीमुल्लेर' कृत (१०० गाथाओंका) ग्रथ है जिसमें सदाचारके नियम लिखे हैं।

(३) तिरुकडुकम, जो 'नल्लत्तागर' कृत है।

(४) सिरुपचमूलम, जो 'ममूलनर' के एक शिष्यकृत है।

(५) पेलदी, जिसके कर्त्ता 'मदुरई मामिलसंगमफेम' के 'मक्कापनर' के एक शिष्य हैं, इत्यादि अन्य ग्रंथ।

( ज ) व्याकरण—

(१) 'अहापोरुलिलक्कानम,' जो कि तामिलकी सबसे प्राचीन तोलकाप्पियम नामक व्याकरणके तृतीय भागका सक्षेप है। इसमें पाच अध्याय हैं और 'नरक्कवि राजनंदी' जैन कृत है।

(२) पप्परुकलम, मुनिकनकसागर कृत छद और अलंकारका ग्रथ है, जिसमें तीन सर्ग है और ९५ गाथायें हैं।

(३) यप्पुरुकल करिकई, अमृतसागर मुनि कृत पूर्वोक्त ग्रथकी टीका है।

( ४ ) विराचोलियम, जो राजा वीरचोलको समर्पित एक व्याकरणका ग्रंथ है। इसके कर्त्ता बुद्धमित्र हैं जो संभवतः जैन थे। इसमें १५१ गाथाये है और उसीकी एक टीका भी है। इसमें वर्ण, शब्द, वाक्य, छंद तथा अलंकारोंका वर्णन है। यह ग्रथ ईस्वी सन्‌की ११ वीं शताब्दिके लगभग लिखा गया था, (देखो "सॅडामिल,', वौल्यूम १०, पृष्ठ २८७।)

( ५ ) नन्नुल, इसके कर्ता प्रसिद्ध पवनदी ( भवनान्दिन ) थे, जिन्होंने यह ग्रथ चोल वंशके कुलोत्तुंग तृतीयके एक जागीरदार अमराभरण सिपा गगाके अनुरोधसे १२ वीं शताब्दिके अतमें लिखा था, क्योंकि यह भली भाँति माल्रुम है कि कुलोत्तुग तृतीय ईस्वी सन् ११७८ में सिंहासनारूढ़ हुए थे। इस ग्रथमें केवल वर्णों और शब्दोका विवरण है और वर्तमान कालमें अधिकतासे प्रामाणिक समझा जाता है।

( ६ ) नेमिनिदम पडित गुणवीर कृत एक व्याकरण ग्रथ है जिसमें वर्णों और शब्दोंका विवरण है। इसमें ९६ गाथाये हैं और उनकी टिप्पणियाँ भी हैं।

( ज ) कोष——चूडामणि निघटु, मंडलपुरुष कृत, १२ अध्यायोंमें है और दो अन्य कोशो ' दिवाकरनिघटु ' और ' पिंगलंतई ' के आधार पर है। मंडलपुरुषने अपने आपको उत्तरपुराणके कर्ता गुणभद्राचार्यका शिष्य बताया है। क्योंकि यह अच्छी तरह माल्रुम है कि उत्तरपुराण ईस्वी सन् ८८८ में समाप्त हुआ ओर क्योंकि मंडलपुरुषने राष्ट्रकूटवशीय राजा अकालवर्प कृष्णराजका वर्णन किया है जो ईस्वी सन् ८७५ और ९११ के मध्यमे राज्य करते थे, अतएव यह ग्रथ ईस्वी सन्की १० वीं शताब्दिके प्रथम चतुर्थांशमें लिखा गया होगा।

( झ ) ज्योतिष—जिनेंद्रमलई, जो कि ज्योतिषका सर्व-प्रिय तामिल ग्रंथ है। प्रायः इसके रचयिता जिनेन्द्र व्याकरणके कर्त्ता (पूज्यपाद ) थे।

८——हमको वर्तमान कालमे जैनियों कृत केवल उपर्युक्त ग्रंथ ही माल्रुम हैं। मद्रास यूनिवर्सिटी ( विश्वविद्यालय ) ने अपनी आर्ट्स परीक्षाओंके लिए इनमेंसे कई ग्रन्थोको पाठ्य पुस्तकें नियत कर दिया है। इनमेंसे अधिकाश ग्रन्थोको आधुनिक तामिल विद्वानोंने, जो कि अजैन

है, प्रकाशित किया है और इनमेंसे बहुतसोंको उत्तम टीकाओं सहित प्रकाशित किया है। यह खेदका विषय है कि दक्षिणी भारतवर्षके जैनियोंने अपने सहधर्मियोंके दक्षिणी भारतके साहित्यके इन बहुमूल्य ग्रंथोंके मुद्रित करनेमें तथा उन कई अन्य अत्यन्त निर्मल, और स्वच्छ किरणोंवाले रत्नोंको, जो बहुतसे प्राचीन जैन घरों और मठोंके जीर्णशास्त्रभडारों, और अंधेरी गुफाओंमें गढे हुए पड़े हैं, प्रकाशित करनेमें अब तक बहुत कम रुचि प्रकट की है जब कि उनके उत्तरीय साथी अपनी स्वाभाविक उदारतासे जैन-गौरवको फैलानेमें, अग्रसर हुए है; क्योंकि उन्होंने ऐसे विद्यालय और छात्रालय खोले हैं जो कि विशेषकर उन्हींकी जातिके व्यक्तियोंके निमित्त हैं, जैनकर्त्ताओंके ग्रथ प्रकाशित किये हैं, सार्वजानिक पुस्तकालय जिनमें संस्कृत, बंगला, हिंदी, तामिल इत्यादिके केवल जैनग्रथ हैं स्थापित किये हैं, और ऐसे ही अन्य कार्य किये हैं जो उनको सहधर्मियोंकी, जो उत्तरीय भारतके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक फैले हुए हैं, उन्नति और वृद्धिमें सहायक है। आशा की जाती है कि दक्षिण भारतवर्षके जैनी भी अपनी जात्युन्नतिकी अनुयोग्यता ( जिम्मेवारी ) को, जो उनके ऊपर है, समझ कर जागृत हो जावेंगे और अपने उत्तरीय भाइयोंके उदाहरणका अनुकरण करेंगे।

मोतीलाल जैन,

आगरा

---

# ग्रन्थपरीक्षा।

## (१)

## उमास्वामि श्रावकाचार।

( गताङ्कसे आगे। )

( २ ) अब, उदाहरणके तौरपर, कुछ परिवर्तित पद्य, उन पद्योंके साथ जिनको परिवर्त्तन करके वे बनाये गये मालूम होते हैं, नीचे प्रगट किये जाते हैं। इन्हें देखकर परिवर्त्तनादिकका अच्छा अनुभव हो सकता है। इन पद्योंका परस्पर शब्दसौष्ठव और अर्थगौरवादि सभी विषय विद्वानोंके ध्यान देने योग्य है:—

१—स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥१३॥
( रत्नकरण्डश्रावकाचार )

स्वभावादशुचौ देहे रत्नत्रयपवित्रिते।
निर्घृणा च गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥४१॥
( उमास्वामि श्राव० )

२—ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥२५॥
( रत्नकरंड श्रा० )

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्यमानित्वं गतदर्पमिदं विदुः ॥८५॥
( उमा० श्रा० )

३—स्वयंशुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥ १५ ॥
( रत्नकरंड श्रा० )

धर्मैकर्मरतेर्दैवात्प्रासदोषस्य जन्मिनः।
वाच्यतागोपनं प्राहुरार्याः सदुपगूहनम् ॥५७॥
( उमास्वामि श्रा० )

४—दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥ १६ ॥
( रत्नकरण्ड० श्रा० )

दर्शनज्ञानचारित्रत्रयाद्भ्रष्टस्य जन्मिन ।
प्रत्यवस्थापनं तज्ज्ञा स्थितीकरणमूचिरे ॥ ५८॥
(उमा० श्रा० )

५—स्वयूथ्यान्प्रतिसद्भावसनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥ १७ ॥
( रत्नकरण्ड० श्रा० )

साधूनां साधुवृत्तीनां सागाराणां सधर्मिणाम् ।*
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं तज्ज्ञैर्वात्सल्यमुच्यते ॥ ६२ ॥
( उमा० श्रा० )

६—सम्यग्ज्ञानं कार्यं सम्यक्त्वं कारणं वदन्ति जिनाः ।
ज्ञानाराधनमिष्टं सम्यक्त्वानंतरं तस्मात् ॥ ३३ ॥
( पुरुषार्थसिद्ध्युपाय )

सम्यग्ज्ञानं मतं कार्यं सम्यक्त्वं कारणं यतः ।
ज्ञानस्याराधन प्रोक्तं सम्यक्त्वानंतर ततः ॥ २८७॥
( उमा० श्रा० )

७—हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत् ।
बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत् ॥ १०८ ॥
( पुरुषार्थसि० )

तिलनाल्यां तिला यद्वत् हिंस्यन्ते बहवस्तथा ।
जीवा योनौ च हिंस्यन्ते मैथुने निंद्यकर्मणि ॥ ३७० ॥
( उमा० श्रा० )

× × × × × ×

८—मनोमोहस्य हेतुत्वान्निदानत्वाच्चदुर्गते ।
मद्यं सद्भिः सदात्याज्यमिहामुत्र च दोषकृत् ॥
( यशस्तिलक )

---

* यह पूर्वार्ध ' स्वयूथ्यान्प्रति ' इस इतनेही पदका अर्थ मालूम होता है । शेष सद्भावसनाथा..." इत्यादि गौरवान्वित पदका इसमें भाव भी नहीं आया ।

मनोमोहस्यहेतुत्वान्निदानत्वाद्भवापदाम् ।
मद्यं सद्भिः सदा हेयमिहामुत्र च दोषकृत् ॥ २६१ ॥
( उमा० श्रा० )

९—मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट् ।
अष्टौ शंकादयश्चेतिदृग्दोषा पञ्चविंशतिः ॥
( यशस्तिलक )

मूढत्रिकं चाष्टमदास्तथानायतनानि षट् ।
शंकादयस्तथाचाष्टौ कुदोषाः पञ्चविंशतिः ॥ ८० ॥
( उमा० श्रा० )

* * * * * *

१०—साध्यसाधनभेदेन द्विधा सम्यक्त्वमिष्यते ।
कथ्यते क्षायिकं साध्य साधनं द्वितयं परं ॥ २-५८॥
( अमितगत्युपासकाचार )

साध्यसाधनभेदेन द्विधासम्यक्त्वमीरितम् ।
साधन द्वितय साध्यं क्षायिक मुक्तिदायकम् ॥२७॥
( उमा० श्रा० )

* * * * *

११–या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुतामतिः ।
धर्मे च धर्मधीः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥ २-२ ॥
देवे देवमतिर्धर्मेधर्मधीर्मलवर्जिता ।
या गुरौ गुरुताबुद्धिः सम्यक्त्वं तन्निगद्यते ॥ ५ ॥

१२–हन्ता पलस्य विक्रेता संस्कर्ता भक्षकस्तथा (उमा० श्रा०)
क्रेतानुमन्ता दाता च घातका एव यन्मनुः ॥३-२०
( योगशास्त्र )

हन्ता दाता च संस्कर्त्तानुमन्ता भक्षकस्तथा ।
क्रेतापलस्य विक्रेता यः स दुर्गतिभाजनं ॥ २६३ ॥
( उमा० २५७)

१३–स्त्रीसंभोगेन यः कामज्वरं प्रति चिकीर्षति ।
स हुताशं घृताहुत्या विध्यापयितुमिच्छति । ( योगशास्त्र )

---

१ इसके आगे 'मनुस्मृति'के प्रमाण दिये है, जिनमेंसे एक प्रमाण "नाकृत्वा प्राणिना हिंसा. ...." इत्यादि ऊपर उद्धृत किया गया है ।

मैथुनेन स्मराग्निं यो विध्यापयितुमिच्छति ।
सर्पिषा सज्वरं मूढः प्रौढं प्रति चिकीर्षति ॥ २७१ ॥
( उमा० १५ )

२४-कम्पः स्वेदः श्रमो मूर्छा भ्रमिर्ग्लानिर्बलक्षयः ।
राजयक्ष्मादिरोगाश्च भवेयुर्मैथुनोत्थिताः॥२-७२ (योगशास्त्र)
स्वेदो भ्रान्तिः श्रमो ग्लानिर्मूर्च्छा कम्पो बलक्षयः ।
मैथुनोत्था भवन्त्येते व्याधयोप्याधयस्तथा ॥ ३६५ ॥
( उमा० श्रा० )

२५-वासरे च रजन्यां च यः स्वादन्नेव तिष्ठति ।
शृंगपुच्छपरिभ्रष्टः स्पष्टं स पशुरेव हि ॥६२ (योगशास्त्र )
खादन्त्यहर्निशं येऽत्र तिष्ठंति व्यस्तचेतना : ।
शृंगपुच्छपरिभ्रष्टास्ते कथं पशवो न च॥३२३(उमा० श्रा०)
अह्नो मुखेऽवसाने च यो द्वे द्वे घटिके त्यजन् ।
निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नात्यसौ पुण्यभाजनं ॥ ३६३ ॥
वासरस्य मुखे चान्ते विमुच्य घटिकाद्वयम् ॥ ३२४ ॥
योऽशनं सम्यगाधत्ते तस्यानस्तमितव्रतम् ॥ (उमा०श्रा०)
रजनीभोजनत्यागे ये गुणा परितोपि तान् ।
न सर्वज्ञादृते कश्चिदपरो वक्तुमीश्वरः ॥ ३७० ॥ (योगशास्त्र)
रात्रिभुक्तिविमुक्तस्य ये गुणाः खलु जन्मिनः ।
सर्वज्ञमन्तरेणान्यो न सम्यग्वक्तुमीश्वरः ॥ ३२७ ॥
( उमास्वा० श्रा० )

योगशास्त्रके तीसरे प्रकाशमें, श्री हेमचन्द्राचार्यने १५ मलीन कर्मादानोंके त्यागनेका उपदेश दिया है। जिनमें पाच जीविका, पाच वाणिज्य और पाच अन्यकर्म हे । इनके नाम दो श्लोकों ( न. ९९–१०० ) में इस प्रकार दिये हैं:—

१ अंगारजीविका, २ वनजीविका, ३ शकटजीविका, ४ भाटकजीविका, ५ स्फोटकजीविका, ६ दन्तवाणिज्य, ७ लाक्षावाणिज्य,

८ रसवाणिज्य, ९ केशवाणिज्य, १० विषवाणिज्य, ११ यंत्रपीडा, १२ निर्लांछन, १३ असतीपोषण, १४ दवदान और १५ सरःशोष। इसके पश्चात् ( श्लोक नं ११३ तक ) इन १४ कर्मादानोंका पृथक् पृथक् स्वरूप वर्णन किया है। जिसका कुछ नमूना इस प्रकार है:—

" अंगारभ्राष्ट्रकरणांकुंभायःस्वर्णकारिता।
ठठारत्वेष्टकापाकावितीह्यंगारजीविका॥ १०१॥
नवनीतवसाक्षौद्रमद्यप्रभृतिविक्रयः।
द्विपाच्चतुष्पादविक्रयो वाणिज्यं रसकेशयोः॥ १०८॥
नासावेधोङ्कनमुष्कच्छेदनं पृष्ठगालनं।
कर्णकम्बलविच्छेदो निर्लांछनमुदीरितं॥ १११॥
सारिकाशुकमार्जारश्वकुर्कटकलापिनाम्।
पोषो दास्याश्च वित्तार्थमसतीपोषणं विदुः॥ ११२॥

( योगशास्त्र )

इन १५ कर्मोंका निषेध किया गया है, प्रायः इन सभी कर्मोंक निषेध उमास्वामिश्रावकाचारमें भी श्लोक नं. ४०३ से ४१२ तक पाया जाता है। परन्तु १४ कर्मादान त्याज्य हैं; वे कौन कौनसे हैं और उनका पृथक् पृथक् स्वरूप क्या है; इत्यादि वर्णन कुछ भी नहीं मिलता। योगशास्त्रके उपर्युक्त चारों श्लोकोंसे मिलते जुलते उमास्वामिश्रावकाचारमे निम्नलिखित श्लोक पाये जाते हैं; जिनसे मालूम हो सकता है कि इन पद्योंमें कितना और किस प्रकारका परिवर्त्तन किया गया है:—

"अंगारभ्राष्ट्रकरणमयःस्वर्णादिकारिता।
इष्टकापाचनं चेति त्यक्तव्यं मुक्तिकांक्षिभिः॥ ४०४॥
नवनीतवसामद्यमध्वादीनां च विक्रयः।
द्विपाच्चतुष्पाच्चविक्रेयो न हिताय मतः क्वचित्॥ ४०॥

कंटनं नासिकावेधो मुष्कच्छेदोंघ्रिभेदनम् ।
कर्णापनयनं नामनिर्लोछनमुदीरितम् ॥ ४११ ॥
केकीकुक्कटमार्जारसारिकाशुकमंडलाः ।
पोष्यं तेन कृतप्राणिघाताः पारावता अपि ॥ ४०३ ॥
( उमास्वा० श्रा० )

भगवदुमास्वामिके तत्त्वार्थसूत्रपर 'गंधहस्ति' नामका महाभाष्य रचनेवाले और रत्नकरंड श्रावकाचारादि ग्रंथोंके प्रणेता विद्वच्छिरोमणि स्वामी **समन्तभद्राचार्यका** अस्तित्व विक्रमकी दूसरी शताब्दीके लगभग माना जाता है; पुरुषार्थसिद्ध्युपायादि ग्रंथोंके रचयिता **श्रीमदमृतचंद्रसूरिने** विक्रमकी १० वीं शताब्दीमे अपने अस्तित्वसे इस पृथ्वीतलको सुशोभित किया है; यशास्तिलकके निमार्णकर्ता **श्रीसोमदेवसूरि** विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें विद्यमान् थे और उन्होंने वि. सं. १०१६ ( शक सं. ८८१ ) में यशस्तिलकको बनाकर समाप्त किया है; धर्मपरीक्षा तथा उपासकाचारादि ग्रंथोंके कर्ता **श्रीअमितगत्याचार्य** विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें हुए हैं; योगशास्त्रादि बहुतसे ग्रंथोंके सम्पादन करनेवाले श्वेताम्बराचार्य **श्रीहेमचंद्रसूरि** राजा कुमारपालके समयमें अर्थात् विक्रमकी १३ वीं शताब्दीमें (सं. १२२९ तक) मौजूद थे; और प. मेधावीका अस्तित्वसमय १६ वीं शताब्दी है। आपने धर्मसंग्रह श्रावकाचारको विक्रम संवत् १५७१ में बनाकर पूरा किया है।

अब पाठकगण स्वय समझ सकते हैं कि यह ग्रंथ ( उमास्वामिश्रावकाचार ), जिसमे बहुत पीछेसे होनेवाले इन उपर्युक्त विद्वानोके ग्रंथोंसे पद्य लेकर उन्हें ज्योंका त्यों या परिवर्तित करके रक्खा है, कैसे सूत्रकार भगवदुमास्वामिका बनाया हुआ हो सकता है? सूत्रकार भगवान्

---

१ 'निर्लोछन' का जब इससे पहले इस श्रावकाचारमें कहीं नामनिर्देश नहीं किया गया, तब फिर यह लक्षण निर्देश कैसा ?

उमास्वामिकी असाधारण योग्यता और उस समयकी परिस्थितिको, जिस समयमें कि उनका अवतरण हुआ है, सामने रखकर परिवर्तित पद्यों तथा ग्रंथके अन्य स्वतंत्र बने हुए पद्योंका सम्यगवलोकन करनेसे साफ मालूम होता है कि यह ग्रंथ उक्त सूत्रकार भगवान्‌का बनाया हुआ नहीं है। बल्कि उनसे दशोंशताब्दी पीछेका बना हुआ है।

इस ग्रंथके एक पद्यमें व्रतके, सकल और विकल ऐसे, दो भेदोंका वर्णन करते हुए लिखा है कि सकल व्रतके १३ भेद और विकल व्रतके १२ भेद हैं। वह पद्य इस प्रकार है:—

"सकलं विकलं प्रोक्तं द्विभेदं व्रतमुत्तमं।
सकलस्य त्रिदश भेदा विकलस्य च द्वादश॥ २५७॥

परन्तु सकल व्रतके वे १३ भेद कौनसे हैं? यह कहींपर इस शास्त्रमें प्रगट नहीं किया। तत्त्वार्थसूत्रमें सकलव्रत अर्थात् महाव्रतके पांच भेद वर्णन किये हैं। जैसा कि निम्नलिखित दो सूत्रोंसे प्रगट है:—

"हिंसानृतस्तेयब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्॥ ७-१॥
"देशसर्वतोऽणुमहती"॥ ७-२॥

सभव है कि पंचसमिति और तीन गुप्तिको शामिलकरके तेरह प्रकारका सकलव्रत ग्रंथकर्त्ताके ध्यानमें होवे। परन्तु तत्त्वार्थसूत्रमें, जो भगवान् उमास्वामिका सर्वमान्य ग्रंथ है, इन पंचसमिति और तीन गुप्तिओंको व्रतसंज्ञामें दाखिल नहीं किया है। विकलव्रतकी संख्या जो बारह लिखी है वह ठीक है और यही सर्वत्र प्रसिद्ध है। तत्त्वार्थसूत्रमें भी १२ व्रतोंका वर्णन है जैसा कि उपर्युक्त दोनों सूत्रोंको निम्नलिखित सूत्रोंके साथ पढ़नेसे ज्ञात होता है:—

"अणुव्रतोऽगारी"॥ ७-२०॥
"दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च"॥ ७-२१॥

इस श्रावकाचारके श्लोक नं. ३५८*में भी इन गृहस्थोचित व्रतोंके पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे, बारह भेद वर्णन किये हैं। परन्तु इसी ग्रथके दूसरे पद्यमें ऐसा लिखा है कि—

"एवं व्रतं मया प्रोक्तं त्रयोदशविधायुतम्।
निरतिचारकं पाल्यं तेऽतीचारास्तु सप्ततिः ॥ ४६१ ॥

अर्थात्—मैंने यह तेरह प्रकारका व्रतवर्णन किया है जिसको अतीचारोंसे रहित पालना चाहिये और वे ( व्रतोंके ) अतीचार संख्यामें ७० हैं।

यहांपर व्रतोंकी यह १३ संख्या ऊपर उल्लेख किये हुए श्लोक नं. २५९ और ३२८ से तथा तत्त्वार्थसूत्रके कथनसे विरुद्ध पड़ती है। तत्त्वार्थसूत्रमें 'सल्लेखना'को व्रतोंसे अलग वर्णन किया है। इस लिये सल्लेखनाको शामिल करके यह तेरहकी संख्या पूरी नहीं की जा सकती।

व्रतोंके अतीचार भी तत्त्वार्थसूत्रमें ६० ही वर्णन किये है। यदि सल्लेखनाको व्रतोंमें मानकर उसके पाच अतीचार भी शामिल कर लिये जावें तब भी ६५ ( १३×५ ) ही अतिचार होंगे। परन्तु यहांपर व्रतोंके अतीचारोंकी संख्या ७० लिखी है, यह एक आश्चर्यकी बात है। सूत्रकार भगवान् उमास्वामिके वचन इस प्रकार परस्पर या पूर्वापर विरोधको लिये हुए नहीं हो सकते। इसी प्रकारका परस्परविरुद्ध कथन और भी कई स्थानोंपर पाया जाता है। एक स्थानपर शिक्षाव्रतोंका वर्णन करते हुए लिखा है—

* "अणुव्रतानि पच स्युस्त्रिप्रकार गुणव्रतम्।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि सागाराणा जिनागमे" ॥ ३५८ ॥
( उमा० श्रा० )

"स्वशक्त्या क्रियते यत्र संख्याभोगोपभोगयोः ।
भोगोपभोगसंख्याख्यं तत्तृतीयं गुणव्रतम् ॥ ३३० ॥"
( उमा० श्रा० )

इस पद्यसे यह साफ प्रगट होता है कि ग्रंथकर्त्ताने, तत्त्वार्थसूत्रके विरुद्ध, भोगोपभोग परिमाण व्रतको, शिक्षाव्रतके स्थानमें तीसरा गुणव्रत वर्णन किया है । परन्तु इससे पहले खुद ग्रंथकर्त्ताने 'अनर्थदण्डविराति' को ही तीसरा गुणव्रत वर्णन किया है । और वहां दिग्विरति देशविरति तथा अनर्थदंडविरति, ऐसे तीनों गुणव्रतोका कथन किया है । गुणव्रतोंका कथन समाप्त करनेके बाद ग्रंथकार इससे पहले आद्यके दो शिक्षाव्रतों ( सामायिक—पोषधोपवास ) का स्वरूप भी दे चुके है। अब यह तीसरे शिक्षाव्रतके स्वरूपकथनका नम्बर था जिसको आप 'गुणव्रत' लिख गये । कई आचार्योंने भोगोपभोगपरिमाण व्रतको गुणव्रतोंमें माना है । माल्रुम होता है कि यह पद्य किसी ऐसे ही ग्रथसे लिया गया है जिसमें भोगोपभोगपरिमाण व्रतको तीसरा गुणव्रत वर्णन किया है और ग्रन्थकार इसमें शिक्षाव्रतका परिवर्तन करना भूल गये अथवा उन्हें इस बातका स्मरण नहीं रहा कि हम शिक्षाव्रतका वर्णन कर रहे है । योगशास्त्रमें भोगोपभोगपरिमाणव्रतको दूसरा गुणव्रत वर्णन किया है और उसका स्वरूप इस प्रकार लिखा है—

भोगोपभोगयोः संख्या शक्त्या यत्र विधीयते ।
भोगोपभोगमानं तद्द्वितीयीकं गुणव्रतम् ॥ ३-४ ॥

यह पद्य ऊपरके पद्यसे बहुत कुछ मिलता जुलता है । संभव है कि इसीपरसे ऊपरका पद्य बनाया गया हो और 'गुणव्रतम्' इस पदका परिवर्त्तन रह गया हो । इस ग्रथके एक पद्यमें 'लोंच'का कारण भी वर्णन किया गया है। वह पद्य इस प्रकार है:—

" अदैन्यं वैराग्यकृते कृतोऽयं केशलोचकः ।
यतीश्वराणां वीरत्वं व्रतनैर्मल्यदीपकः ॥ ५० ॥
( उमा० श्रा० )

इस पद्यका ग्रंथमें पूर्वोत्तरके किसी भी पद्यसे कुछ सम्बध नहीं है। न कहीं इससे पहले लोंचका कोई जिकर आया और न ग्रथमें इसका कोई प्रसग है। ऐसा असम्बद्ध और अप्रासगिक कथन उमास्वामि महाराजका नहीं हो सकता। ग्रंथकर्त्ताने कहाँपरसे यह मजमून लिया है और किस प्रकारसे इस पद्यको यहाँ देनेमें गल्ती खाई है, ये सब बातें, जरूरत होनेपर, फिर कभी प्रगट की जायंगी।

इन सब बातोंके सिवा इस ग्रथमें, अनेक स्थानोंपर, ऐसा कथन भी पाया जाता है जो युक्ति और आगमसे बिलकुल विरुद्ध जान पड़ता है और इस लिये उससे और भी ज्यादह इस बातका समर्थन होता है कि यह ग्रंथ भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ नहीं है। ऐसे कथनके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं:—

( १ ) ग्रथकार महाशय एक स्थानपर लिखते है कि जिस मंदिर पर ध्वजा नहीं है उस मदिरमे किये हुए पूजन, होम और जपादिक सब ही विलुप्त हो जाते है अर्थात् उनका कुछ भी फल नहीं होता। यथा:—

प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकम्।
सर्वं विलुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः ॥१०७॥ (उमा०श्रा)

इसी प्रकार दूसरे स्थानपर लिखते हैं कि जो मनुष्य फटे पुराने, खंडित या मैले वस्त्रोको पहिनकर दान, पूजन, तप, होम या स्वाध्याय करता है तो उसका ऐसा करना निष्फल होता है। यथा:—

" खंडिते गलिते छिन्ने मलिने चैव वाससि।
दानं पूजा तपो होमःस्वाध्यायो विफलं भवेत् ॥ १३६ ॥
( उमा० श्रा० )

मालूम नहीं होता कि मंदिरके ऊपरकी ध्वजाका इस पूजनादिकके फलके साथ कौनसा सम्बंध है और जैनमतके किस गूढ़ सिद्धान्तपर ग्रंथकारका यह कथन अवलम्बित है। इसी प्रकार यह भी मालूम नहीं होता कि फटे पुराने तथा खंडित वस्त्रोंका दान, पूजन, तप और स्वाध्यायादिके फलसे कौनसा विरोध है जिसके कारण इन कार्योंका करना ही निरर्थक हो जाता है। भगवदुमास्वामिने तत्त्वार्थसूत्रमें और श्रीअकलंकदेवादिक टीकाकारोंने 'राजवार्तिकादि' ग्रंथोंमें शुभाशुभ कर्मोंके आस्रव और बन्धके कारणोका विस्तारके साथ वर्णन किया है। परन्तु ऐसा कथन कहीं नहीं पाया जाता जिससे यह मालूम होता हो कि मंदिरकी एक ध्वजा भी भावपूर्वक किये हुए पूजनादिकके फलको उलटपुलट कर देनेमें समर्थ है। सच पूछिये तो मनुष्यके कर्मोंका फल उसके भावोंकी जाति और उनकी तरतमतापर निर्भर है। एक गरीब आदमी अपने फटे पुराने कपड़ोंको पहिने हुए ऐसे मंदिरमें जिसके शिखरपर ध्वजा भी नहीं है बड़े प्रेमके साथ परमात्माका पूजन और भजन कर रहा है और सिरसे पैर तक भक्ति रसमें डूब रहा है, वह उस मनुष्यसे अधिक पुण्य उपार्जन करता है जो अच्छे सुन्दर नवीन वस्त्रोंको पहिने हुए ध्वजावाले मन्दिरमें विना भक्ति भावके सिर्फ अपने कुलकी रीति समझता हुआ पूजनादिक करता हो। यदि ऐसा नहीं माना जाय अर्थात् यह कहा जाय कि फटे पुराने वस्त्रोंके पहिनने या मन्दिरपर ध्वजा न होनेके कारण उस गरीब आदमीके उन भक्ति भावोंका कुछ भी फल नहीं है तो जैनियोंको अपनी कर्म फिलासोफीको उठाकर रख देना होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। इसलिये इन दोनों पद्योंका कथन युक्ति और आगमसे विरुद्ध है।

(२) इस ग्रंथके पूजनाध्यायमें, पुष्पमालाओंसे पूजनका विधान करते हुए, एक स्थानपर लिखा है कि चम्पक और कमलके फूलका, उसकी कली आदिको तोड़नेके द्वारा, भेद करनेसे मुनिहत्याके समान पाप लगता है। यथाः—

"नैव पुष्पं द्विधाकुर्यान्न छिंद्यात्कलिकामपि।
चम्पकोत्पलभेदेन यतिहत्यासमं फलम्॥ १२७॥
(उमा० श्रा०)

यह कथन बिलकुल जैनसिद्धान्त और जैनागमके विरुद्ध है। कहाँ तो एकेंद्रियफूलकी पखंड़ी आदिका तोड़ना और कहाँ मुनिकी हत्या! दोनोंका पाप कदापि समान नहीं हो सकता। जैनशास्त्रोंमें एकेंद्रिय जीवोंके घातसे पचेंद्रिय जीवोंके घात पर्यंत और फिर पचेंद्रियजीवोंमें भी क्रमशः गौ, स्त्री, बालक, सामान्यमनुष्य, अविरतसम्यग्दृष्टि, व्रती श्रावक और मुनिके घातसे उत्पन्न हुई पापकी मात्रा उत्तरोत्तर अधिक वर्णन की है। और इसीलिये प्रायश्चित्तसमुच्चयादि प्रायश्चित्तग्रंथोंमें भी इसी क्रमसे हिंसाका उत्तरोत्तर अधिक दड विधान कहा गया है। कर्मप्रकृतियोंके बन्धादिकका प्ररूपण करनेवाले और 'तीव्रमंदज्ञाताज्ञातभावाधिकारणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः' इत्यादि सूत्रोंके द्वारा कर्मास्रवोंकी न्यूनाधिकता दर्शानेवाले सूत्रकार महोदयका ऐसा असमंजस वचन, कि एक फूलकी पंखडी तोड़नेका पाप मुनिहत्याके समान है, कदापि नहीं हो सकता। इसी प्रकारके और भी बहुतसे असमंजस और आगमविरुद्ध कथन इस ग्रंथमें पाए जाते हैं जिन्हें इस समय छोड़ा जाता है। जरूरत होनेपर फिर कभी प्रगट किये जाएँगे।

जहांतक मैंने इस ग्रंथकी परीक्षा की है, मुझे ऐसा निश्चय होता है और इसमें कोई सदेह वाकी नहीं रहता कि यह ग्रंथ सूत्रकार भगवान् उमास्वामि महाराजका वनाया हुआ है। और न किसी

दूसरे आचार्यने ही इसका सम्पादन किया है। ग्रंथके शब्दों और अर्थोपरसे, इस ग्रंथका बनानेवाला कोई मामूली, अदूरदर्शी और क्षुद्र हृदय व्यक्ति माल्म होता है। और यह ग्रंथ १६ वीं शताब्दीके बाद १७ वीं शताब्दीके अन्तमे या उससे भी कुछ कालबाद, उस वक्त बनाया जाकर भगवान् उमास्वामीके नामसे प्रगट किया गया है जब कि तेरहपंथकी स्थापना हो चुकी थी और उसका प्राबल्य बढ़ रहा था। यह ग्रथ क्यों बनाया गया है? इसका सूक्ष्मविवेचन फिर किसी लेख द्वारा जरूरत होनेपर, प्रगट किया जायगा। परन्तु यहाँपर इतना वतला देना जरूरी है कि इस ग्रंथमें पूजनका एक खास अध्याय है और प्रायः उसी अध्यायकी इस ग्रंथमें प्रधानता माल्म होती है। शायद इसीलिये हलायुधजीने, अपनी भाषाटीकाके अन्तमें, इस श्रावकाचारको "पूजाप्रकरण नाम श्रावकाचार" लिखा है।

अन्तमें विद्वज्जनोंसे मेरा सविनय निवेदन है कि वे इस ग्रंथकी अच्छी तरहसे परीक्षा करके मेरे इस उपर्युक्त कथनकी जाँच करें और इस विषयमें उनकी जो सम्मति स्थिर होवे उससे, कृपाकर मुझे सूचित करनेकी उदारता दिखलाएँ। यदि परीक्षासे उन्हें भी यह ग्रंथ सूत्रकार भगवान् उमास्वामिका बनाया हुआ साबित न होवे तब उन्हे अपने उस परीक्षाफलको सर्वसाधारणपर प्रगट करनेका यत्न करना चाहिये। और इस तरहपर अपने साधारण भाइयोंका भ्रम निवारण करते हुए प्राचीन आचार्योंकी उस कीर्तिको संरक्षित रखनेमें सहायक होना चाहिये, जिसको कषायवश किसी समय कलंकित करनेका प्रयत्न किया गया है।

आशा है कि विद्वज्जन मेरे इस निवेदनपर अवश्य ध्यान देंगे और अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे। इत्यलंविज्ञेषु।

जातिसेवक—

जुगलकिशोर मुख्तार, देवबन्द।

# शिक्षासमस्या।

## (२)

जिस समय मन बढता रहता है उस समय उसके चारों ओर एक बडा भारी अवकाश रहना चाहिए। यह अवकाश विश्वप्रकृतिके बीच विशाल भावसे विचित्र भावसे और सुन्दर भावसे विराजमान है। किसी तरह साढ़े नव और दश बजेके भीतर अन्न निगलकर शिक्षा देनेकी मृगशालामें पहुँचकर हाजिरी देनेसे बच्चोंकी प्रकृति किसी भी तरह सुस्थभावसे विकसित नहीं हो सकती। शिक्षा दिवालोंसे घेरकर, दरवाजोंसे रुद्धकर, दरवान बिठाकर, दण्ड या सजासे कण्टकितकर, और घण्टाद्वारा सचेत करके कैसी विलक्षण बना दी गई है! हाय! मानवजीवनके आरम्भमें यह क्या निरानन्दकी सृष्टिकी जाती है! बच्चे बीजगणित न सीखकर और इतिहासकी तारीखें कण्ठ न करके माताके गर्भसे जन्म लेते हैं, इसके लिए क्या ये बेचारे अपराधी है? माळूम होता है इसी अपराधके कारण इन हतभागियोंसे उनका आकाश वायु और उनका सारा आनन्द अवकाश छीनकर शिक्षा उनके लिए सब प्रकारसे शास्ति या दण्डरूप बना दी जाती है। परन्तु जरा सोचो तो सही कि बच्चे अशिक्षित अवस्थामें क्यों जन्म लेते हैं? हमारी समझमें तो वे न-जाननेसें धीरे धीरे जाननेका आनन्द पावेंगे, इसीलिए अशिक्षित होते है। हम अपनी असमर्थता और वर्बरताके वश यदि ज्ञानशिक्षाको आनन्दजनक न बना सके, तो न सही, पर चेष्टा करके, जान बूझकर अतिशय निष्ठुरतापूर्वक निरपराधी बच्चोंके विद्यालयोंको कारागार (जेलखाने) तो न बना डालें! बच्चोंकी शिक्षाको विश्वप्रकृतिके उदार रमणीय अवकाशमेंसे होकर उन्मेषित करना ही विधाताका अभिप्राय था—इस अभि-

प्रायको हम जितना ही व्यर्थ करते है उतना ही अधिक वह व्यर्थ होता है। मृगशालाकी दीवालें तोड़ डालो,—मातृगर्भके दश महीनोंमे बच्चे पण्डित नहीं हुए, इस अपराधपर उन बेचारोंको सपरिश्रम कारागारका दण्ड मत दो, उनपर दया करो।

इसीसे हम कहते है कि शिक्षाके लिए इस समय भी हमे वनोंका प्रयोजन है और गुरुगृह भी हमें चाहिए। वन हमारे सजीव निवासस्थान हैं और गुरु हमारे सहृदय शिक्षक हैं। आज भी हमें उन वनोमें और गुरुगृहोंमें अपने बालकोको ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक रखकर उनकी शिक्षा पूर्ण करनी होगी। कालसे हमारी अवस्थाओंमें चाहें जितने ही परिवर्तन क्यो न हुआ करें परन्तु इस शिक्षानियमकी उपयोगितामें कुछ भी कमी नहीं आ सकती, कारण यह नियम मानवचरित्रके चिरस्थायी सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित है।

अतएव, यदि हम आदर्शविद्यालय स्थापित करना चाहें तो हमें मनुष्योंकी वस्तीसे दूर, निर्जन स्थानमें, खुले हुए आकाश और विस्तृत भूमिपर झाड़ पेड़ोंके बीच उनकी व्यवस्था करनी चाहिए। वहाँ अध्यापकगण एकान्तमें पठनपाठनमें नियुक्त रहेंगे और छात्रगण उस ज्ञानचर्चाके यज्ञक्षेत्रमें ही बढ़ा करेंगे।

यदि बन सके तो इस विद्यालयके साथ थोड़ीसी फसलकी जमीन भी रहनी चाहिए;—इस जमीनसे विद्यालयके लिए प्रयोजनीय खाद्यसामग्री संग्रह की जायगी और छात्र खेतीके काममें सहायता करेंगे। दूध घी आदि चीजोंके लिये गाय भैंसें रहेंगी और छात्रोंको गोपालन करना होगा। जिस समय बालक पढ़ने लिखनेसे छुट्टी पावेंगे, उस विश्रामकालमें वे अपने हाथसे बाग लगावेंगे, झाड़ोंके चारों ओर खड्डे खोदेंगे, उनमे जल सींचेंगे और बागकी रक्षाके लिए बाढ़ लगावेंगे।

इस तरह वे प्रकृतिके साथ केवल भावका ही नहीं, कामका सम्बन्ध भी जारी रक्खेंगे।

अनुकूल ऋतुओंमें बड़े बड़े छायादार वृक्षोंके नीचे छात्रोंकी क्लासें बैठेंगी। उनकी शिक्षाका कुछ अश अध्यापकोंके साथ वृक्षोंके नीचे घूमते घूमते समाप्त होगा और सन्ध्याका अवकाशकाल वे नक्षत्रोंकी पहचान करनेमें, सङ्गीतचर्चामें, पुराणकथाओंमें और इतिहासकी कहानिया सुननेमें व्यतीत करेंगे।

कोई अपराध बन जानेपर छात्र हमारी प्राचीन पद्धतिके अनुसार प्रायश्चित्त करेंगे। शास्ति अर्थात् दण्ड और प्रायश्चित्तमें बहुत बड़ा अन्तर है। दूसरेके द्वारा अपराधका प्रतिफल पाना शास्ति है और अपने ही द्वारा अपराधका संशोधन करना—उससे मुक्त होना प्रायश्चित है। छात्रोंको इस प्रकारकी शिक्षा शुरूसे ही मिलना चाहिए कि दण्डस्वीकार करना खुदका ही कर्तव्य है—उसके स्वीकार किये विना हृदयकी ग्लानि दूर नहीं होती। दूसरेके द्वारा आपको दण्डित करना मनुष्योचित कार्य नहीं हो सकता।

यदि आप लोग क्षमा करें तो इस मौकेपर साहस करके मैं एक बात और कह दूँ। इस आदर्शविद्यालयमें बेंच टेबिल कुर्सी और चौकियोंकी जरूरत नहीं। मैं यह बात अँगरेजी चीजोंके विरुद्ध आन्दोलन करनेके लिए नहीं कहता हूँ। नहीं, मेरा वक्तव्य यह है कि हमें अपने विद्यालयमें अनावश्यकताकी आवश्यकता न बढ़ने देनेका एक आदर्श सब तरह स्पष्ट कर रखना होगा। टेबिल, कुर्सी, बेंच आदि चीजें मनुष्यको हर वक्त नहीं मिल सकतीं; किन्तु भूमितल एक ऐसी चीज है कि उसे कोई कभी छीन नहीं ले सकता। इसके विरुद्ध कुर्सी टेबिलें अवश्य ऐसी हैं कि वे हमारे भूमितलको छीन लेती हैं। क्योंकि

अभ्यास पड़ जानेपर हमारी ऐसी दशा हो जाती है कि यदि कभी भूमितलपर बैठनेके लिए हमें लाचार होना पड़ता है तो न तो हमें आराम मिलता है और न सुबिधा ही मालूम पड़ती है। विचार करके देखा जाय तो यह एक बड़ी भारी हानि है। हमारा देश शीतप्रधान देश नहीं है, हमारा पहनाव ओढाव ऐसा नहीं है कि हम नीचे न बैठ सकें, तब परदेशोंके समान अभ्यास डालके हम असबाबकी बहुलतासे अपना कष्ट क्यों बढावें? हम जितना ही अनावश्यकको अत्यावश्यक बनावेंगे उतना ही हमारी शक्तिका अपव्यय होगा। इसके सिवा धनी यूरोपके समान हमारी पूँजी नहीं है; उसके लिए जो बिलकुल सहज है हमारे लिए वहीं भार रूप है। हम ज्यों ही किसी अच्छे कार्यका प्रारंभ करते है और उसके लिए आवश्यक इमारत, असबाब, फरनीचर आदिका हिसाब लगाते है त्यों ही हमारी आँखोंके आगे अँधेरा छा जाता है। क्योंकि इस हिसाबमें अनावश्यकताका उपद्रव रुपयेमें बारह आने होता है। हममेंसे कोई साहस करके नहीं कह सकता कि हम मिट्टीके साधे घरमें काम आरंभ करेंगे और धरतीमें आसन बिछाकर सभा करेंगे। यदि हम यह बात जोरसे कह सकें और कर सकें तो हमारा आधेसे अधिक वजन उतर जाय और काममें कुछ अधिक तारतम्य भी न हो। परन्तु जिस देशमें शक्तिकी सीमा नहीं है, जिस देशमें धन कौने कौनेमें भरकर उछला पड़ता है, उस धनी यूरोपका आदर्श अपने सब कामोंमे बनाये विना हमारी लज्जा दूर नहीं होती —हमारी कल्पना तृप्त नहीं होती। इससे हमारी क्षुद्र शक्तिका बहुत बड़ा भाग आयोजनोंमें—तैयारियोंमें ही निःशेष हो जाता है, असली चीजको हम खुराक ही नहीं जुटा पाते। हम जितने दिन पट्टियोंपर खड़िया पोतकर हाथ घसीटते रहे, तब तक तो पाठशालायें स्थापन

करनेका हमारा विचार ही नहीं था, अब बाजारोंमें स्लेट पेंसिलोंका प्रादुर्भाव हो गया है परन्तु पाठशाला स्थापित करना मुश्किल हो गया है। सब ही विषयोंमें यह बात देखी जाती है। पहले आयोजन कम थे, सामाजिकता अधिक थी; अब आयोजन बढ़ चले है, और सामाजिकतामें घाटा आ रहा है। हमारे देशमें एक दिन था, जब हम असबाब आडम्बरको ऐश्वर्य कहते थे किन्तु सभ्यता नहीं कहते थे; कारण उस समय देशमें जो सभ्यताके भाण्डारी थे उनके भाण्डारमें असबाबकी अधिकता नहीं थी। वे दारिद्र्यको कल्याणमय बना करके सारे देशको सुस्थ स्निग्ध रखते थे। कमसे कम शिक्षाके दिनोंमें यदि हम इस आदर्शसे मनुष्य हो सकें–तो और चाहे कुछ न हो हम अपने हाथमें कितनी ही क्षमता या सामर्थ्य पा सकेंगे–मिट्टीमें बैठ सकनेकी क्षमता, मोटा पहननेकी मोटा खानेकी क्षमता, यथासभव थोड़े आयोजनमें यथासंभव अधिक काम चलानेकी क्षमता—ये सब मामूली क्षमता नहीं हैं और ये साधनाकी–अभ्यासकी अपेक्षा रखती हैं। सुगमता, सरलता, सहजता ही यथार्थ सभ्यता है—इसके विरुद्ध आयोजनोंकी जटिलता एक प्रकारकी बर्बरता है। वास्तवमें वह पसीनेसे तरबतर अक्षमताका स्तूपाकार जंजाल है। इस प्रकारकी शिक्षा विद्यालयोंमें शिशुकालसे ही मिलना चाहिए और सो भी निष्फल उपदेशोंद्वारा नहीं, प्रत्यक्ष दृष्टान्तोंद्वारा कि—थोडी बहुत जड वस्तुओंके अभावसे मनुष्यत्वका सन्मान नष्ट नहीं होता वरन् बहुधा स्थलोंमें स्वाभाविक दीप्तिसे उज्ज्वल हो उठता है। हमें इस बिलकुल सीधीसादी बातको सब तरह साक्षात् भावसे बालकोंके सामने स्वाभाविक कर देना होगा। यदि यह शिक्षा न मिलेगी तो हमारे बालक केवल अपने हाथोपावोंका, और घरकी मिट्टीका ही अनादर न करेंगे किन्तु अपने पिता पितामहोंको

घृणाकी दृष्टिसे देखेंगे और प्राचीन भारतवर्षकी साधनाका माहात्म्य यथार्थरूपसे अनुभव न कर सकेंगे।

यहाँ शंका उपस्थित होगी कि यदि तुम बाहरी तड़कभड़क चाकचिक्यका आदर नहीं करना चाहते तो फिर तुम्हें भीतरी वस्तुको विशेष भावसे मूल्यवान् बनाना होगा—सो क्या उस मूल्यके देनेकी शक्ति तुममे है? अर्थात् क्या तुम उस बहुमूल्य आदर्श शिक्षाकी व्यवस्था कर सकते हो? गुरुगृह स्थापित करते ही पहले गुरुओंकी आवश्यकता होगी। परन्तु इसमें यह बड़ी भारी कठिनाई है कि शिक्षक या मास्टर तो अखबारोंमें नोटिस दे देनेसे ही मिल जाते हैं पर गुरु तो फरमायश देनेसे भी नहीं पाये जा सकते।

इसका समाधान यह है—यह सच है कि हमारी जो कुछ सङ्गति है—पूंजी है उसकी अपेक्षा अधिकका दावा हम नहीं कर सकते। अत्यन्त आवश्यकता होनेपर भी सहसा अपनी पाठशालाओंमें गुरु महाशयोंके आसनपर याज्ञवल्क्य ऋषिको ला बिठाना हमारे हाथकी बात नहीं है। किन्तु यह बात भी विवेचना करके देखनी होगी कि हमारी जो सङ्गति या पूँजी है अवस्थादोषसे यदि हम उसका पूरा दावा न करेंगे तो अपना सारा मूलधन भी न बचा सकेंगे। इस तरहकी घटनायें अकसर घटा करती हैं। डांकके टिकिट लिफाफेपर चिपकानेके लिए ही यदि हम पानीके घड़ेका व्यवहार करें तो उस घड़ेका अधिकांश पानी अनावश्यक होगा; पर यदि हम स्नान करें तो उस घड़ेका जल सबका सब खाली किया जा सकता है;—अर्थात् एक ही घडेकी उपयोगिता व्यवहार करनेके ढँगोंसे कम बढ़ हो जाती है। ठीक इसी तरह हम जिन्हें स्कूलके शिक्षक बनाते हैं उनका हम इस ढँगसे व्यवहार करते है कि उनके हृदय मनोंका

बहुत ही कम अंश काममें लगाता है—वे कलके समान काम किया करते हैं। फोनोग्राफ यन्त्रके साथ यदि हम एक बेंत और थोड़ासा मस्तक जोड़ दें तो बस वह स्कूलका शिक्षक बन सकता है। किन्तु यदि इसी शिक्षकको हम गुरुके आसनपर बिठा दें तो स्वभावसे ही उसके हृदय मनकी शक्ति समग्र भावसे शिष्योंकी ओर दौड़ेगी। यह सच है कि उसकी जितनी शक्ति है उससे अधिक वह शिष्योंको न दे सकेगा किन्तु उसकी अपेक्षा कम देना भी उसके लिए लज्जाकर होगा। जबतक एक पक्ष यथार्थ भावसे दावा न करेगा तबतक दूसरे पक्षमें सम्पूर्ण शक्तिका उद्बोधन न होगा। आज स्कूलके शिक्षकोंके रूपमें देशकी जो शक्ति काम कर रही है, देश यदि सच्चे हृदयसे प्रार्थना करे तो गुरुरूपमें उसकी अपेक्षा बहुत अधिक शक्ति काम करेगी।

आजकल प्रयोजनके नियमसे शिक्षक छात्रोंके पास आते हैं—शिक्षक गरजी बन गये हैं; परन्तु स्वाभाविक नियमसे शिष्योंको गुरुके पास जाना चाहिए—छात्रोंकी गरज होनी चाहिए। अब शिक्षक एक तरहके दूकानदार हैं और विद्या पढ़ाना उनका व्यवसाय है। वे ग्राहकों या खरीददारोंकी खोजमें फिरा करते हैं। दूकानदारके यहाँसे लोग चीज खरीद सकते हैं, परन्तु उसकी विक्रेय चीजोंमें स्नेह, श्रद्धा, निष्ठा आदि हृदयकी चीजें भी होंगी, इस प्रकारकी आशा नहीं की जा सकती। इसी कारण शिक्षक वेतन (तनख्वाह) लेते हैं और विद्याको बेच देते हैं—और यहीं दूकानदार और ग्राहकके समान शिक्षक और छात्रोंका सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। इस प्रकारकी प्रतिकूल अवस्थामें भी बहुतसे शिक्षक लेन देनका सम्बन्ध छोड़ देते हैं। हमारे शिक्षक जब यह समझने लगेंगे कि हम गुरुके

आसनपर बैठे हैं; और हमें अपने जीवनके द्वारा छात्रोंमें जीवनसञ्चार करना है, अपने ज्ञानके द्वारा छात्रोंमे ज्ञानकी बत्ती जलानी है, अपने स्नेहके द्वारा बालकोंका कल्याणसाधन करना है, तब ही वे गौरवान्वित हो सकेंगे—तब वे ऐसी चीज़का दान करनेको तैयार होंगे जो पण्यद्रव्य नहीं है, जो मूल्य देकर नहीं पाई जा सकती और तब ही वे छात्रोंके निकट शासनके द्वारा नहीं किन्तु धर्मके विधान तथा स्वभावके नियमसे भक्ति करने योग्य—पूज्य बन सकेंगे। वे जीविकाके अनुरोधसे वेतन लेनेपर भी बदलेमें उसकी अपेक्षा बहुत अधिक देकर अपने कर्तव्यको महिमान्वित कर सकेंगे। यह बात किसीसे छुपी नहीं है कि अभी थोडे दिन पहले जब देशके विद्यालयोंमें राजचक्रकी शनिदृष्टि पड़ी थी, तब बीसों प्रवीन और नवीन शिक्षकोंने जीविका लुब्ध शिक्षकवृत्तिकी कलङ्ककालिमा कितने निर्लज्ज भावसे समस्त देशके सामने प्रकाशित की थी। यदि वे भारतके प्राचीन गुरुओंके आसनपर बैठे होते तो पदवृद्धिके मोहसे और हृदयके अभ्यासके वशसे छोटे २ बच्चोंपर निगरानी रखनेके लिए कनस्टेबल बिठाकर अपने व्यवसायको इस तरह घृणित नहीं कर सकते। अब प्रश्न यह है कि शिक्षारूपी दूकानदारीकी नीचतासे क्या हम देशके शिक्षकोंको और छात्रोंको नहीं बचा सकते?

किन्तु हमारा इन सब विस्तृत आलोचनाओंमें प्रवृत्त होना जान पड़ता है कि व्यर्थ जा रहा है—मालूम होता है बहुतोंको हमारी इस शिक्षाप्रणालीकी मूल बातमे ही आपत्ति है। अर्थात् वे लिखना पढ़ना सिखलानेके लिए अपने बालकोंको दूर भेजना हितकारी नहीं समझते।

इस विषयमें हमारा प्रथम वक्तव्य यह है कि हम आजकल जिसको लिखना पढ़ना समझते हैं उसके लिए तो केवल इतना ही काफी है कि अपने मुहल्लेकी किसी गलीमें कोई एक सुभीतेका स्कूल देख लिया

और उसके साथ बहुत हुआ तो एक प्राइवेट ट्यूटर भी रख लिया। जो शिक्षा इस उद्देश्यको सामने रखकर दी जाती है कि—"लिखना पढ़ना सीखे जोई, गाड़ी घोड़ा पावे सोई।" वह शिक्षा ही नहीं। इस प्रकारकी शिक्षा मानवसन्तानको अतिशय दीन और कृपण बनानेवाली अतएव सर्वथा अयोग्य है।

दूसरा वक्तव्य यह है कि, 'शिक्षाके लिए बालकोंको घरसे दूर भेजना उचित नहीं है' इस बातको हम तब मान सकते थे जब हमारे घर वैसे होते जैसे कि होने चाहिए थे। कुम्हार, लुहार, बढई, जुलाहे आदि शिल्पकार अपने बच्चोंको अपने पास रखकर ही मनुष्य बना लेते हैं और वे उन्हीं जैसा काम करने लगते है। इसका कारण यह है कि वे जितनी शिक्षा देना चाहते हैं वह घर रखके ही अच्छी तरहसे दी जा सकती है—उनका घर उसके योग्य होता है। पर शिक्षाका आदर्श यदि इससे कुछ और उन्नत हो तो बालकोंको स्कूल भेजना होगा। तब यह कोई न कहेगा कि मा बापके पास शिखाना ही सर्वापेक्षा अच्छा है; क्योंकि अनेक कारणोंसे ऐसा होना संभव नहीं। शिक्षाके आदर्शको यदि और भी ऊचा उठाना चाहें, यदि परीक्षा फल-लोलुप पुस्तक शिक्षाकी ओर ही हम न देखें, यदि सर्वाङ्गीण मनुष्यत्वकी दीवाल खडी करनेको ही हम शिक्षाका लक्ष्य निश्चय करें, तो उसकी व्यवस्था न तो घर हीमें हो सकेगी—और न स्कूलोंमें ही हो सकेगी।

ससारमें कोई वणिक है, कोई वकील है, कोई धनी जमींदार है और कोई कुछ और है। इन सवहीके घरकी आव हवा स्वतन्त्र या जुदा जुदा तरहकी है और इसलिए इनके घरकी बच्चोपर छुटपन हीसे जुदा जुदा तरहकी छाप लग जाती है।

जीवनयात्राकी विचित्रताके कारण मनुष्यमें अपने आप जो एक विशेषत्व घटित होता है वह अनिवार्य है और इस प्रकार एक एक

व्यवसायका विशेष आकार प्रकार लेकर मनुष्य जुदा जुदा कोठोंमें विभक्त हो जाता है; किन्तु जब बालक संसारक्षेत्रमें पैर रखते है तब उसके पहले उनका उनके पालनपोषण कर्त्ताओंके या अभिभावकोंके सांचेमें ढलना उनके लिए कल्याणकारी नहीं है।

उदाहरणके लिये एक धनीके लड़कोंको देखिए। यह ठीक है कि धनीके घरमें लड़के जन्म लेते हैं किन्तु वे कोई ऐसी विशेषता लेकर जन्म नहीं लेते कि जिससे मालूम हो कि वे धनीके लड़के है। धनीके लड़के और गरीबके लड़केमें उस समय कोई विशेष प्रभेद नहीं होता। जन्म होनेके दूसरे दिनसे मनुष्य उस प्रभेदको अपने हाथों गढ़ता है।

ऐसी अवस्थामें मावापके लिए उचित था कि वे पहले लड़कोंके साधारण मनुष्यत्वको पक्का करके उसके वाद उन्हें आवश्यकतानुसार धनीकी सन्तान वनाते। किन्तु ऐसा नहीं होता, वे सब प्रकारसे मानव सन्तान बननेके पहले ही धनीकी सन्तान बन जाते हैं—इससे दुर्लभ मानव जन्मकी वहुतसी वातें उनके भाग्यमें वाद पड़ जाती है—जीवन-धारणके अनेक रसास्वादोकी क्षमता ही उनकी नष्ट हो जाती है। पहले तो पिंजरेके वद्धपक्ष पक्षीके समान धनिक पुत्रको उसके मावाप हाथ पैरोंके रहते हुए भी पंगु वना डालते है। वह चल नहीं सकता, उसके लिए गाडी चाहिए; बिलकुल मामूली बोझा उठानेकी शक्ति नहीं रहती, कुली चाहिए; अपने काम कर सकनेकी सामर्थ्य नहीं रहती, चाकर चाहिए। केवल शारीरिक शक्तिके अभावसे ही ऐसा होता हो, सो नहीं है,—लोकलज्जाके मारे उस हतभागेको सुस्थ तथा सुदृढ अङ्ग प्रत्यङ्ग होने पर भी पक्षाघात-( लकवा ) ग्रस्त होना पड़ता है। जो सहज है वह उसके लिए कष्टकर है, और जो स्वाभाविक हैं वह उसके लिए लज्जाकर हो जाता है। समाजके लोगोंके मुँहकी ओर

देखकर—वे हमारे कामको अनुचित न कहने लगें इस खयालसे उसे जिन अनावश्यक शासनोंमें कैद होना पड़ता है उनसे वह सहज मनुष्यके बहुतसे अधिकारोंसे वञ्चित हो जाता है। पीछे कहीं उसे कोई धनी न समझे, इतनी सी भी लज्जा वह नहीं सह सकता, इसके लिये उसे पर्वततुल्य भार वहन करना पड़ता है और इसी भारके कारण वह पृथिवीमें पैर पैर पर दबा जाता है। उसको कर्तव्य करना हो तो भी इस सारे बोझेको उठा करके करना होगा, आराम करना हो तो भी इस भारको लादकर करना होगा—भ्रमण करना हो तो भी इस सब भारको साथ २ खींचते हुए करना होगा। यह एक बिलकुल सीधी और सत्य बात है कि सुख मनसे सम्बध रखता है—आयोजनों या आडम्बरोंसे नहीं। परन्तु यह सरल सत्य भी वह जानने नहीं पाता—इसे हर तरहसे भुलाकर वह हजारों जड़ पदार्थोंका दासानुदास बना दिया जाता है। अपनी मामूली जरूरतोंको वह इतना बढा डालता है कि फिर उसके लिए त्याग स्वीकार करना असाध्य हो जाता है और कष्ट स्वीकार करना असभव हो जाता है। जगतमें इतना बडा कैदी और इतना बड़ा लँगड़ा शायद ही और कोई हो। इतनेपर भी क्या हमें यह कहना होगा कि—ये सब पालन पोषण कर्ता मा-बाप जो कृत्रिम असमर्थताको गर्वकी सामग्री बनाकर खड़ी कर देते हैं और पृथिवीके सुन्दर शस्यक्षेत्रोंको कॉंटेदार झाडोंसे छा डालते हैं—अपनी सन्तानके सच्चे हितैषी हैं? जो जवान होकर अपनी इच्छासे विलासितामें मग्न हो जाते हैं उन्हें तो कोई नहीं रोक सकता किन्तु बच्चे, जो धूल मिट्टीसे घृणा नहीं करते, जो धूप, वर्षा और वायुको चाहते हैं, जो सजधज करानेमें कष्ट मानते हैं, अपनी सारी इन्द्रियोंकी चालना करके जगतको प्रत्यक्ष भावसे परीक्षा करके

देखनेमें ही जिन्हें सुख मालूम होता है, अपने स्वभावके अनुसार चलनेमें जिन्हें लज्जा, सकोच, अभिमान आदि कुछ भी नहीं होता, वे जान बूझकर बिगाड़े जाते है, चिरकालके लिए अकर्मण्य बना दिये जाते है, यह बड़े ही दुःखका विषय है। भगवान्, ऐसे पितामाता-ओंके हाथसे इन निरपराध बच्चोंकी रक्षा करो, इनपर दया करो।

हम जानते है कि बहुतसे घरोंमें बालक बालिका साहब बनाये जा रहे है। वे आयाओं या दाइयोंके हाथोंसे मनुष्य बनते हैं, विकृत बेढंगी हिन्दुस्थानी सीखते हैं, अपनी मातृभाषा हिन्दी भूल जाते है और भारतवासियोंकें बच्चोंके लिए अपने समाजसे जिन सैंकड़ों हजारों भावोंके द्वारा निरन्तर ही विचित्र रसोंका आकर्षण करके पुष्ट होना स्वाभाविक था, उन सब स्वजातीय नाड़ियोंके सम्बन्धसे वे जुदा हो जाते हैं और इधर अँगरेज़ी समाजके साथ भी उनका सम्बन्ध नहीं रहता। अर्थात् वे अरण्यसे उखाड़े जा कर विलायती टीनके टबोंमे बड़े होते है। हमने अपने कानोसे सुना है इस श्रेणीका एक लड़का दूरसे अपने कई देशीय भावापन्न रिश्तेदारोंको देखकर अपनी मासे बोला था—"Mamma, mamma, look, lot of Babus are coming" एक भारतवासी लडकेकी इससे अधिक दुर्गति और क्या हो सकती है! बड़े होनेपर स्वाधीन रुचि और प्रवृत्तिके वश जो साहबी चाल चलना चाहें वे भले ही चलें, किन्तु उनके बचपनमे जो सब मावाप बहुत अपव्यय और बहुतसी अपचेष्टासे सन्तानोको सारे समाजसे बाहर करके स्वदेशके लिये अयोग्य और विदेशके लिए अग्राह्य बना डालते है, सन्तानोंको कुछ समयके लिए केवल अपने उपार्जनके बिलकुल अनिश्चित आश्रयके भीतर लपेट रखकर भविष्यतकी दुर्गतिके लिए जान बुझकर तैयार करते हैं, उन सब अभि-

भावकोंके निकट न रहकर बालक यदि दूर रक्खे जावें तो क्या कोई बड़ी भारी दुश्चिताका कारण हो जायगा?

हमने जो ऊपर एक दृष्टान्त दिया है उसका एक विशेष कारण है। साहबीपनका जिन्हें अभ्यास नहीं है, यह दृष्टात उनके चित्तोंपर बड़े जोरसे चोट पहुँचावेगा। वे सचमुच ही मन-ही-मन सोचेंगे कि लोग यह इतनी सी मामूली बात क्यों नहीं समझते—वे सारा भविष्यत् भूलकर केवल अपने कितने ही विकृत अभ्यासोंकी अधताके वश बच्चोंका इस प्रकार सर्वनाश करनेके लिए क्यों तत्पर हो जाते हैं।

किन्तु यह याद रखना चाहिए कि जिन्हें साहबीपनका अभ्यास हो रहा है, वे यह सब काम बहुत ही सहज भावसे किया करते हैं। यह बात कभी उनके मनमें ही नहीं आ सकती कि हम सन्तानको किसी दूषित अभ्यासमें डाल रहे हैं। क्योंकि हमारे निजके भीतर जो सब ख़ास ख़ास विकृतियाँ होती है उनके सम्बन्धमे हम एक तरहसे अचेतन ही रहते हैं—उन्होंने हमें अपनी मुट्ठीमें इस तरह कर रक्खा है कि उनसे और किसीका अनिष्ट तथा असुविधा होनेपर भी हम उनकी ओरसे उदासीन रहते हैं—यह नहीं सोचते कि इनसे दूसरोको हानि पहुँच रही है। हम समझते है कि परिवारके भीतर क्रोध, द्वेष, अन्याय, पक्षपात, विवाद, विरोध, ग्लानि, बुरे अभ्यास, कुसंस्कार आदि अनेक बुरी बातोंका प्रादुर्भाव होनेपर भी उस परिवारसे दूर रहना ही बालकोंके लिये सबसे बड़ी विपत्ति है। यह बात कभी हमारे मनमें उठती ही नहीं कि हम जिसके भीतर रहकर मनुष्य हुए हैं उस ( परिवार ) के भीतर और किसीके मनुष्य बननेमें कुछ क्षति है या नहीं। किन्तु यदि मनुष्य बनानेका आदर्श सच हो, यदि बालकोंको अपने ही जैसा काम चलाऊ आदमी बनानेको हम यथेष्ट

न समझते हों तो यह बात हमारे मनमें जरूर उठेगी कि बालकोको शिक्षाके समय ऐसी जगह रखना हमारा कर्तव्य है कि जहाँ वे स्वभावके नियमानुसार विश्वप्रकृतिके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखकर ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक गुरुओंके सहवासमें ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य बन सकें।

भ्रूणको गर्भके भीतर और बीजको मिट्टीके भीतर अपने उपयुक्त खाद्यसे परिवृत होकर गुप्त रहना पड़ता है। उस समय रात दिन उन दोनोंका एक मात्र काम यही रहता है कि खाद्यको खींचकर आपको आकाशके लिए और प्रकाशके लिए तैयार करते रहना। उस समय वे आहरण नहीं करते, चारो ओरसे शोषण करते हैं। प्रकृति उन्हें अनुकूल अन्तरालके भीतर आहार देकर लपेट रखती है—बाहरके अनेक आघात और अपघात उनपर चोट नहीं पहुँचा सकते और नाना आकर्षणोंमें उनकी शक्ति विभक्त नहीं हो पड़ती।

बालकोंका शिक्षा समय भी उनके लिए इसी प्रकारकी मानसिक भ्रूण-अवस्था है। इस समय वे ज्ञानके एक सजीव वेष्टनके बीच रात दिन मनकी खुराकके भीतर ही बात करके बाहरकी सारी विभ्रान्तियोंसे दूर गुप्त रूपसे अपना समय व्यतीत करते हैं, और यही होना भी चाहिए—यह स्वाभाविक विधान इस समय चारों ओरकी सभी बातें उनके अनुकूल होना चाहिए,—जिससे उनके मनका सबसे आवश्यक कार्य होता रहे अर्थात् वे जानकर और न जानकर खाद्यशोषण करते रहें, शक्तिसंचय करते रहें और आपको परिपुष्ट करते रहें।

संसार कार्यक्षेत्र है और नाना प्रवृत्तियोंकी लीलाभूमि है—उसमें ऐसी अनुकूल अवस्थाका मिलना बहुत ही कठिन है जिससे बालक शिक्षाकालमें शक्तिलाभ और परिपूर्ण जीवनकी मूल पूँजी संग्रह कर सकें। शिक्षा समाप्त होनेपर गृहस्थ होनेकी वास्तविक क्षमता उनमें

उत्पन्न होगी--किन्तु यह याद रखना चाहिए कि जो ससारके समस्त प्रवृत्ति-संघातोंके बीच रहकर यथेच्छ मनुष्य बन जाते हैं, उन्हें गृहस्थ होनेके योग्य मनुष्यत्व प्राप्त नहीं हो सकता--जमींदार बनाया जा सकता है, व्यवसायी बनाया जा सकता है परन्तु मनुष्य बनना बहुत ही कठिन है। हमारे देशमें एक समय गृहधर्मका आदर्श बहुत ही ऊँचा था, इसीलिए समाजमें तीनों वर्णोंको ससारमें प्रवेश करनेके पहले ब्रह्मचर्य-पालनके द्वारा आपको तैयार करनेका उपदेश और व्यवस्था थी। यह आदर्श बहुत समयसे नीचे गिर गया है और उसके स्थानपर हमने अब तक और कोई महत् आदर्श ग्रहण नहीं किया, इसीसे हम आज क्लर्क, सरिश्तेदार, दारोगा, डिपुटी मजिस्ट्रेट बनकर ही सन्तुष्ट है--इससे अधिक बननेको यद्यपि हम बुरा नहीं समझते तथापि बहुत समझते है।

किन्तु इससे बहुत अधिक भी बहुत नहीं है। हम यह बात केवल हिन्दुओंकी ओरसे नहीं कहते हैं--नहीं, किसी देश और किसी देश समाजमें भी यह बहुत नहीं है। दूसरे देशोंमें ठीक इसी प्रकारकी शिक्षाप्रणाली प्रचलित नहीं की गई और वहाके लोग युद्धोंमें लड़ते है, वाणिज्य करते हैं, टेलीग्राफके तार खटखटाते हैं, रेलगाड़ीके एञ्जिन चलाते हैं--यह देखकर हम भूले हैं,--और यह भूल ऐसी है कि किसी सभामें एकाध प्रबन्धकी आलोचना करनेसे मिट जायगी ऐसी आशा नहीं की जा सकती। इसलिए आशङ्का होती है कि आज हम 'जातीय' शिक्षापरिषत्की रचना करनेके समय अपने देश और अपने इतिहासको छोड़कर जहाँ तहाँ उदाहरण खोजनेके लिए घूम फिरकर कहीं और भी एक संचेमे ढला हुआ कलका स्कूल न खोल बैठें। हम प्रकृतिका विश्वास नहीं करते, मनुष्यके प्रति भरोसा नहीं रखते, इसलिए कलके विना हमारी गति नहीं है। हमने मनमें

निश्चय कर रक्खा है कि नीतिपाठोंकी कल चलाते ही मनुष्य साधु बन जायँगे और पुस्तकें पढ़ानेका बड़ा फंदा डालते ही मनुष्यका तृतीय चक्षु जो ज्ञाननेत्र है वह आप ही उघड़ पड़ेगा !

इसमें सन्देह नहीं कि प्रचलित प्रणालीके एक स्कूल खोलनेकी अपेक्षा ज्ञानदानका कोई उपयोगी आश्रम स्थापित करना बहुत ही कठिन है। किन्तु स्मरण रखिए कि इस कठिनको सहज करना ही भारतवर्षका आवश्यक कार्य होगा। क्योंकि, हमारी कल्पनामेंसे यह आश्रमका आदर्श अभी तक लुप्त नहीं हुआ है और साथ ही यूरोपकी नाना विद्याओंसे भी हम परिचित हो गये हैं। विद्यालाभ और ज्ञान-लाभकी प्रणालीमें हमें सामञ्जस्य स्थापित करना होगा। यह भी यदि इससे न हो सका तो समझ लो कि केवल नकलकी ओर दृष्टि रखकर हम सब तरह व्यर्थ हो जायँगे—किसी कामके न रहेंगे। अधिकार-लाभ करनेको जाते ही हम दूसरोंके आगे हाथ फैलाते हैं और नवीन गढ़नेको जाते ही हम नकल करके बैठ जाते है। अपनी शक्ति और अपने मनकी और देशकी प्रकृति और देशके यथार्थ प्रयोजनकी ओर हम ताकते भी नहीं हैं—ताकनेका साहस भी नहीं होता। जिस शिक्षाकी कृपासे हमारी यह दशा हो रही है उसी शिक्षाको ही एक नया नाम देकर स्थापन कर देनेसे ही वह नये फल देने लगेगी, इस प्रकार आशा करके एक और नई निराशाके मुखमें प्रवेश करनेकी अब हमारी प्रवृत्ति तो नहीं होती। यह बात हमें याद रखनी होगी कि जहाँ चन्देके रुपये मूसलधारके समान आ पडते है शिक्षाका वहीं अच्छा जमाव होता है, ऐसा विश्वास न कर बैठना चाहिए। क्योंकि मनुष्यत्व रुपयोसे नहीं खरीदा जा सकता। जहाँ कमेटीके नियमोंकी धारा निरन्तर बरसती रहती है, शिक्षाकल्प-

लता वहीं जल्दीसे बढ़ उठती है, यह भी कोई बात नहीं है। क्योंकि केवल नियमावली अच्छी होनेपर भी वह मनुष्यके मनको खाद्य नहीं दे सकती। अनेकानेक विषयोंके पढ़ानेकी व्यवथा करनेसे ही शिक्षा अधिक और अच्छी होने लगी, ऐसा समझना भी भूल है क्योंकि मनुष्य जो बनता है सो "न मेधाया न बहुना श्रुतेन।" जहाँ एकान्तमें तपस्या होती है, वहीं हम सीख सकते हैं; जहाँ गुरूरूपसे त्याग होता है, जहाँ एकान्त अभ्यास या साधना होती है, वहीं हम शक्ति बढ़ा सकते हैं, जहाँ सम्पूर्ण भावसे दान होता है वहीं सम्पूर्ण भावसे ग्रहण भी सभव हो सकता है; जहाँ अध्यापकगण ज्ञानकी चर्चामें स्वयं प्रवृत्त रहते हैं वहींपर छात्रगण विद्याके प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं; बाहर विश्वप्रवृत्तिका आविर्भाव जहाँ बिना रुकावटके होता है, भीतर वहींपर मन सम्पूर्ण विकसित हो सकता है; ब्रह्मचर्यकी साधनामें जहाँ चरित्र सुस्थ और आत्मवश होता है, धर्मशिक्षा वहाँ ही सरल और स्वाभाविक होती है; और जहाँपर केवल पुस्तक और मास्टर, सेनेट और सिंडिकेट, ईंटोंके कोठे और काठका फर्नीचर है, वहाँ हम जितने बड़े आज हो उठे हैं, उतने ही बड़े होकर कल भी बाहर होंगे। *

---

* श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी शिक्षानिबन्धावलीके एक बंगला लेखका अनुवाद।

# वन-विहंगम ।

(१)

वन बीच बसे थे, फँसे थे ममत्त्वमें,
एक कपोत कपोती कहीं ।
दिन-रात न एकको दूसरा छोड़ता,
ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं ॥
बढ़ने लगा नित्य नयानया नेह,
नई नई कामना होती रहीं ।
कहनेका प्रयोजन है इतना,
उनके सुखकी रही सीमा नहीं ॥

(२)

रहता था कबूतर मुग्ध सदा,
अनुरागके रागमें मस्त हुआ ।
करती थी कपोती कभी यदि मान,
मनाता था पास जा व्यस्त हुआ ॥
जब जो कुछ चाहा कबूतरीने,
उतना वह वैसे समस्त हुआ ।
इस भाति परस्पर पक्षियोंमें भी,
प्रतीतिसे प्रेम प्रशस्त हुआ ॥

(३)

सुविशाल वनोंमे उड़े फिरते,
अवलोकते प्राकृत चित्र छटा ।
कहीं शस्यसे श्यामल खेतखड़े,
जिन्हे देख घटाका भी मान घटा ॥

कहीं कोसों उजाड़में झाड़पड़े,
कहीं आड़मे कोई पहाड़ सटा ।
कहीं कुज, लताके वितान तने,
घने फूलोंका सौरभ था सिमटा ॥

(४)

झरने झरनेकी कहीं झनकार,
फुहारेका हार बिचित्र ही था ।
हरियाली निराली न माली लगा,
तब भी सब ढग पवित्र ही था ॥
ऋषियोंका तपोवन था, सुरभीका,
जहॉ पर सिंह भी मित्र ही था ।
बस जान लो, सात्विक सुन्दरता—
सुख-सयुत शान्तिका चित्र ही था ॥

(५)

कहीं झील किनारे बडे बड़े ग्राम,
गृहस्थ-निवास बने हुए थे ।
खपरैलोंमें कद्दू करैलोंकी बेलके
खूब तनाव तने हुए थे ॥
जल शीतल, अन्न, जहा पर पाकर
पक्षी घरोंमें घने हुए थे ।
सब ओर स्वदेश-समाज-स्वजाति—
भलाईके ठान ठने हुए थे ॥

(६)

इस भाति निहारते लोककी लीला
प्रसन्न वे पक्षी फिरें घरको ।
उन्हें देखके दूरहीसे मुँह खोलते

बच्चे चलें चट बाहरको ॥
दुलराने खिलाने पिलानेसे था
अवकाश उन्हे न घड़ी भरको।
कुछ ध्यान ही था न कबूतरको
कहीं काल चला रहा है शरको ॥

(७)

दिन एक बड़ा ही मनोहर था,
छवि छाई वसन्तकी थी वनमें।
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी,
जड़ चेतनके तनमे मनमे ॥
निकले थे कपोत–कपोती कहीं,
पड़े झुंडमें, घूमते काननमें।
पहुँचा यहाँ घोसले पास शिकारी,
शिकारकी, ताकसे निर्जनमें ॥

(८)

उस निर्दयने उसी पेड़के पास
बिछा दिया जालको कौशलसे।
वहाँ देखके अन्नके दाने पड़े,
चले बच्चे, अभिज्ञ न थे छलसे ॥
नहीं जानते थे कि "यहींपर है,
कहीं दुष्ट भिड़ापड़ा भूतलसे।
बस फाँसके बाँसके बन्धनमे,
कर देगा हलाल हमें बलसे" ॥

(९)

जब बच्चे फँसे उस जालमें जा,
तब वे घबड़ा उठे बन्धनमे।

इतनेमे कबूतरी आई वहाँ;
दशा देखके व्याकुल ही मनमे—
कहने लगी, हाय, हुआ यह क्या!
सुत मेरे हलाल हुए वनमें।
अब जालमें जाके मिलूं इनसे,
सुख ही क्या रहा इस जीवनमें॥

(१०)

उस जालमें जाके बहेलिए के,
ममतासे कबूतरी आप गिरी।
इतनेमें कबूतर आया वहाँ;
उस घोसलेमें थी विपत्ति निरी॥
लखते ही अँधेरा सा आगे हुआ,
घटनाकी घटा वह घोर घिरी।
नयनोंसे अचानक बूँद गिरे,
चेहरेपर शोककी स्याही फिरी॥

(११)

तब दीन कपोत बड़े दुखसे
कहने लगा—हा अति कष्ट हुआ।
'निबलोंहीको दैव भी मारता है,'
ये प्रवाद यहाँपर स्पष्ट हुआ॥
सब सूना किया, चली छोड़ प्रिया,
सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ।
इस भाति अभागा अतृप्त ही मैं,
सुख भोगके स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ॥

(१२)

कल कूजन केलि—कल्लोलमें लिप्त हो,
बच्चे मुझे जो सुखी करते।

जब देखते दूरसे आते मुझे,
किलकारियां मोदसे जो भरते ॥
समुहायके धायके आयके पास
उठायके पंख, नहीं टरते ।
वही हाय, हुए असहाय अहो !
इस नीचके हाथसे हैं मरते ।

(१३)

गृहलक्ष्मी नहीं, जो जगाये रहा—
करती थी सदा सुख कल्पनाको ।
शिशु भी तो नहीं, जो उन्हींके लिए,
सहता इस दारुण वेदनाको ॥
वह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा
भोग रहा यम–यातनाको ।
अब मैं ही वृथा इस जीवनको रख,
कैसे सहूँगा विडम्बनाको ?

(१४)

यही सोचता था यों कपोत, वहाँ
चिड़ीमारने मार निशाना लिया ।
गिर लोट गया धरती पर पक्षी,
बहेलिएने मनमाना किया ॥
पलमें कुलका कुल काल करालने,
भूत–भविष्यमें भेज दिया ।
क्षणभंगुर जीवनकी गतिका
यह देखो, निदर्शन है बढ़िया ॥

(१५)

हरएक मनुष्य फँसा जो ममत्वमे,
तत्त्व-महत्त्वको भूलता है ।

उसके सिर पै खुला खड्ग सदा
बँधा धागेमे धारसे झूलता है ॥
वह जाने विना विधिकी गतिको
अपनी ही गढन्तमें फूलता है।
पर अन्तको ऐसे अचानक, अन्तक—
अस्त्र अवश्य ही हूलता है ॥

(१६)

पर जो जन भोगके साथ ही योगके
काम अकाम किया करता।
परिवारसे प्यार भी पूरा करे
पर-पीर परन्तु सदा हरता ॥
निज भावको भाषाको भूले नहीं,
कहीं विघ्न--व्यथाको नहीं डरता।
कृतकृत्य हुआ हंसते हसते
वह सोच सकोच बिना मरता ॥

(१७)

प्रिय पाठक, आप तो विज्ञ ही है,
फिर आपको क्या उपदेश करें?
शिरपै शर ताने बहेलिया काल
खड़ा हुआ है, यह ध्यान धरें ॥
दशा अन्तको होनी कपोतकी ऐसी
परन्तु न आप जरा भी डरें।
निज धर्मके कर्म सदैव करें,
कुछ चिन्ह यहांपर छोड मरें ॥

रूपनारायण पाण्डेय।

# विविध प्रसंग।

## १. संस्कृत भाषाके प्रचारकी आवश्यकता।

गृहस्थ नामक बंगला पत्रके अगहनके अंकमें श्रीयुक्त विधुशेखर शास्त्रीका एक बहुत ही महत्वका लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने संस्कृत भाषाके सम्बंधमे लिखते हुए कहा है कि–"संस्कृत साहित्यने सारे संसारमें अपनी महिमा स्थापित की है। संस्कृतके साथ भारतीय भाषाओंका बहुत ही निकट सम्बन्ध है। संस्कृतसे हमारी भाषाओंने बहुत कुछ ग्रहण किया है और आगे भी उन्हें बहुत कुछ ग्रहण करना होगा। उसे छोड़ देनेसे इनकी परिपुष्टि होना असंभव है। हिन्दी भाषाके अभ्युदयके लिए संस्कृतका प्रचार बहुत ही आवश्यक है। जिले जिलेमे संस्कृतका बहुत प्रचार करनेके लिए हम सबको तन मन धनसे उद्योग करना चाहिए। इसके साथ हम और भी दो भाषाओंका प्रचार कर सकते है और करना भी चाहिए। पालि और प्राकृत साहित्यको हम किसी भी तरह परित्याग नहीं कर सकते। क्योंकि भारतके मध्य युगके इतिहासको सम्पूर्ण करनेके लिये पालि और प्राकृत साहित्य ही समर्थ है। भारतके मध्ययुगके धर्म और समाजमें तीन धाराओंका आविर्भाव हुआ था, एक ओर बौद्ध, एक ओर जैन, और मध्यमें ब्राह्मणधारा। पालिसाहित्यकी तो थोड़ी बहुत आलोचना हुई भी है, परन्तु प्राकृत निबद्ध जैनसाहित्य अब भी हमारी आलोचनाके मार्गमें उपस्थित नहीं हुआ है। संस्कृतके साथ पालि और प्राकृतका इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि उसके साथ इनकी विना परिश्रमके ही अच्छी आलोचना हो सकती है।" शिक्षाप्रचारकोंको शास्त्रीजीके उक्त कथनपर ध्यान देना चाहिए।

## २. एक प्राचीन राज्यका ध्वंसावशेष।

पृथ्वीके गर्भमें मनुष्य जातिका अनन्त इतिहास भरा पडा है। कुछ समयसे प्राचीन बातोंकी खोज करनेवालोंका ध्यान इस ओर बहुत कुछ आकर्षित हुआ है। जगह जगह भूगर्भ खोदकर प्राचीन स्थानोंका और इतिहासोंका पता लगाया जा रहा है। और इस कार्यमें कहीं कहीं तो आशासे अधिक सफलता हुई है। पाठकोंको माळूम होगा कि भारतवर्षमें ऐसे कई स्थान खोदे जा चुके हैं–प्राचीन पाटलीपुत्र या पटनाकी खुदाईका काम तो अब तक जारी है और इसके लिए सुप्रसिद्ध दानी तातानें सरकारको एक अच्छी रकम देना स्वीकृत किया है। भारतके बाहर इस प्रकारकी खोजें और भी अधिक उत्साहके साथ हो रही हैं। एशियाके ब्याबिलन नामक देशका नाम पाठकोंने सुना होगा। यहाँ कई वर्षोंसे पृथ्वी खोदी जा रही है। इससे वहाँके प्रसिद्ध राजा नेबूकाडनेजर और उसकी राजधानीकी अनेक गुप्त बातोंका पता लगा है। साथ ही ब्याबिलोनियाकी अतिशय प्राचीन राजधानी किस नगरकी बहुत सी चीजे हाथ लगी हैं। राजमहलके विशाल आँगनमें एक बड़े भारी मन्दिरका कुछ भाग मिला है।जिसका नाम है–'स्वर्गमर्त्यकी दीवाल, जातीय देवता जमामाका मन्दिर।' इस मन्दिरमें जो मूर्तियाँ और बर्तन आदि पाये गये हैं वे ४ हजार वर्षसे भी पुराने है। बगदाद और निनेभके मध्यवर्ती असुरनगरके खोदनेसे जो कुछ मिला है उससे प्राचीन असीरिया वासियोंके एक सुगठित सभ्यताके इतिहासका मार्ग सुगम हो गया है। कालडिया और असीरियावालोंके जो मकानात मिले हैं वे सब ईंटोंके बने हुए हैं। एक पूराका पूरा मकान मिला वह सात मंजिलका है। प्रत्येक मंजिलमें सात सात कमरे हैं और वे जुदा जुदा रंग और आकारकी ईंटोंसे बने हुए है। निनेभ शहरके

असुर-वनिपाल राजाके राजमहलमें एक बड़ी भारी लायब्रेरी मिली है। लायब्रेरीमें ईंटोपर लिखे हुए कई हजार फलक हैं। इनके पढ़नेसे मालूम होता है कि ये दूसरे फलकोंपरसे किये गये हैं। अर्थात् इसके पहले भी इन लिपियोका साहित्य था। इन फलक लिपियोंमें जुदा जुदा प्रसिद्ध भाषाओंका साहित्य, अंकशास्त्र, पशु पक्षी, वनस्पतियोंकेनाम, भूगोल वृत्तान्त, और पौराणिक कथायें सगृहित हैं। ये फलक बड़ी सावधानीसे संरक्षित करके रक्खे गये हैं। इनके सिवा और प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानोंकी तथा शिल्पादि वस्तुओंका आविष्कार हुआ है जिससे बड़े ही महत्वकी बातें मिली हैं, वहुतसे मकान और वस्तुयें तो ऐसी मिली हैं जो वाइविल वननेके पाच हजार वर्ष पहलेकी बतलाई जाती हैं। इसकी ऐतिहासिक पंडितोमें बड़ी चर्चा है। इतिहास हमको धीरे धीरे बतलाता जा रहा है कि मनुष्य जातिकी सभ्यता जितनी पुरानी बतलाई जाती है उससे वहुत ही पुरानी—अतिशय प्राचीनतम है।

## ३. चार लाखका महान् दान।

वड़े ही आनन्दका विषय है कि जैनसमाजके धनिकोंने समयोपयोगी कार्योंके लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया है। इस विषयमें इन्दौरके सेठोंने वड़ी ही उदारता दिखलाई है। पाठकोंको माॡम होगा कि अभी कुछ ही दिन पहले श्रीमान् सेठ कल्याणमलजीने दो लाख रुपयेका दान करके इन्दौरमें एक जैन हाईस्कूलकी नींव डाल दी है। हाईस्कूलका बिल्डिंग-प्राय. पूरा बन चुका है और दूसरी तैयारियाँ खुब तेजीके साथ हो रही हैं। जैनियोंका यह एक आदर्श स्कूल होगा और सुना है कि सेठजी स्वीकृत रकमसे भी इस काममें अधिक रकम लगानेके लिए प्रस्तुत हैं। इधर पालीताणाके अधिवेशनमें श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजीने विद्याप्रचारके लिए चार लाख रुपयेकी रकम और

भी देना स्वीकार की है। जहां तक हमारा ख़याल है वर्तमान समयमें विद्योन्नतिके लिए दिगम्बर जैनसमाजमें यह सबसे बड़ा दान हुआ है। इससे बड़ी रकम इस कार्यके लिए यही सबसे पहली निकली है। इसमें सन्देह नहीं कि यह उदारता प्रगट करके सेठजीने अपना नाम युग युगके लिए अमर कर लिया है। यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि सेठजी सम्पूर्ण शिक्षित जनोंकी सम्मति लेकर इस रकमसे एक सर्वोपयोगी सर्वजनसम्मत संस्था खोलना चाहते हैं। इस विषयमें बहुत जल्दी सब लोगोंसे सम्मति माँगी जायगी और एक कमेटी संगठित करके सस्था खोलनेका निश्चय किया जायगा। हमारी आन्तरिक इच्छा है कि इस रकमसे कोई आदर्श संस्था खुले और जैनियोंकी जो आवश्यकतायें है उनमेसे किसी एककी सन्तोप योग्य पूर्ति हो।

## ४. शिक्षितोंका कर्तव्य।

जैनसमाजमें शिक्षितोंकी कमी नहीं। अँगरेजी और संस्कृतके ढेरके ढेर विद्वान् हमारे यहाँ है। इनमेंसे जो जितना उच्च शिक्षा प्राप्त है, सस्थाओंके विपयमें उसका सुर उतना ही ऊँचा है। कोई जैनहाईस्कूल खोलना आवश्यक बतलाता है, कोई जैनकालेजके बिना जैनसमाजकी स्थिति ही असंभव समझता है और कोई एक बड़े भारी संस्कृत विद्यालयकी आवश्यकता प्रतिपादन करता है। इस विषयमें मतभेद होना स्वाभाविक है वह होना ही चाहिए; परन्तु हम यह पूछते है कि क्या ये आवश्यकतायें सच्चे जीसे बतलाई जा रही है? इन आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए क्या किसीके हृदयमे कुछ उद्योग करनेकी या थोड़ा बहुत स्वार्थ त्याग करनेकी इच्छा भी कभी उत्पन्न हुई है? एक दिन था जब आप लोगोंके मुँहसे इस प्रकारका रोना शोभा देता था कि क्या करें जैनियोमें कोई धन लगानेवाला नहीं है। परन्तु अब

वह वक्त जा रहा है। मै आज इन्दौरमें वैठा हुआ अनुभव कर रहा हूँ कि रुपया लगानेवाले तो तैयार हो गये; परन्तु हाईस्कूलों और कालेजकी चिल्लाहटसे कानकी झिल्लियॉ फाड़नेवालेका कहीं पता नहीं है। यहॉ क्यों मै तो प्रत्येक संस्थामे यही हाल देखता हूँ। जैनियोंकी प्रायः सव ही संस्थाओंकी दुर्दशा है और इसका एक मात्र कारण यह है कि हमारे यहाँ सुयोग्य काम करनेवाले नहीं मिलते। एक संस्था खुलती है, कुछ दिनोंके लिए अपनी टीमटाम दिखा जाती है और अन्तमें वे ही 'ढाकके तीन पात' रह जाते हैं—अच्छे शिक्षित कार्यकर्त्ताओंके अभावसे वह अपना पैर नहीं बढ़ा सकती। प्यारे शिक्षित भाइयो, अव यह समय आलस्यमें या केवल स्वार्थकी कीचड़में पड़े रहनेका नहीं है। इस समय यदि आप कार्यक्षेत्रमें न आवेंगे तो वस समझ लीजिए कि जैनसमाजकी उन्नति हो चुकी। इन नवीन संस्थाओंको अपने अपने कन्धोंपर नहीं रक्खा तो वस आगे इनका खुलना ही वन्द हो जायगा और यदि अपने अपने कर्तव्यका पालन किया तो अभी क्या हुआ इस धनिक जैनजातिमें प्रतिवर्ष ही ऐसी लाख दो लाख चार चार लाखकी अनेक संस्थाओंका जन्म होगा। और आपको काम करते देखकर आपके पीछे सैकड़ों कर्मवीर इन सस्थाओंके चलानेके लिए तैयार होते रहेगे। इस समय तो काम करनेवाले कहीं दिखते ही नहीं है। मालूम नहीं आज वे स्टेजपर खड़े होकर वड़े वड़े लेक्चर झाड़नेवाले कहॉ हैं? भाइयो, लेक्चरोंका काम अव नहीं रहा, वह तो हो चुका। अब तो कामका वक्त आया है। दयानन्द कालेज, पूना कालेज, हिन्दू कालेज, गुरुकुल आदि सस्थाओंको देखकर सीखो कि देश और समाजकी सेवा कैसे की जाती है और फिर अपनी अपनी परिस्थितिके अनुसार

जिससे जितनी हो सके इन संस्थाओंकी सेवाके लिए कटिबद्ध हो जाओ—और लोगोंको दिखला दो कि शिक्षा प्राप्त करनेका फल केवल धन कमाना नहीं, किन्तु देश और समाजकी सेवा करना है।

## ५. पदवियोंका लोभ.

देखते हैं कि आजकल जैन समाजमें पदवियोंका लोभ वे तरह बढ़ता जाता है। एक तो सरकारकी ओरसे ही प्रतिवर्ष चार छह जैनी रायसाहब, रायबहादुर आदिकी वीररसपूर्ण पदवियोंसे विभूपित हो जाते हैं और फिर जैनियोंकी खास टकसालमें भी दश पाँच सिंगई, सवाई सिंगई, श्रीमन्त आदि प्रतिवर्प गढ़े जाते हैं। उधर सरकारी यूनीवर्सिटियोंकी भी कम कृपा नहीं है। उनके द्वारा भी बहुतसे बी. ए., एम. ए., शास्त्री, आचार्य आदि बना करते हैं। परन्तु माल्रम होता है कि लोगोंको इतनेपर भी सन्तोष नहीं। उनके आत्माभिमानकी पुष्टि इतनेसे नहीं हो सकती। पदवी पानेके ये द्वार उन्हें बहुत ही संकीर्ण माल्रम होते हैं। इनसे तंग आकर अब उन्होंने सभा समितियोंका आश्रय लिया है। चूंकि पदवी दान सरीखा सहज काम और कोई नहीं इस लिए सभाओंने बड़ी खुशीसे यह काम स्वीकार कर लिंया है। अभी कुछ समयसे प्रांतिक सभा महासभा आदि एक दो सभाओंने इस कामको अपने हाथमें लिया था और दो चार व्यक्तियोंको अपने कृपा कटाक्षसे ऊँचा उठाया था। परन्तु इनका यह कार्य बड़ी ही मन्दगतिसे चल रहा था। यह देख भारत जैन महामण्डलसे न रहा गया उसने अबके बनारसके अधिवेशनपर सारी संकीर्णताको अलग कर दिया और एक दो नहीं दर्जनों पदवियाँ अपने कृपापात्रोंको दे डालीं। इस विषयमें उसने इतनी उदारता दिखलाई जितनी शायद ही कोई दिखा सकता। सुनते तो यहाँ तक हैं कि मण्डलके बहुतसे मेम्ब-

रोंसे इस विषयमें सम्मति लेनेकी भी आवश्यकता नहीं समझी गई। अस्तु, जब पदवियाँ दी जा चुकी हैं और उनका व्यपहार भी किया जाने लगा है, तब इस विषयको लेकर तर्क वितर्क करनेमें कुछ फल नहीं कि जिन लोगोंको पदवियाँ दी गई हैं वे वास्तवमें उनके योग्य थे या नहीं और कमसे कम पदवी देनेवाले अपनी दी हुई पदवियोंका कुछ अर्थ समझते थे या नहीं; किन्तु यह हमें ज़रूर देख लेना चाहिए कि पदवी देना कहाँ तक अच्छा है, पानेवालेपर उसका क्या परिणाम होता है और हमारी पदवियोंकी कहाँ तक कदर करते है। यह सच है कि जो लोग धर्म और समाजकी सेवा कर रहे हैं उनका सत्कार करना, उनको गौरवकी दृष्टिसे देखना हमारा कर्तव्य है। हमारे ऊपर उनके जो सैकड़ों उपकारोंका बोझा है उसे हम और किसी तरह नहीं तो उनके प्रति अपनी शाब्दिक भक्ति प्रगट करके हलके ही होना चाहते हैं; परन्तु साथ ही हमें इस बातका ख़याल अवश्य रखना चाहिए कि वर्तमानमे हमें ऐसे नेताओंकी और काम करनेवालोंकी जरूरत है जो सच्चे कर्मवीर है। अर्थात् जो किसी भी प्रकारके फलकी आकाक्षा रक्खे विना ही देश, समाज और धर्मकी सेवा अपना कर्तव्य समझकर करें। कहीं ऐसा न हो कि हमारी इस शाब्दिक भक्तिसे या पदवीदानसे वे गुमराह हो जावें और अपने कर्तव्यको भूलकर हमारे दो चार शब्दोंके लोभसे मार्गच्युत हो जावें। उन्हें अपने कर्तव्यका अभिमान होना चाहिए न कि पदवीका। इसके सिवा जैसे पुरुषोंकी हमारे यहां आवश्यकता है हमारी इस पदवीवर्षासे उनका आदर्श गिर जाता है। सच पूछिए तो अभी तक जैन समाजने एक भी नेता कार्यकर्त्ता और सच्चा सेवक ऐसा उत्पन्न नहीं किया है जो हमारा आदर्श हो सके और जिसके प्रति भक्ति करनेके लिए हमें पदवियाँ

देनेकी चिन्ता करनी पड़े। हम यह नहीं कह सकते कि जिन्हें पदवियाँ दी गई है वे योग्य नहीं हैं; नहीं, परन्तु यह अवश्य हैं कि पदवियाँ देकर हमने एक तरहके आदर्श लोगोंके सामने खड़े कर दिये हैं कि हमारे आदर्श ये है। इतना होते ही हम कृतकृत्य हो सकते हैं। और यह बहुत ही बुरी बात है। हमारे आदर्श पुरुष बहुत ही ऊंचे होने चाहिए और रात दिन अपने कर्तव्य करते हुए उत्कण्ठाके साथ हमें देखते रहना चाहिए कि ऐसे महात्माओंके जन्मसे हमारा देश कब पवित्र होता है। यदि हम वर्तमान उपाधिधारियोंसे ही तृप्त हो गये तो सब हो चुका; हमें अपनेसे और अधिक आशा न रखनी चाहिए। इस समय हमें दूसरे समाजोंके तथा सर्वसाधारणके नेताओंको देखना चाहिए कि उन्हें कितनी पदवियाँ दी गई है। मान्यवर तिलक, मि० गोखले, लाला लाजपतराय, लाला हंसराज, श्रीयुक्त गाँधी आदि आदर्श पुरुषोंको बतलाइए कितनी पदवियाँ दी गई है? कई महाशयोंका यह कथन है कि हमारा समाज अभी औरोंसे बहुत पीछे है, इस लिए उसमें जो काम करनेवाले है उनका सत्कार करके उन्हें उत्साहित करना चाहिए। परन्तु सच पूछा जाय तो यह पालिसी अच्छी नहीं। लोभसे या ऐहिक अभिमान पुष्ट करके जो लोग तैयार किये जावेंगे वे उनसे कदापि अच्छे और ऊंचे नहीं हो सकते जो अपना कर्तव्य समझ कर, समाजसेवाको अपना पवित्र कर्म मानकर काम करते हैं। जिसको पदवी दी जाती है उससे मानो कह दिया जाता है कि तुम अपना काम कर चुके, कृतकृत्य हो चुके, अब तुम्हें कुछ भी करना बाकी नहीं है। आशा है कि हमारे इन थोडेसे शब्दोंपर पदवी देनेवाले और लेनेवाले दोनों ही कृपादृष्टि करेंगे और आगे जिससे यह पदवियोंका लोभ बढ़ने न पावे इसकी उचित व्यवस्था करेंगे।

### ६. हमारी संस्थायें और उनपर लोगोंकी सम्मतियाँ।

ज्यों ही कोई पढ़ा लिखा या प्रसिद्ध पुरुष किसी संस्थामें पहुँचा और एकाध दिन रहा कि उसके आगे संस्थाकी व्हिजीटर्स बुक रख दी जाती है। उससे कहा जाता है कि इस संस्थाके विषयमें आप अपनी राय लिखिए। एक तो जैन समाचारपत्रोंकी कृपासे उस निरीक्षकका पहलेहीसे कुछका कुछ विश्वास बना हुआ होता है। क्योंकि समाचारपत्रोंके सम्पादक एक तो संस्थाकी भीतरी हालतसे स्वयं ही अपरिचित होते हैं, दूसरे संस्थाके संचालक लोग उसकी प्रसिद्धिके लिए प्रायः दबाव ही डाला करते है और तीसरे सम्पादक महाशय भी संस्थाको कुछ प्राप्ति हो जाया करे इस ख़यालको अधिक पसन्द करते हैं। फल यह होता है कि निरीक्षक महाशय अपने पूर्व विश्वासके अनुसार संस्थाकी प्रशंसा कर देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। वास्तवमें जब तक दश बीस दिन रहकर किसी सस्थाका बारीकीसे अवलोकन न किया जाय तब तक कोई भी उसका भीतरी रहस्य नहीं जान सकता है। परन्तु यहाँ तो एक ही दिनमें निरीक्षक महाशय अपनी कलमसे उसे सर्वोपरि बना देते हैं। इसके बाद संस्थाके संचालक उस रिमार्कको समाचारपत्रोंमें तथा वार्षिक रिपोर्टमें प्रकाशित कर देते हैं। लोग समझते हैं कि सचमुच ही यह संस्था अच्छा काम कर रही है— इसमें कोई दोष नहीं है। परन्तु इस पद्धतिसे समाजको और सस्थाको बहुत ही हानि पहुँचती है। समाजमें उसके विषयमें कुछका कुछ खयाल हो जाता है और संस्थाके संचालक इन प्रशंसासूचक सम्मतियोंसे गुमराह हो जाते हैं। इस विषयमें लोगोंको सचेत हो जाना चाहिए।

### ७. संस्थाओंमें अंधाधुंध खर्च।

हमारे एक पाठक लिखते है कि जैनियोंकी संस्थाओंमें विशेष

करके जो नईनई खुलती हैं, अन्धाधुन्ध ख़र्च किया जाता है। यह न होना चाहिए। संचालकोंको समाजके धनको अपना अपना कमाया हुआ समझकर बहुत ख़यालसे खर्च करना चाहिए। और संस्थाओंकी आवश्यकताओंको जहाँ तक बने कम करना चाहिए। आयोजनों और आडम्बरोंकी ओर कम दृष्टि रखकर कामकी ओर विशेष दृष्टि रखना चाहिए। इस विषयमें इसी अङ्कमें प्रकाशित ' शिक्षासमस्या नामक लेखकी ओर हम पाठकोंकी दृष्टि आकर्षित करते हैं। उसमें इस विषयको बहुत ही स्पष्टतासे समझाया है।

## ८. जैन साहित्य सम्मेलन।

आगामी मार्चकी ता० २–३–४ को जोधपुरमें जैनसाहित्य सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन होगा। उस समय जोधपुरमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रसिद्ध साधु श्रीविजयधर्म सूरि रहेंगे और उनसे मिलनेके लिए जर्मनीके विद्वान् डाक्टर हरमन जैकोवी पधारेंगे। इस शुभ सम्मिलनके अवसरपर जैनसाहित्य सम्मेलनका अधिवेशन एक तरहसे बहुत ही उचित हुआ है। सम्मेलनके सेक्रेटरीसे माळूम हुआ है कि जैनोंके तीनों सम्प्रदायके साहित्यसेवियोंको इस जल्से पर शामिल होनेका निमत्रण दिया गया है। यह एक और भी बहुत अच्छी बात है। यदि हम सब साहित्य जैसे विषयकी चर्चा करनेके लिए भी एकत्र न हो सके तो और किस काममें एक हो सकेंगे ? जिन जिन कामोंको तीनों सम्प्रदायवाले एक साथ मिलकर कर सकते हैं उनमें एक यह भी है। इस सम्मेलनमें अनेक विषयोंपर निबन्ध पढ़े जावेंगे और निम्नलिखित विषयोंकी ख़ास तौरसे चर्चा होगी:—१ प्राकृत भाषाका कोश और व्याकरण नई पद्धतिके अनुसार तैयार करवाना। २ यूनीवर्सिटियोंमें प्राकृत भाषा दाखिल करवानेकी आवश्यकता। ३ जैन-

पाठ्य पुस्तकें तैयार करवानेकी ज़रूरत। ४ जैनसाहित्यका प्रसार करनेके लिए पाश्चात्य विद्वानोंने जो प्रयत्न किया है, उसके विषयमें धन्यवाद देना और विशेष प्रयत्न करनेके लिए प्रेरणा करना। ५ जैन इतिहास तैयार करनेकी आवश्यकता। ६ जैन म्यूजियमके स्थापित करनेकी आवश्यकता। ७ प्राचीन खोजोंके द्वारा जैन साहित्य प्रगट करनेकी आवश्यकता। ८ भिन्न भिन्न भाषाओंके द्वारा जैनसाहित्य प्रगट करानेकी आवश्यकता। ९ प्रगट होनेवाले साहित्यको पास करनेवाले एक मण्डलकी आवश्यकता। इसमें सन्देह नहीं कि जैनियोंमें एक साहित्यसम्मेलनकी बहुत बड़ी जरूरत है; परन्तु यह बात अभी विचारणीय ही है कि इसका समय अभी आया है या नहीं। दिगम्बर सम्प्रदायके शिक्षितोंसे हमारा जो कुछ परिचय है और अपने श्वेताम्बरी और स्थानकवासी मित्रोंसे हमारी जितनी जानकारी है उसके खयालसे हम समझते हैं कि अभी हममें साहित्यसेवी बहुत ही कम हैं और जब तक साहित्यसेवियोंकी एक अच्छी संस्था न हो जाय तब तक इस विषयमें सफलताकी बहुत ही कम आशा है।

---

## ९. बालक साधु न होने पावें।

बहुतसे साधु वेषधारी लोग छोटे छोटे बच्चोंको फुसलाकर साधु बना लेते हैं और उनसे अपनी शिष्यमण्डलीकी वृद्धि करते हैं। श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायके जैनियोंमें तो इसका बहुत ही जोर है। प्रतिवर्ष बीसो ना समझ बच्चे साधुका वेष धारण किया करते हैं और जब ये जवान होते हैं तब इनके द्वारा ढोंग और दुराचारोंकी वृद्धि होती है। इनमें बहुत ही कम साधु ऐसे निकलते हैं जो इस पवित्र नामके धारण करने योग्य हों यह देखकर प्रान्तीय व्यवस्था-

पक कौसिलमें आनरेवल लाला सुखवीरसिंहजीने बालक साधुओंको रोकनेके लिए एक बिल पेश किया है। हर्षका विषय है कि अभी हाल ही इस बिलका काशीके पण्डितोने प० शिवकुमार शास्त्रीकी अध्यक्षतामे खूब दृढ़ताके साथ समर्थन किया इसके पहले काशीके निर्मले साधुओंने भी इसका अनुमोदन किया था। प्रायः सभी समझदार लोग इसके पक्षमें है। परन्तु हमको यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि कलकत्तेके कुछ जैनी भाइयोंने इसका विरोध किया है और कुछ दिन पहले जैनमित्रके सम्पादक महाशयने भी लोगोको कलकत्तेके भाइयोंका साथ देनेके लिए उत्साहित किया था। हमारी समझमें उक्त सज्जन या तो इन बालक साधुओंके विकृत जीवनसे परिचित नहीं हैं या इन्हें यह भय हुआ है कि कहीं इससे हमारे धर्ममार्गमें कुछ क्षति न पहुँचे। वह समय चला गया; वह धर्मपूर्ण समाज अब नहीं रहा और वे भाव अब लोगोंमें नहीं रहे। जब छोटीसी उमरमें बालकोंको वैराग्य हो जाता था। और उमरमें केवलज्ञान होनेकी सभावना थी। यह समय उससे ठीक उलटा है इन बालक साधुओंके द्वारा कितने कितने अनर्थ होते हैं उन्हें देख सुनकर रोम खडे होते हैं। इस लिए इस विपयमें कुछ रुकावट हो जाय तो अच्छा ही होगा। हॉ, हम इतनी प्रार्थना कर सकते हैं कि इस कानूनका वर्ताव समझ बूझकर किया जाय इसमे सख्ती न की जाय।

## १० एक शिक्षितके अपने पुत्रके विपयमें विचार।

हमारे पाठक जयपुरनिवासी श्रीयुक्त बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. को अच्छी तरहसे जानते हैं। कुछ दिन पहले आपने अपने पुत्र चिरजीवि प्रकाशचन्द्रकी नवम वर्पगाठका उत्सव किया था। यह उत्सव बिलकुल ही नये ढगका और प्रत्येक शिक्षितके अनुकरण करने योग्य हुआ था।

स्थानकी कमीसे हम उत्सवका पूरा विवरण न देकर केवल उतने ही शब्द यहाँ प्रकाशित करेंगे जो श्रीसेठीजीने उस समय कहे थे—"सज्जन-वृन्द, आज आप लोगोंने वड़ी भारी कृपा करके मेरे इस गरीव घर-को पवित्र किया। इसका मैं वहुत ही आभारी हूँ। आज प्रकाश-चन्द्रका जन्म दिन है। यह जव पैदा हुआ था तब इसने इस घरमें आन-न्दके वाजे वजवाये थे और आज यह नौवें वर्षका उल्लंघन कर दशवें-में पदारोपण करता है, इसलिए आज भी आनन्दोत्सव मनाया जा रहा है। किन्तु मेरी समझमें उस खुशीमे और इस खुशीमे वहुत अन्तर है। इसका वर्णन करनेके लिए वहुत समय चाहिए इसलिए मै उसका ज़िक्र न करके अपने उद्देश्यकी ओर झुकता हूँ। वान्धवो, मैं अपने लख्ते जिगर प्रकाशचन्द्रसे आम लोगोंकी तरह यह आशा नहीं रखता कि यह मुझे धन कमा कर दे। मै नहीं चाहता कि प्रकाशचन्द्र वड़े वड़े महल मकानात चुनावे और वुढ़ापेमें मेरी सेवा करे। मै नहीं चाहता कि यह वी. ए, एम. ए, पासकर तहसीलदारी या नाजिमी कर गुलाम वने। मै सौ दो सौ रुपये मासिक वेतनमें इसका जीवन नहीं विक-वाना चाहता। मै चाहता हूँ कि जिस भूमिपर जन्म लेकर इसने आपको इतना वड़ा किया है, जिसके अन्न जल वायुसे पालित पोषित होकर यह अपनी प्राणरक्षा कर सका है, जिसके सन कपासादिके कपडोंसे अपने शरीरको वचा सका है उसी जन्म भूमिकी भलाईके लिए उस-की वहवूदीके लिए और उसकी उन्नतिके लिए यह अपना सर्वस्व अर्पण कर दे। बेटा प्रकाश, आजसे मैंने तुमको उस स्वर्णमयी धरा-का, उस भीमार्जुन जैसे वीरोंको जन्म देनेवाली वसुन्धराका, कर्ण सदृश दानियोंकी जन्मदातृ भूमिका, समन्तभद्राचार्य, शकराचार्य, हेम-चन्द्राचार्य, अकलङ्क भट्टादि तत्त्ववेत्ताओंकी धारक धरणीका, गौत-

मादि जैसे प्रेमपाठक महात्माओंको उत्पन्न करनेवाली पृथ्वीका, महावीर पार्श्वनाथादि जैसे तीर्थकरोंको अपनी गोदमे पालन करनेवाली मेदिनीका त्राण करनेके लिए उसके उद्धारार्थ अपर्ण किया। वत्स, आजसे तुम इसी भारतभूमिको अपनी जननी समझना, समाज व धर्मको अपना पिता मानना, देशहितैषिता व समाजहितैषितामें महाराणा प्रताप व शिवाजीका अनुकरण करना, अपने धर्ममें दृढ़ रहना, प्राणके रहने तक अपने देशव्रतका व धर्मव्रतका पालन करना, महात्मा ईसाकी भाँति शूलीपर चढ़ने पर भी अपने धर्मकी रक्षा करना, साक्रेटीजकी भाँति यदि जहरका प्याला पीना पड़े तो बेधड़क होकर पीना, गुरु गोविन्दसिंहके नौ और ग्यारह वर्षके बालकोंकी भाँति यदि धर्मके लिए तुम्हें कोई दीवालमें चुनवा देनेकी आज्ञा दे तो तुम बेधड़क होकर दीवालके साथ अपनी इस नाशमान देहको चूने मिट्टीकी भाँति चुने जाने देना, अपने पूर्वज निकलङ्ककी भाँति यदि तुम्हें अपने प्राणोंका त्याग करना पड़े तो बेधड़क होकर करना। किन्तु अपने धर्मको किसी तरह कलङ्कित न होने देना। सेठीजीके वचन बड़े ही मार्मिक हैं। प्रत्येक शिक्षित पिताको अपने पुत्रसे इसी प्रकारकी पवित्र आशायें रखनी चाहिए।

---

## ११ बम्बई प्रान्तिक सभाका वार्षिकोत्सव।

अबकी बार बम्बई प्रान्तिक सभाका वार्षिक अधिवेशन शत्रुजय सिद्धक्षेत्रपर धूमधामके साथ हो गया। लगभग दो ढाई हजार दर्शक उपस्थित हुए थे। अधिवेशनमें सिवा इसके कि सभापति साहब

श्रीमान् सेठ हुकमचन्दजीने शिक्षाप्रचारके लिए चार लाख रुपयेकी एक मुश्त रकम देनेका वचन दिया और महत्त्वका कार्य नहीं हुआ। स्वागतकारिणी समितिके सभापतिका और सभापतिका व्याख्यान हुआ, मामूली प्रस्ताव पेश हुए और पास किये गये, इस तरह सभाका जल्सा समाप्त हो गया। सभाएँ और उनके अधिवेशन करते हुए हमे बहुत दिन हो गये। इनसे हमारा इतना अधिक परिचय हो गया है कि अब इनमें हमें पहले जैसा आनन्द नहीं आता; अब ये काम भी एक प्रकारकी रूढ़ियेका रूप धारण करते जाते है और हमारे उत्साह आनन्द आदिमें कुछ विशेष उत्तेजना नहीं ला सकते है। इसलिए हमें अब अपने मार्गको कुछ बदलना चाहिए और अपनी प्रत्येक सभाके जल्सेको ऐसा रूप देना चाहिए जिससे वह हमारे हृदयमें कुछ नवीन उत्साह और आनन्दकी वृद्धि करे, किसी खास कार्य करनेके लिए हममें उत्तेजना उत्पन्न करे, हमारे नवयुवकोंको नये नये कर्तव्यके पथ सुझावे और आगे अपनी अपनी जिम्मेदारियोंको अधिकाधिक समझने लगें। यदि हम ऐसा न कर सकें तो कहना होगा कि समाजके सिरपर विवाह शादियों या मेला उत्सवोंके समान यह एक और नया खर्च मढ़ दिया है।

## १२ एक बालिकाकी अतिशय शोकजनक मृत्यु।

जिस तरह इस ओर कन्याविक्रयका जोरोशोर है उसी प्रकार बंगालमें कन्याके पितासे मनमाना रुपया लेकर पुत्रकी सगाई करनेका अत्यधिक प्रचार है, 'यह धन जो कन्याके पितासे लिया जाता है यौतुक कहलाता है, बिना हजारों रुपया यौतुक दिये कोई पिता अपनी कन्या अच्छे वरके साथ सम्बन्ध नहीं विवाह पाता। इससे जिन साधारण स्थितिके गृहस्थोंके एक साथ दो कन्याएँ विवाहने योग्य हो गई उनके दुःखका कुछ पारावार नहीं रहता। फाल्गुणके प्रवासीसे मालूम हुआ

है कि १४ वर्षकी लडकीका एक शिक्षित युवकके साथ विवाहसम्बन्ध स्थिर हुआ। वरका पिता जितना यौतुक चाहता था उस सबको जुटा न सकनेके कारण आखिर उसने अपने रहनेका मकान तक गिरवी रख दिया। परन्तु यह बात कोमलचित्ता बालिकासे न देखी गई। उसने सोचा, मेरे लिए मेरे मातापिता सदाके लिए दारिद्र कूपमें पड़ते हैं, यह कितने संतापका विषय है। इन्हें इस दुःख-से अवश्य मुक्त करना चाहिए। और कुछ उपाय न देखकर वह आगमें पडकर मर गई। हाय जिस भारतवर्षको यह अभिमान था कि हमारे यहाँके विवाहसम्बन्ध एक प्रकारके आध्यात्मिक व्यापर हैं, भारतवासी अपने विवाह इहलौकिक शान्ति और पारलौकिक कल्याणके लिए करते थे, उसी देशमें अब यह क्या हो रहा है। कहीं कन्यायें बेची जाती है और कहीं पुत्र बेचे जाते है। क्या जाने हमारा समाज इस योग्य कब होगा जब इन कुरीतियोंसे पिण्ड छुड़ाकर अपने गौरवकी रक्षा कर सकेगा।

---

## क्षमा-प्रार्थना।

मैं पाँच महीनेसे बीमार हूँ। खाँसी मेरा पीछा नहीं छोड़ती। कोई एक महीनेसे यहाँ इन्दौरमें इलाज करा रहा हूँ। अभी तक कुछ भी आराम नहीं हुआ। जैनहितैषी इसी कारण समयपर प्रकाशित नहीं हो सकता, सम्पादनमें भी बहुत कुछ शिथिलता होती है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि यदि कुछ समय और भी हितैषी समयपर न निकल सके, तो उसके लिए वे उदारतापूर्वक क्षमा प्रदान करेंगे।

---

# ज़रूरत।

सनातन जैन ग्रंथमालामें जो संस्कृत ग्रंथ छपते है वे हस्तलिखित कई शुद्ध प्रतियोंके विना शुद्ध नहीं छप सकते इस लिये भंडारोंसे निकाल कर जो महाशय नीचे लिखे ग्रंथोंकी एक २ प्रति (जहां तक हो शुद्ध और अति प्राचीन हो) भेजेंगे तो संस्थापर बड़ी दया होगी। ग्रंथ छप जानेपर मूल प्रति वैसीकी वैसी वापिस भेज दी जायगी। और वे चाहेंगे तो दो प्रति या अधिक प्रति मंदिरोंमें विराजमान करनेके लिये छपी हुई भेज देंगे। प्राचीन ग्रंथ वापिस आनेमें संदेह हो तो हम उसके लिये डिपाजिटमें रुपया जमा करा देंगे। ग्रंथ रजिष्टर्ड पार्सलमें गत्ते वगैरह लगा कर बड़े यत्नसे भेजना चाहिये जिससे पत्रे टूटें नहीं।

## ग्रंथोंके नाम।

१ राजवार्तिकजी मूल सस्कृत अकलक देवकृत
२ समयसारजी आत्मख्यातिटीका अमृतचद्र सूरिकृत
३ समयसार तात्पर्यय वृत्ति सहित
४ समयसारके कलशोंकी संस्कृत टीका
५ समयसारके कलशोंकी सान्वयार्थ पुरानी भाषाकी बचनिका
६ जैनेंद्र व्याकरणकी सोमदेवकृत शब्दार्णवचद्रिका (लघुवृत्ति)
७ जैनेंद्र महावृत्ति अति प्राचीन प्रति
८ प्राकृत व्याकरण भट्टारक शुभचन्द्रकृत स्वोपज्ञ टीकासह
९ औदार्यं चिंतामणि (प्राकृतव्याकरण) श्रुतसागरकृत
१० पद्मपुराण रविषेणाचार्यकृत
११ शाकटायनकी चिंतामणिटीका
१२ शाकटायनकी अमोघवृत्ति टीका ( ताडपत्री )

इन सबकी लिपी चाहे कर्णाटकी द्राविडी नागरी चाहे जैसी भेजना चाहिए।

प्रार्थी

पन्नालाल वाकलीवाल

व्यवस्थापक–भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी सस्था

बनारस सिटी।

# जैनहितैषीके नियम।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य डाकखर्च सहित १॥) पेशगी है।

२ इसके ग्राहक सालके शुरूहीसे बनाये जाते हैं, बीचमें नहीं। बीचमें ग्राहक बननेवालोंको पिछले सब अंक शुरू सालसे मंगाना पड़ेंगे, साल दीवालीसे शुरू होती है।

३. प्राप्त अंकसे पहिलेका अंक यदि न मिला होगा, तो भेज दिया जायगा। दो दो महिने बाद लिखनेवालोंके पहिलेके अंक फी अंक दो आना मूल्यसे भेजे जावेंगे।

४ बैरंग पत्र नहीं लिये जाते। उत्तरके लिये टिकट भेजना चाहिये।

५. बदलेके पत्र, समालोचनाकी पुस्तकें, लेख वगैरह "सम्पादक जैनहितैषी, पो० गिरगांव-बम्बई"के पतेसे भेजने चाहिये।

६ प्रबंध सम्बंधी सब बातोंका पत्रव्यवहार मैनेजर, जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय पो० गिरगांव, बम्बईसे करना चाहिये।

---

## चरचाशतक।

लीजिए, चरचाशतक भी बहुत ही सुगम और सुन्दर भाषा-टीका सहित छपकर तैयार हो गया। चरचाशतककी ऐसी शुद्ध और सबके समझमें आने योग्य टीका अब तक नहीं छपी। इसका मूलपाठ तो बहुत ही शुद्ध छपा है—जो कई प्रतियों-परसे सोधा गया है। प्रारंभमें कवित्तोंकी और विषयोंकी अकारादि क्रमसे सूची दे दी गई है। चार नकशे भी साथ छपे हैं। छपाई और कपड़ेकी जिल्द बहुत ही सुन्दर है। इतने पर भी मूल्य सिर्फ बारह आने।

## न्यायदीपका।

सुगम हिन्दी भाषाटीका सहित।

शायद ही कोई ऐसा जैनी होगा जिसने इस ग्रन्थका नाम न सुना हो। यह जैनन्यायका सबसे पहला सुगम और सुन्दर ग्रन्थ है। जो लोग जैनन्यायका स्वरूप जानना चाहते है, पर संस्कृत नहीं जानते उनके सुभीतेके लिए यह सुगमटीका बोलचालकी हिन्दीमें तैयार कराई गई है। विद्यार्थियोंके भी यह बड़े कामकी है। इसका मूलपाठ बहुत शुद्ध छपा है। सुबोध विद्यार्थी बिना गुरुके भी इसे पढ़ सकते हैं। मूल्य बारह आना।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई।

## हिन्दी-साहित्यकी उन्नतिकी चेष्टा ।

हिन्दीमें उच्च श्रेणीके ग्रन्थोंका अभाव देखकर हमने जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालयकी शाखाके रूपमें हिन्दीग्रंथरत्नाकर नामकी एक संस्था स्थापित की है। इसकी ओरसे हिन्दीके ही सर्वसाधारणोपयोगी अच्छे अच्छे ग्रंथ प्रकाशित किये जाते हैं। हिन्दीके नामी नामी लेखकोंने इसके लिए ग्रन्थ लिखना स्वीकार किया है। अब तक इसकी ओरसे पाँच ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं—१ स्वाधीनता, २ मिलका जीवनचरित, ३ प्रतिभा, ४ फूलोंका गुच्छा, और ५ आँखकी किरकिरी। इन सब ही ग्रन्थोंकी सरस्वती, भारतमित्र, श्रीव्येंकटेश्वरसमाचार, हिन्दी चित्रमय जगत्, नागरी प्रचारक, शिक्षा, मनोरंजन आदि प्रसिद्ध पत्रोंने मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। दो तीन ग्रन्थ और तैयार हो रहे हैं। आशा है कि हमारे जैनी भाई इन सब ग्रन्थोंको मँगाकर अपने ज्ञानकी वृद्धि करेंगे।

## प्रतिभा उपन्यास ।

मानवचरितको उदार और उन्नत बनानेवाला, आदर्श धर्मवीर और कर्मवीर बनानेवाला हिन्दीमें अपने ढँगका यह पहला ही उपन्यास है। इसकी रचना भी बड़ी ही सुन्दर प्राकृतिक और भावपूर्ण है। पक्की कपड़ेकी जिल्द सहित मूल्य सवा रुपया, सादी जिल्दका १)

### जान स्टुअर्ट मिलका जीवनचरित ।

स्वाधीनता आदि प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थोंके बनानेवाले और अपनी लेखनीकी शक्तिसे यूरोपमें एक नया युग प्रवर्तित कर देने-वाले इस विद्वान्का जीवनचरित प्रत्येक शिक्षित पुरुषको पढ़ना चाहिए। इसे जैनहितैषीके सम्पादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमीने लिखा है। मूल्य चार आने।

सरस्वती-सम्पादक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीकृत

# स्वाधीनता।

अर्थात्

## प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता जॉन स्टुअर्ट मिलकी

## लिबर्टीका हिन्दी अनुवाद

और

जैनहितैषीके सम्पादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी कृत

जा० स्टु० मिलका विस्तृत जीवनचरित।

यह हिन्दी साहित्यका अनमोलरत्न, राजनैतिक सामाजिक और मानसिक स्वाधीनताके तत्त्वोंका अचूक शिक्षक, उच्च स्वाधीन विचारोंका कोश, अकाट्य युक्तियोंका आकर, और मनुष्यसमाजके ऐहिक सुखोंका सच्चा पथप्रदर्शक ग्रन्थ प्रत्येक घर और प्रत्येक पुस्तकालयमें विराजमान होना चाहिए।

जिन सिद्धान्तोंका विवेचन इस ग्रन्थमें किया गया है इस समय उनके प्रचारकी बड़ी भारी जरूरत है। जिन्होंने इस ग्रन्थको पढ़ा है, उनका विचार है कि इसके सिद्धान्तोंको सोनेके अक्षरोंमें लिखवाकर प्रत्येक मनुष्यको अपने पास रखना चाहिए। बिना ऐसे ग्रन्थोंके प्रचारके हमारे यहांसे अन्धपरम्परा और संकीर्णताका देशनिकाला नहीं हो सकता।

ग्रन्थकी भाषा सरल वोधगम्य और सुन्दर है।

सुन्दर छपाई, मजबूत कपड़ेकी मनोहर जिल्द, मिल और द्विवेदीजीके दो चित्र। पृष्ठसंख्या ४००, मूल्य दो रुपया।

६

# आँखकी किरकिरी।

## हिन्दीमें अभिनव उपन्यास।

सुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'चोखेरवाली' नामक बंगला उपन्यासका यह हिन्दी अनुवाद है। हिन्दीमें इसकी जोड़का एक भी उपन्यास नहीं। इसमें मनुष्यके स्वाभाविक भावोंके चित्र खींचकर—उनके द्वारा मित्रकी तरह, आत्माकी तरह शिक्षा दी गई है। स्वतः हृदयको गुदगुदा कर परिणामोंको दिखा कर अच्छे विचारोंको विजय दिलानेवाली शिक्षा ही चिरस्थायिनी होती है। क्योंकि उसे ग्रहण करनेके लिए लेखक किसी तरहका आग्रह या अनुरोध नहीं करता। इस उपन्यासमें इस बातपर पूरा पूरा ध्यान रक्खा गया है। स्वाभाविक चरित्रचित्रण अगर चित्रका रेखाचित्र है तो छोटे छोटे भावोंका चित्रण उसमें तरह तरहके रंगोंका भरना है, जिन रंगोंसे वह चित्र प्रस्फुटित हो उठता है। ऐसा चित्र बनाना रवीन्द्रबाबू जैसे सुचतुर शब्दचित्रकारका ही काम है। इसमें भावोंके उत्थान-पतन और उनकी विकाशशैली वर्षामें पहाड़ोंपरसे गिरते हुए झरनोंकी तरह बहुत ही मनोहारिणी है। हृदयके स्वाभाविक उद्गार—छोटी छोटी घटनाओंका बड़ी बड़ी घटनाओंके बीच हो जाना और उनके चकित कर देनेवाले परिणाम बड़े ही स्पृहणीय हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि ऐसा उपन्यास हिन्दीमें तो क्या बड़ी बड़ी समृद्धिशालिनी भाषाओंमें भी नहीं है। छपाई, जिल्द आदि सभी लासानी। मूल्य पौने दो रुपया।

## नवजीवन विद्या।

जिनका विवाह हो चुका है अथवा जिनका विवाह होनेवाला है उन युवकोंके लिए यह बिलकुल नये ढंगकी पुस्तक हाल ही छपकर तैयार हुई है। यह अमेरिकाके सुप्रसिद्ध डाक्टर काविनके 'दी सायन्स आफ ए न्यू लाइफ' नामक ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद है। इसमें नीचे लिखे अध्याय हैं—१ विवाहके उद्देश्य और लाभ, २ किस उमरमें विवाह करना चाहिए, ३ स्वयंवर, ४ प्रेम और अनुरागकी परीक्षा, ५–६ स्त्रीपुरुषोंकी पसन्दगी, ७ सन्तानोत्पत्तिकारक अवयवोंकी बनावट, ९ वीर्यरक्षा, १० गर्भ रोकनेके उपाय, ११ ब्रह्मचर्य, १२ सन्तानकी इच्छा, १३ गर्भाधानाविधि, १४ गर्भ, १५ गर्भपर प्रभाव, १६ गर्भस्थजीवका पालनपोषण, १७ गर्भाशयके रोग, १८ प्रसवकालके रोग, इत्यादि। प्रत्येक शिक्षित पुरुष और स्त्रीको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। हम विश्वास दिलाते हैं कि इसे पढ़कर वे अपना बहुत कुछ कल्याण कर सकेंगे। पक्की जिल्द, मूल्य पौने दो रुपया।

## शेख चिल्लीकी कहानियां।

पुराने ढंगकी मनोरंजक कहानियां हाल ही छपी है। बालक युवा वृद्ध सबके पढ़ने योग्य। मूल्य ||)

## ठोक पीटकर वैद्यराज।

यह एक सभ्य हास्यपूर्ण प्रहसन है। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी ग्रन्थके आधारसे लिखा गया है। हंसते हंसते आपका पेट फूल जायगा। आजकल विना पढ़े लिखे वैद्यराज कैसे बन बैठते हैं, सो भी मालूम हो जायगा। मूल्य सिर्फ चार आना।

## स्वामी और स्त्री।

इस पुस्तकमें स्वामी और स्त्रीका कैसा व्यवहार होना चाहिए इस विषयको बड़ी सरलतासे लिखा है। अपढ़ स्त्रीके साथ शिक्षित स्वामी कैसा व्यवहार करके उसे मनोनुकूल कर सकता है और

शिक्षित स्त्री अपढ़ पति पाकर उसे कैसे मनोनुकूल कर लेती है इस विषयकी अच्छी शिक्षा दी गई है। और भी गृहस्थी संबन्धी उपदेशोंसे यह पुस्तक भरी है। मूल्य, दश आना।

## नये उपन्यास।

**विचित्रवधूरहस्य**—वंगसाहित्यसम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। रवीन्द्रबाबूके उपन्यासोंकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं। बहुत ही करुणरसपूर्ण उपन्यास है। मूल्य ॥।)

**स्वर्णलता**—बहुत ही शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। बंगाली भाषामें यह चौदह बार छपके बिक चुका है। हिन्दीमें अभी हाल ही छपा है। मूल्य १।)

**माधवीकङ्कण**—बड़ोदा राज्यके भूतपूर्व दीवान सर रमेशचन्द्रदत्तके बंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। मूल्य ॥।)

**षोड़शी**—बंगलाके सुप्रसिद्ध गल्पलेखक बाबू प्रभातकुमार मुख्योपाध्याय बैरिस्टर एँटलाकी पुस्तकका अनुवाद। इसमें छोटे छोटे १६ खण्ड-उपन्यास है।। मूल्य १)

**महाराष्ट्रजीवनप्रभात**—सर रमेशचन्द्र दत्तके बंगला ग्रन्थका नया हिन्दी अनुवाद, इंडियन प्रेसका। वीर रसपूर्ण बड़ा ही उत्तम उपन्यास है। मूल्य चौदह आने।

**राजपूतजीवनसन्ध्या**—यह भी उक्त ग्रन्थकारका ही बनाया हुआ है। इसमें राजपूतोंकी वीरता कूट कूट कर भरी है। मूल्य बारह आने।

**सुशीलाचरित**—स्त्रियोपयोगी बहुत ही सुन्दर पुस्तक। मूल्य एक रुपया।

**आश्चर्यजनक घटना या नौकाडूबी**—कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बगला उपन्यासका अतिशय भावपूर्ण अनुवाद। मूल्य १।)

समाज—बंगभाषाके प्रसिद्ध लेखक वाबू रमेशचंद्र दत्तके समाज उपन्यासका यह हिन्दी अनुवाद है। यह सामाजिक उपन्यास है। मूल्य वारह आना।

---

## अच्छी अच्छी पुस्तकें।

**आर्यललना**—सीता, सावित्री आदि २० आर्यस्त्रियोंका संक्षिप्तजीवन चरित। मू० ।)

**वालावोधिनी**—पाँच भाग। लड़कियोंको प्रारंभिक शिक्षा देनेकी उत्तम पुस्तकें। मूल्य क्रमसे =), ≡), ।), ।-), ।=)।

**आरोग्यविधान**—आरोग्य रहनेकी सरल रीतियां। मू० =)॥

**अर्थशास्त्रप्रवेशिका**—सम्पत्तिशास्त्रकी प्रारंभिक पुस्तक। मूल्य ।)

**सुखमार्ग**—शारीरिक और मानसिक सुख प्राप्त करनेके सरल उपाय। मूल्य ।)

**कालिदासकी निरंकुशता**—महाकवि कालिदासके काव्यदोषोंकी समालोचना। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकृत। मूल्य । )

**हिन्दीकोविदरत्नमाला**—हिन्दीके ४० विद्वानों और सहायकोंके चरित। मू० १॥)

**कर्तव्यशिक्षा**—लार्ड चेस्टर फील्डका पुत्रोपदेश। मूल्य १)

**रघुवंश**—महाकवि कालिदासके संस्कृत रघुवंशका सरल, सरस और भावपूर्ण हिन्दी अनुवाद। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित। मूल्य २)

**राविन्सन क्रूसो**—इस विचित्र साहसी और उद्योगी पुरुषका जीवनचरित्र अवश्य पढ़ना चाहिए। कोई २७ वर्ष तक एक निर्जनद्वीपमें रहकर इसने अपनी जीवन रक्षा कैसे की; यह पढ़कर वड़ा कौतुक होता है। मूल्य १।)

---

# पश्चिमी तर्क ।

पाश्चात्य विद्वानोंद्वारा आविष्कृत न्यायशास्त्रके विषयोंका हिन्दीमें सरल ग्रंथ । मूल्य एक रुपिया ।

## पतिव्रता ।

इस पुस्तकमें सती, सुनीति, गान्धारी, सावित्री, दमयन्ती, और शकुन्तला इन छह पतिव्रताओंका चरित लिखा गया है। इसकी भाषा वड़ी सरल और सरस है। मूल्य ।।।)

## वाला पत्रबोधिनी ।

यह पुस्तक लड़कियोंके लिये वडे कामकी है, इसमें पत्र लिखनेके नियम आदि वतानेके अतिरिक्त नमूनेके पत्र भी छपे हैं। इस पुस्तकसे लडकियोंको पत्र लिखनेका ज्ञान तो होगा, किन्तु अनेक उपयोगी शिक्षायें भी प्राप्त हो जायगी। मूल्य ।=)

## मैथिलीशरण गुप्त कृत काव्य-ग्रन्थ ।

**जयद्रथवध**—यह वीर और करुणा रसका विलक्षण काव्य है। कविता मर्मज्ञ विद्वानोंने इस काव्यकी मुक्त कंठसे प्रशंसा की है। बम्बईके सुप्रसिद्ध निर्णयसागरमें मोटे और चिकने कागजपर वडी सुन्दरतासे छपा है। मूल्य ।।)

**रंगमें भंग**—इस पुस्तकमें एक महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक घटनाका वर्णन है। कविता वडी सरस और प्रभावशालिनी है। वहुमूल्य आर्टपेपर पर छपी है। मूल्य ।)

**पद्य-प्रबन्ध**—यह गुप्तजीकी भिन्न भिन्न विषयोंपर अनेक ओजस्विनी कविताओंका अपूर्व संग्रह है। पद्यसंख्या ५०० से भी ऊपर है। मूल्य सिर्फ दश आना।

मिलनेका पता —

हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीरावाग, पो. गिरगाव-बम्बई ।

# चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें।

**चित्रमयजगत्**—यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। "इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज" के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। सालभरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००, ५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। जनवरी १९१३ से इसमें विशेष उन्नति की गई है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डा० व्य० सहित और एक सख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक सख्याका ।)॥ है।

**राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र**—राजा साहबके चित्र संसारभरमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपर-पर पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु०।

**चित्रमय जापान**—घर बैठे जापानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टि-सौंदर्य्य, रीतिरवाज, खानपान, नृत्य, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, सक्षिप्त विवरण सहित हैं। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपरपर छपी है। मूल्य एक रुपया।

**सचित्र अक्षरबोध**—छोटे २ बच्चोंको वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पडते हैं। मूल्य छह आना।

**वर्णमालाके रंगीन ताश**—ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले है। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ साथ रगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

**सचित्र अक्षरलिपि**—यह पुस्तक भी उपर्युक्त "सचित्र अक्षरबोध" के ढंगकी है। इसमें बाराखडी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने हैं।

# सनातन जैनग्रंथमाला।

इस ग्रथमालामें सब ग्रथ संस्कृत, प्राकृत, व सस्कृत टीकासहित ही छपते हैं। यह ग्रथमाला प्राचीन जैनग्रथोंका जीर्णोद्धार करके सर्वसाधारण विद्वानोंमें जैनधर्मका प्रभाव प्रगट करनेकी इच्छासे प्रगट की जाती है। इसमें सब विषयोंके ग्रथ छपेंगे। प्रथम अंकमें सटीक आप्तपरीक्षा और पत्रपरीक्षा छपी है। दूसरे अकमें समयसारनाटक दो सस्कृत टीकाओंसहित छपा है। तीसरे अकमें अकलङ्कदेवका राजवार्तिक छपा है। चौथे अकमें देवागमन्याय वसुनदिटीका और अष्टशतीटीकासहित और पुरुषार्थसिद्ध्युपायसटीक छपेगा। इसके प्रत्येक अकमें सुपररायल ८ पेजी १० फारम ८० पृष्ट रहेंगे। समयसारजी ४ अंकोंमें पूरा होगा। इनके पश्चात् राजवार्तिकजी व पद्मपुराणजी वगैरह बड़े २ ग्रथ छपेंगे। १२ अककी न्योछावर ८) रु० है। डाक खर्च जुदा है। प्रत्येक अक डाकखर्चके वी. पी. से भेजा जायगा।

यह ग्रथमाला जिनधर्मका जीर्णोद्धार करनेका कारण है। इसका ग्राहक प्रत्येक जैनीभाई व मदिरजीके सरस्वतीभडारको बनकर सब ग्रथ सग्रह करके सरक्षित करना चाहिये और धर्मात्मा दानवीरोंको इकट्ठे ग्रथ मंगाकर अन्यमती विद्वानोंको तथा पुस्तकालयोंको वितरण करना चाहिये।

## चुन्नीलालजैनग्रंथमाला।

इस ग्रथमालामें हिन्दी, बगला, मराठी और गुजराती भाषामें सब तरहके छोटे छोटे ग्रथ छपते हैं। जो महाशय एक रुपिया डिपाजिटमें रखकर अपना नाम स्थायी ग्राहकोंमें लिखा लेंगे, उनके पास इस ग्रन्थमालाके सब ग्रथ पौनी न्योछावरमें भेजे जायगे और जो महाशय इस सस्थाके सहायक हैं उनको एक एक प्रति विना मूल्य भेजी जायगी।

मिलनेका पता—पन्नालाल बाकलीवाल,
मन्त्री—भारतीय जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी सस्था,
ठि० मैदागिनी जैनमदिर बनारस सिटी।

# अध्यापकोंकी आवश्यकता।

( १ ) तिलोकचन्द जैन हाईस्कूल इन्दौरके लिए एक ऐसे अनुभवी जैन अध्यापककी आवश्यकता है जो गोमट्टसार, राजवार्तिक सर्वार्थसिद्धि पंचाध्यायी सागारधर्मामृत आदि प्राकृत, संस्कृत, धार्मिक ग्रन्थोंका अच्छा ज्ञाता हो तथा जिसने किसी पाठशालामें अध्यापकी करनेका अनुभव प्राप्त किया हो। जो सरल हिन्दी भाषामें व्याख्यान देकर तत्त्वज्ञानका रहस्य विद्यार्थियोंके हृदयमें प्रविष्ट करा सकता हो। जिसके उच्चारण व लेख भी शुद्ध हों। इसके साथ २ उन्हें अन्यधर्मों तथा पाश्चात्य तत्त्वज्ञानका भी बोध होना चाहिये। भेट योग्यतानुसार रु० ५०) से रु० ६०) मासिक तक दी जावेगी। और प्रतिवर्ष ५) रु० की वृद्धिसे १००) तक हो सकेगी.

( २ ) तिलोकचंद जैन हाईस्कूल इन्दौरके लिए एक ऐसे जैन विद्वान्की भी आवश्यकता है जो किंडर गार्टन व प्रारंकिम श्रेणियोंके छात्रोंको दिगम्बर जैन धर्मके कर्म सिद्धान्त तथा क्रियाओंका व्यावहारिक ज्ञान करा सकते हों, जो सरल शुद्ध हिन्दीमें दृष्टान्तों द्वारा विद्यार्थियोंके हृदयमें धर्मका बीजारोपण कर सकते हों, जिनका लेख व उच्चारण शुद्ध तथा व्यवहार भी छात्रोंके लिए प्रभावोत्पादक हो। भेट योग्यतानुसार रु. २५) से रु. ३५) मासिक तक दी जावेगी, और वार्षिक ५) रु० वृद्धिसे ६०) रु. तक बढ़ सकेगी।

बुधमल पाटणी

मंत्री—तिलोकचंद जैन हाईस्कूल इन्दौर.

ॐ

# जैनहितैषी।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी
लेखोंसे विभूषित

## मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी।

| | | |
|---|---|---|
| दशवाँ भाग। | पौष श्रीवीर नि० संवत् २४४० | तीसरा अंक। |

विषयसूची। पृष्ठ



पत्रव्यवहार करनेका पता—
श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव–बम्बई।

Printed by G. N. Kulkarni at his Karnatak Press, Girgaon Back Road, Bombay, for the Proprietors.



# जैनहितैषी।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१० वाँ भाग] पौष, श्री० वी० नि० सं० २४४०। [३ रा अंक।

## वसन्त और बालक।

(१)

सुन्दर सुखद वसन्त, नवल शोभा ले आया।
सबके मन उत्साह; पड़ी ज्यों उसकी छाया॥
चेतनकी क्या बात, रूख रूखे जड़ जो हैं।
वे भी होकर सरस, प्रफुल्लित, मनको मोहें॥
शान्तिपूर्ण ऋतुराज़का, अब सुराज्य संस्थित हुआ।
जड़ जाड़ेके ज़ुलमका, 'कम्प' आज प्रशमित हुआ॥

(२)

प्रथम हुआ पतझाड़, झड़पड़े पत्र पुराने।
आये पल्लव नये, नम्रताको गुण जाने॥
ऊंचे होकर रहें नम्र, सम्मानित होंगे।
इन्हें देखकर लोग, परम आनन्दित होंगे।
मंगलके हर काममें, सादर लाये जायँगे।
देखो देवस्थानमें, ललित लगाये जायँगे॥

(३)

कर्कश, कुटिल, न नम्र कर्मचारी सम सारे—
पदभ्रष्ट होगये पुराने पत्ते न्यारे॥
देखो सुन्दर स्वच्छ हृदयके कोमल पल्लव,
श्री-सम्पादन लगे वही पर करने अभिनव॥
सुप्रबंधसे दूरकर, पक्षपात अविचारको।
मानो इस ऋतुराजने, जमा लिया अधिकारको॥

(४)

प्यारे बालकवृन्द, कहो, क्या शिक्षा पाई?
नवपल्लवके सदृश बनोगे तुम सुखदाई?
ज्यों अपने सौन्दर्य और रंगीनीसे ही।
खुश करते ये सभी जगतको, सहज सनेही॥
वैसे ही तुम भी, कहो, पाकर गुणसम्पन्नता—
रूपरंगके ढंगसे, दोगे हमें प्रसन्नता?

(५)

यथासमय ज्यों मुकुलपुंज, मंजुलता धारे—
खिलकर खुलकर हुए गन्धसे सबको प्यारे,
निजविकाससे जन्मभूमिको किया सुगंधित,
वैसे ही तुम हृदय-कलीको करो सुविकासित॥
विद्या-बुद्धि-चरित्रके शुद्ध प्रशस्त सुवाससे—
श्रेष्ठ बना दो देशको तुम हार्दिक उल्लाससे॥

(६)

देखो, पावन पवन, यथा वह गन्ध मनोहर—
दिग्दिगन्तमें व्याप्त कर रहा, जाकर घर घर॥
वैसे ही सबलोग तुम्हारे गुणगण गावें।
सुयश तुम्हारा स्वयं जगत भरमें फैलावें॥
फूल, न चेष्टा कुछ करे, गुनगुन गुण गावें भ्रमर।
तुम भी गुण-संग्रह करो, होगा सुयश स्वयं अमर॥

(७)

शिक्षा यह भी ग्रहण करो पतझाड़ देखकर।
रह सकती है चीज़ कामहीकी निजपद पर॥
हुआ निकम्मा, वही गिरा, ज्यों पत्र पुराने।
कर्मी इससे बनो; 'प्रकृति'को निजगुरु जाने॥
स्वयं निकम्मे मत बनो, औरोंको उपदेश हो।
कर्मनिष्ठ उत्कर्षयुत, फिर भी अपना देश हो॥

(८)

देखो गति, कर्तव्यनिष्ठ निरपेक्ष पवनकी।
है न इसे कुछ चाह सुगन्धित इस उपवनकी॥
तो भी गुणमें फँसी सुगन्ध न इसको छोड़े।
हो इसकी सहचरी आप ही नाता जोड़े॥
यश-लक्ष्मीकी लालसा छोड़, करो कर्तव्यको।
भजती है वह आपही योग्यपुरुषको-भव्यको॥

(९)

देखो, यह सहकार, मधुरतामयी सरसता—
और श्रेष्ठताके घमंडसे भरा, दरसता॥
फूल रहा है, और सफलताकी आशा पर—
बौराया है, यथा गुणी उद्धत कोई नर॥
तुम पाकर कुछ योग्यता, या धनाढ्य होकर कभी,
बनो न ऐसे बावले; मिट्टी होंगे गुण सभी॥

(१०)

स्पष्टवादिता और मित्रका धर्म निभाता।
यह कोकिल है धन्य, इसीसे आदर पाता॥
वह रसालके पास बैठकर चिल्लाता है।
'कु—ऊ, कु—ऊ'* कह रहा, मित्रको समझाता है॥
स्वार्थी भ्रमरोंके वृथा साधुवादमें पड़ अहह!
उसकी कुछ सुनता नहीं श्रीमदान्ध जड़ आम यह॥

---

* अर्थात् यह बुरा है

( ११ )

होगा क्या परिणाम, सुनो, सब फूल झड़ेंगे।
यथासमय फल सभी भूमिपर टपक पड़ेंगे॥
सुन्दरताके साथ मित्र भी त्याग करेंगे।
जान वही जड़ रूख, न हम अनुराग करेंगे॥
इससे तुम निज मित्रकी सम्मतियोंपर कान दो।
अच्छे जो उपदेश हो, उनके ऊपर ध्यान दो॥

( १२ )

वह अशोकका वृक्ष, शोकसे आप रहित है।
और स्निग्धता-शीतलता-सौभाग्य-सहित है॥
छाया अपनी घनी सुविस्तृत करके वनमें,
करता सुखसञ्चार पथिक-आश्रितके मनमें॥
सबको, करे अशोक, यों शुभ शोभा रमणीय है।
इसका पर-उपकार यह, सचमुच अनुकरणीय है॥

( १३ )

देखो फूलोंको, विचित्रता इनमें वह है,
जो उन्नतिका मूलमन्त्र सुखका संग्रह है॥
इन फूलोंमें अगर न होती यह विचित्रता।
जो आकार-आकारमें न होती विभिन्नता॥
होते एकसमान जो रूप-रंगमें ये सभी।
तो शोभासे विश्वको मुग्ध न करसकते कभी॥

( १४ )

है विभिन्नता यद्यपि इनके रंग ढंगमें।
पर सब हैं, उदेश्य एकसे, लगे संगमें।
अपने अपने रूप-रंग-सौरभ-विलाससे।
जन्मभूमिको करें सुशोभित निज विकाससे॥
होनहार हे बालको, ये जड़ हैं, पर धन्य हैं।
जन्मभूमि-सेवा निरत, उसके भक्त अनन्य हैं॥

( १५ )

भिन्न वर्ण या भिन्नजातिके तुम भी सब हो।
किन्तु तुम्हारा एक लक्ष्य हो, एकी ढब हो॥
मुसलमान, या आर्य जैन, ईसाई, तुम हो।
स्मरण रहे, इस जन्मभूमिमें भाई तुम हो॥
रूप-रंग-आकारमें भाषामें तुम भिन्न हो।
जन्म-भूमि-सेवा करो; यह कर्तव्य अभिन्न हो॥

—रूपनारायण पाण्डेय।

---

# ग्रन्थ-परीक्षा।

## ( २ )

## कुन्दकुन्द-श्रावकाचार।

जैनियोंको भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका परिचय देनेकी जरूरत नहीं है। तत्त्वार्थसूत्रके प्रणेता श्रीमदुमास्वामी जैसे विद्वानाचार्य जिनके शिष्य थे, उन श्रीकुन्दकुन्द मुनिराजके पवित्र नामसे जैनियोका बच्चा बच्चातक परिचित है। प्रायः सभी नगर और ग्रामोंमें जैनियोकी शास्त्रसभा होती है और उस सभामें सबसे पहले जो एक बृहत् मंगलाचरण (ॐकार ) पढ़ा जाता है, उसमें 'मंगलं कुन्दकुन्दार्यः' इस पदके द्वारा आचार्य महोदयके शुभ नामका बराबर स्मरण किया जाता है। सच पूछिए तो, जैनसमाजमें, भगवान् कुन्दकुन्दस्वामी एक बड़े भारी नेता, अनुभवी विद्वान् और माननीय आचार्य होगये है। उनका अस्तित्व विक्रमकी पहली शताब्दीके लगभग माना जाता है। भगवत्कुंदकुंदाचार्यका सिक्का जैनसमाजके हृदयपर यहाँ-तक अंकित है कि बहुतसे ग्रंथकारोंने और खासकर भट्टारकोंने अपने आपको आपके ही वंशज प्रगट करनेमे अपना सौभाग्य और गौरव

समझा है। बल्कि यों कहिए कि बहुतसे लोगोंको समाजमे काम करने और अपना उद्देश्य फैलानेके लिए आपके पवित्र नामका आश्रय लेना पड़ा है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि जैनियोंमें श्रीकुन्दकुन्द कैसे प्रभावशाली महात्मा होचुके हैं। भगवत्कुदकुंदाचार्यने अपने जीवनकालमें अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंका प्रणयन किया है। और उनके ग्रंथ, जैनसमाजमें बड़ी ही पूज्यदृष्टिसे देखे जाते हैं। **समयसार, प्रवचनसार** और **पंचास्तिकाय** आदि ग्रंथ उन्हीं ग्रंथोंमेंसे हैं जिनका जैनसमाजमे सर्वत्र प्रचार है। आज इस लेखद्वारा जिस ग्रथकी परीक्षा की जाती है उसके साथ भी श्रीकुदकुदाचार्यका नाम लगा हुआ है। यद्यपि इस ग्रथका, समयसारादि ग्रथोंके समान, जैनियोंमें सर्वत्र प्रचार नहीं है तो भी यह ग्रथ जयपुर, बम्बई और महासभाके सरस्वती भंडार आदि अनेक भडारोंमें पाया जाता है। कहा जाता है कि यह ग्रंथ (श्रावकाचार) भी उन्हीं भगवत्कुदकुदाचार्यका बनाया हुआ है जो **श्रीजिनचंद्राचार्यके** शिष्य थे। और न सिर्फ कहा ही जाता है बल्कि खुद इस श्रावकाचारकी अनेक सधियोंमे यह प्रकट किया गया है कि यह ग्रथ श्रीजिनचंद्राचार्यके शिष्य कुंदकुंदस्वामीका बनाया हुआ है। साथ ही ग्रथके मगलाचरणमें '**वन्दे जिनाविधुं गुरम्**' इस पदके द्वारा ग्रथकर्त्ताने 'जिनचद्र' गुरुको नमस्कार करके और भी ज्यादह इस कथनकी रजिस्टरी कर दी है। परन्तु जिस समय इस ग्रथके साहित्यकी जॉच की जाती है उस समय ग्रंथके शब्दों और अर्थों परसे कुछ और ही मामला मालूम होता है। श्वेताम्बर

---

१. कुन्दकुन्दस्वामी जिनचन्द्राचार्यके शिष्य थे और उमास्वामीके गुरु कुन्दकुन्द थे, इस बातका अभीतक कोई दृढ प्रमाण नहीं मिला है। केवल एक पट्टावलीके आधारसे यह बात कही जाती है। —सम्पादक।

सम्प्रदायमें श्रीजिनदत्तसूरि नामके एक आचार्य विक्रमकी १३ वीं शताब्दीमें होगये हैं। उनका बनाया हुआ 'विवेक-विलास' नामका एक ग्रंथ है। सम्वत् १९५४ में यह ग्रथ अहमदाबादमें गुजराती भाषाटीकासहित छपा था। और इस समय भी बम्बई आदि स्थानोंसे प्राप्त होता है। इस 'विवेकविलास' और कुंदकुदश्रावकाचार दोनों ग्रंथोंका मिलान करनेसे माल्रम होता है कि, ये दोनों ग्रंथ वास्तवमें एक ही है और यह एकता इनमें यहाँतक पाई जाती है कि, दोनोंका विषय और विषयके प्रतिपादक श्लोक ही एक नहीं, बल्कि दोनोंकी उल्लाससंख्या, आदिम मंगलाचरण* और अन्तिम काव्य+ भी एक ही है। कहनेके लिए दोनों ग्रथोंमें सिर्फ २०--३० श्लोकोका परस्पर हेरफेर है। और यह हेरफेर भी पहले, दूसरे, तीसरे, पॉचवें और आठवें उल्लासमें ही पाया जाता है। बाकी उल्लास (नं. ४, ६, ७, ९, १०, ११, १२) बिलकुल ज्यों के त्यों एक दूसरेकी प्रतिलिपि (नकल) माल्रम होते है। प्रशस्तिको छोड़कर विवेकविलासकी पद्यसंख्या १३२१ और कुंदकुदश्रावकाचारकी १२९४ है। विवेकविलासमें अन्तिम काव्यके बाद १० पद्योंकी एक 'प्रशस्ति' लगी हुई है, जिसमें जिनदत्तसूरिकी गुरुपरम्परा आदिका वर्णन है।

---

*दोनों ग्रथोंका आदिम मंगलाचरण—

" शाश्वतानन्दरूपाय तमस्तोमैकभास्वते।
सर्वज्ञाय नमस्तस्मै कस्मैचित्परमात्मने ॥ १ ॥

(इसके सिवाय मगलाचरणके दो पद्य और हैं।)

+दोनों ग्रथोंका अन्तिम काव्य —

" स श्रेष्ठ· पुरुषाग्रणी स सुभटोत्तस प्रशसास्पदम्,
स प्राज्ञ स कला निधि स च मुनि स क्ष्मातले योगवित्।
स ज्ञानीं स गुणिव्रजस्य तिलकं जानाति य स्वा मृतिम्,
निर्मोह· समुपार्जयत्यथ पद लोकोत्तर शाश्वतम् ॥ १२–१२ ॥"

परन्तु कुंदकुंदश्रावकाचारके अन्तमें ऐसी कोई प्रशस्ति नहीं पाई जाती है। दोनों ग्रंथोंके किस किस उल्लासमें कितने और कौनकौनसे पद्य एक दूसरेसे अधिक हैं, इसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:–

| न० उल्लास | उन पद्योंके नम्बर जो कुंदकुंद श्रा में अधिक हैं। | उन पद्योंके नम्बर जो विवेक विलासमें अधिक हैं। | कैफियत ( Remarks ) |
|---|---|---|---|
| १ | ६३ से ६९ तक और ७० का पूर्वार्ध, (७½ श्लोक) | ८४ से ९८ तक (१४ श्लोक) | कुदकुद श्रा० के ये ७½ श्लोक दन्तधावन प्रकरणके हैं। यह प्रकरण दोनों ग्रंथोंमें पहलेसे शुरू हुआ और बादको भी रहा है। किस किस काष्ठकी दतोंन करनेसे क्या लाभ होता है, किस प्रकारसे दन्तधावन करना निषिद्ध है और किस वर्णके मनुष्यको कितने अंगुलकी दतोंन व्यवहारमें लानी चाहिए, यही सब इन पद्योंमें वर्णित है। विवेकविलासके ये १४ श्लोक पूजनप्रकरणके हैं। और किस समय, कैसे द्रव्योंसे किस प्रकार पूजन करना चाहिए, इत्यादि वर्णनको लिये हुए हैं। |
| २ | ३३,३४, (२ श्लोक) | ३९ (१ श्लोक) | कुदकुद श्रा० के दोनों श्लोकोंमें मूपकादिकके द्वारा किसी वस्त्रके कटेफटे होनेपर छेदाकृतिसे शुभाशुभ जाननेका कथन है। यह कथन कई श्लोक पहलेसे चल रहा है। विवेकविलासका श्लोक न. ३५ ताम्बूल प्रकरणका है जो पहलेसे चल रहा है। |
| ३ | × | ६० (१ श्लोक) | भोजनप्रकरणमें एक निमित्तसे आयु और धनका नाश मालूम करनेके सम्बधमें। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५ | × | १०, ११, ५७, १४२, १४३, १४४, १४६, १८८ से १९२ तक ( १२ श्लोक ) | पद्य नं. १०–११ में सोते समय ताम्बूलादि कई वस्तुओंके त्यागका कारण-सहित उपदेश है; ५७ वाँ पद्य पुरुषपरीक्षामें हस्तरेखा सम्बधी है। दोनों ग्रन्थोंमें इस परीक्षाके ७५ पद्य और है, १४२, १४३, १४४ में पद्मिनी आदि स्त्रियोंकी पहचान लिखी है। इनसे पूर्वके पद्यमें उनके नाम दिये हैं।१४६ में पतिप्रीति ही स्त्रियोंको कुमार्गसे रोकनेवाली है, इत्यादि-कथन है। शेष ५ पद्योंमें ऋतुकालके समय कौनसी रात्रिको गर्भ रहनेसे कैसी सतान उत्पन्न होती है, यह कथन पाँचवीं रात्रिसे १६ वीं रात्रिके सम्बधमें है। इससे पहले चार रात्रियोंका कथन दोनों ग्रथोंमें है। |
| ८ | २५३ ( १ श्लो. ) | ४९, ६०, ६१, ७४, ८५, २५५, २९३ का उत्तरार्ध ३४३ का उत्तरार्ध, ३४४ का पूर्वार्ध, ३६६ का उत्तरार्ध, ३६७ का पूर्वार्ध, ४२० के अन्तिम तीन चरण और ४२१ का पहला चरण, ( ९½ श्लोक ) | २५३ वाँ पद्य ममासक मतके प्रकरणका है। इसमें ममासक मतके देवताके निरूपण और प्रमाणोंके कथनकी प्रतिज्ञा है, अगले पद्यमें प्रमाणोंके नाम दिये हैं। और दर्शनोंके कथनमें भी देवताका वर्णन पाया जाता है। पद्य न. ४९ में अल्पवृष्टिका योग दिया है, ६० में किस किस महीनेमें मकान बनवानेसे क्या लाभ हानि होती है, ६१ में कौनसे नक्षत्रमें घर बनानेका सूत्रपात करना; ७४ में यक्षव्ययके अष्ट भेद, इससे पूर्वके पद्यमें यक्षव्यय अष्ट प्रकारका है ऐसा दोनों ग्रथोंमें सूचित किया हैं, ८५ वाँ पद्य 'अपर च' करके लिखा है, ये चारों पद्य गृहनिर्माण प्रकरणके हैं। २५५ वाँ पद्य जैनदर्शन प्रकरणका है। इसमें श्वेताम्बर साधुओंका स्वरूप दिया है। इससे अगले पद्यमें दिगम्बर साधुओंका स्वरूप है। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | | | २९३ वाँ पद्य शिवमतके प्रकरणका है। उत्तरार्धके न होनेसे साफ अधूरापन प्रगट है। क्योंकि पूर्वार्धमें नव द्रव्योंमेंसे चारके नित्यानित्यत्वका वर्णन है बाकीका वर्णन उत्तरार्धमें है। शेष पद्योंका वर्णन आगे दिया जायगा। |

ऊपरके कोष्टकसे दोनों ग्रथोंमें पद्योंकी जिस न्यूनाधिकताका बोध होता है, वहुत सभव है कि वह लेखकोंकी कृपा ही का फल हो—जिस प्रतिपरसे विवेकविलास छपाया गया है और जिस प्रतिपरसे कुदकुंद-श्रावकाचार उतारा गया है, आश्चर्य नहीं कि उनमें या उनकी पूर्व प्रतियोंमें लेखकोंकी असावधानीसे ये सब पद्य छूट गये हों—क्योंकि पद्योंकी इस न्यूनाधिकतामें कोई तात्त्विक या सैद्धान्तिक विशेषता नहीं पाई जाती। वल्कि प्रकरण और प्रसगको देखते हुए इन पद्योंके छूट जानेका ही अधिक ख़याल पैदा होता है। दोनों ग्रथोसे लेखकोंके प्रमादका भी अच्छा परिचय मिलता है। कई स्थानोंपर कुछ श्लोक आगे पीछे पाये जाते है—विवेकविलासके तीसरे उल्लासमें जो पद्य नं. १७,१८ और ६२ पर दर्ज है वे ही पद्य कुंदकुद श्रावकाचारमें क्रमशः नं. १८,१७ और ६० पर दर्ज हैं। आठवें उल्लासमें जो पद्य न. ३१७–३१८ पर लिखे है वे ही पद्य कुदकुदश्रावकाचारमें क्रमशः न. ३११–३१० पर पाये जाते है अर्थात् पहला श्लोक पीछे और पीछेका पहले लिखा गया है। कुदकुदश्रावकाचारके तीसरे उल्लासमें श्लोक न. १६ को 'उक्त च' लिखा है और ऐसा लिखना ठीक भी है; क्योंकि यह पद्य दूसरे ग्रंथका है और इससे पहला पद्य नं० १५ भी इसी अभिप्रायको लिये हुए है। परन्तु विवेकविलासमें इसे 'उक्तं च' नहीं लिखा।

इसी प्रकार कहीं कहीं पर एक ग्रंथमें एक श्लोकका जो पूर्वार्ध है वही दूसरे ग्रंथमें किसी दूसरे श्लोकका उत्तरार्ध हो गया है। और कहीं कहीं एक श्लोकके पूर्वार्धको दूसरे श्लोकके उत्तरार्धसे मिलाकर एक नवीन ही श्लोकका संगठन किया गया है। नीचेके उदाहरणोंसे इस विषयका और भी स्पष्टीकरण हो जायगाः—

(१) विवेकविलासके आठवें उल्लासमे निम्नलिखित दो पद्य दिये हैः—

"हरितालप्रभैश्चक्री नेत्रैर्नीलैरहं मदः।
रक्तैर्नृपः सितैर्ज्ञानी मधुपिङ्गैर्महाधनः ॥३४३॥
सेनाध्यक्षो गजाक्षः स्याद्दीर्घाक्षश्चिर जीवित।
विस्तीर्णाक्षो महाभोगी कामी पारावतेक्षणाः॥३४४॥"

इन दोनों पद्योंमेसे एकमें नेत्रके रंगकी अपेक्षा और दूसरेमे आकार विस्तारकी अपेक्षा कथन है। परन्तु कुंदकुंदश्रावकाचारमे पहले पद्यका पूर्वार्ध और दूसरेका उत्तरार्ध मिलाकर एक पद्य दिया है जिसका नं. ३३६ है। इससे साफ़ प्रगट है कि बाकी दोनों उत्तरार्ध और पूर्वार्ध छूट गये है।

(२) विवेकविलासके इसी आठवे उल्लासमें दो पद्य इस प्रकार हैः—

"नद्याः परतटाद्गोष्ठात्क्षीरद्रोः सलिलाशयात्।
निवर्त्तेतात्मनोऽभीष्टाननुव्रज्य प्रवासिनः ॥३६६॥
नासहायो न चाज्ञातै नैव दासैः समं तथा।
नाति मध्यं दिनेनार्धरात्रौ मार्गे बुधो व्रजेत् ॥ ३६७॥"

इन दोनों पद्योंमेंसे पहले पद्यमें यह वर्णन है कि यदि कोई अपना इष्टजन परदेशको जावे तो उसके साथ कहाँ तक जाकर लौट आना

चाहिए। और दूसरेमें यह कथन है कि मध्याह्न और अर्ध रात्रिके समय विना अपने किसी सहायकको साथ लिये, अज्ञात मनुष्यों तथा गुलामोंके साथ मार्ग नहीं चलना चाहिए । कुंदकुंदश्रावकाचारमें इन दोनों पद्योंके स्थानमें एक पद्य इस प्रकारसे दिया है:—

"नद्याः परतटाद्गोष्ठात्क्षीरद्रो सलिलाशयात् ।
नातिमध्य दिने नार्धे रात्रौ मार्गे बुधो व्रजेत् ॥२६८॥

यह पद्य बड़ा ही विलक्षण मालूम होता है। पूर्वार्धका उत्तरार्धसे कोई सम्बध नहीं मिलता, और न दोनोंको मिलाकर एक अर्थ ही निकलता है। इससे कहना होगा कि विवेकविलासमें दिये हुए दोनों उत्तरार्ध और पूर्वार्ध यहाँ छूट गये हैं और तभी यह असमंजसता प्राप्त हुई है। विवेकविलासके इसी उल्लाससंबंधी पद्य न. ४२० और ४२१ के सम्बन्धमें भी ऐसी ही गड़बड़ की गई है। पहले पद्यके पहले चरणको दूसरे पद्यके अन्तिम तीन चरणोंसे मिलाकर एक पद्य बना डाला है; बाकी पहले पद्यके तीन चरण और दूसरे पद्यका पहला चरण; ये सब छूट गये हैं। लेखकोंके प्रमादको छोड़कर, पद्योंकी इस घटा बढ़ीका कोई दूसरा विशेष कारण मालूम नहीं होता। प्रमादी लेखकों द्वारा इतने बड़े ग्रंथोंमें दस बीस पद्योंका छूट जाना तथा उलट फेर हो जाना कुछ भी बड़ी बात नहीं है। इसी लिए ऊपर यह कहा गया है कि ये दोनों ग्रंथ वास्तवमें एक ही हैं। दोनों ग्रथोंमें असली फ़र्क़ सिर्फ़ ग्रथ और ग्रथकर्ताके नामोंका है—विवेकविलासकी सधियोंमें ग्रंथका नाम 'विवेकविलास' और ग्रंथकर्ताका नाम 'जिनदत्तसूरि' लिखा है। कुंदकुंदश्रावकाचारकी सधियोंमें ग्रथका नाम 'श्रावकाचार' और ग्रथकर्ताका नाम कुछ सधियोंमें 'श्रीजिनचद्राचार्यके शिष्य कुन्दकुन्दस्वामी' और शेष

संधियोंमें केवल 'कुन्दकुन्द स्वामी' दर्ज है--इसी फ़र्क़के कारण प्रथम उल्लासके दो पद्योंमें इच्छापूर्वक परिवर्तन भी पाया जाता है। विवेकविलासमें वे दोनों पद्य इस प्रकार हैं:—

"जीववत्प्रतिभा यस्य वचोमधुरिमां चितम्।
देहं गेहं श्रियस्तं स्वं वंदे सूरिवरं गुरुम् ॥ ३ ॥
स्वस्यानस्यापि पुण्याय कुप्रवृत्तिनिवृत्तये।
श्रीविवेकविलासाख्यो ग्रंथ. प्रारभ्यते मितः ॥४॥"

इन दोनों पद्योंके स्थानमे कुदकुदश्रावकाचारमें ये पद्य हैं:—

"जीववत्प्रतिभा यस्य वचो मधुरिमांचितम्।
देहं गेहं श्रियस्तं स्वं वंदे जिनविधुं गुरुम् ॥ ३॥
स्वस्यानस्यापि पुण्याय कुप्रवृत्तिनिवृत्तये।
श्रावकाचारविन्यासग्रंथ प्रारभ्यते मित' ॥ ४ ॥"

दोनों ग्रंथोंके इन चारों पद्योंमें परस्पर ग्रथ नाम और ग्रंथकर्ताके गुरुनामका ही भेद है। समूचे दोनों ग्रथोंमें यही एक वास्तविक भेद पाया जाता है। जब इस नाममात्रके ( ग्रथनाम--ग्रथकर्ता-नामके ) भेदके सिवा और तौर पर-ये दोनों ग्रंथ एक ही है तब यह ज़रूरी है कि इन दोनोंमेसे, उभयनामकी सार्थकता लिये हुए, कोई एक ग्रंथ ही असली हो सकता है; दूसरेको अवश्य ही नकली या बनावटी कहना होगा।

अब यह सवाल पैदा होता है कि इन दोनों ग्रंथोंमेसे असली कौन है और नकली बनावटी कौनसा? दूसरे शब्दोंमें यों कहिए कि क्या पहले कुदकुदश्रावकाचार मौजूद था और उसकी सधियों तथा दो पद्योंमें नामादिकका परिवर्त्तनपूर्वक नकल करके जिनसूरि या उनके नामसे किसी दूसरे व्यक्तिने उस नकलका नाम

'विवेकविलास' रक्खा है; और इस प्रकारसे दूसरे विद्वानके इस ग्रथको अपनाया हे अथवा पहले विवेकविलास ही मौजूद था और किसी व्यक्तिने उनकी इस प्रकारसे नकल करके उसका नाम 'कुदकुद श्रावकाचार' रख छोड़ा है; और इस तरहपर अपने क्षुद्र विचारोंसे या अपने किसी गुप्त अभिप्रायकी सिद्धिके लिए इस भगवत्कुदकुदके नामसे प्रसिद्ध करना चाहा है।

यदि कुदकुदश्रावकाचारको, वास्तवमें जिनचंद्राचार्यके शिष्य श्रीकुदकुदस्वामीका बनाया हुआ माना जाय, तब यह कहना, ही होगा कि विवेकविलास उसी परसे नकल किया गया है। क्यों कि भगवत्कुंद-कुदाचार्य जिनदत्तसूरिसे एक हजार वर्षसे भी अधिक काल पहले हो चुके हैं। परन्तु ऐसा मानने और कहनेका कोई साधन नहीं है। कुदकुदश्रावकाचारमें श्रीकुदकुदस्वामी और उनके गुरुका नामोल्लेख होनेके सिवा और कहीं भी इस विषयका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता, जिससे निश्चय किया जाय कि यह ग्रथ वास्तवमें भगवत्कु-दकुदाचार्यका ही बनाया हुआ है। कुदकुदस्वामीके बाद होनेवाले किसी भी माननीय आचार्यकी कृतिमें इस श्रावकाचारका कहीं नामो-ल्लेख तक नहीं मिलता; प्रत्युत इसके विवेकविलासका उल्लेख जरूर पाया जाता है। जिनदत्तसूरिके समकालीन या उनसे कुछ ही काल बाद होने वाले वैदिकधर्मावलम्बी विद्वान् श्रीमाधवाचार्यने अपने 'सर्वदर्शनसंग्रह' नामके ग्रथमें विवेकविलासका उल्लेख किया है और उसमें बौद्धदर्शन तथा आर्हत्‌दर्शनसम्बंधी २३ श्लोक विवेक-विलास और जिदत्तसूरिके हवालेसे उद्धृत किये है। ये सब श्लोक

---

१ देखो 'सर्वदर्शनसग्रह' पृष्ठ ३८–७२ श्रीव्यकटेश्वरछापखाना बम्बई द्वारा सवत् १९६२ का छपा हुआ।

कुन्दकुन्दश्रावकाचारमें भी मौजूद हैं। इसके सिवा विवेकविलासकी एक चारसौ पॉंचसौ वर्षकी लिखी हुई प्राचीन प्रति बम्बईके जैनमदिरमें मौजूद है। * परन्तु कुंदकुदश्रावकाचारकी कोई प्राचीन प्रति नहीं मिलती। इन सब बातोंको छोड़ कर, खुद ग्रंथका साहित्य भी इस बातका साक्षी नहीं है कि यह ग्रंथ भगवत्कुंदकुंदाचार्यका बनाया हुआ है। कुंदकुंदस्वामीकी लेखनप्रणाली उनकी कथन शैली—कुछ और ही ढंगकी है; और उनके विचार कुछ और ही छटाको लिये हुए होते हैं। भगवत्कुंदकुंदके जितने ग्रथ अभी तक उपलब्ध हुए हैं वे सब प्राकृत भाषामें हैं। परन्तु इस श्रावकाचारकी भाषा सस्कृत है; समझमें नहीं आता कि जब भगवत्कदकुंदने बारीकसे बारीक, गूढसे गूढ और सुगम ग्रंथोंको भी प्राकृत भाषामें रचा है, जो उस समयके लिए उपयोगी भाषा थी तब वे एक इसी, साधारण गृहस्थोके लिए बनाये हुए, ग्रंथको संस्कृत भाषामें क्यों रचते? परन्तु इसे रहने दीजिए। जैन समाजमें आजकल जो भगवत्कुंदकुंदके निर्माण किये हुए समयसार, प्रवचनसारादि ग्रंथ प्रचलित है उनमेंसे किसी भी ग्रंथकी आदिमें कुदकुंद स्वामीने अपने गुरु 'जिनचंद्राचार्य' को नमस्काररूप मंगलाचरण नहीं किया है। परन्तु श्रावकाचारके, ऊपर उद्धृत किये हुए, तीसरे पद्यमें 'वन्दे जिनविधुं गुरुम्' इस पदके द्वारा जिनचंद्र' गुरुको नमस्कार रूप मंगलाचरण पाया जाता है। कुंदकुंदस्वामीके ग्रंथोंमें आम तौर पर एक पद्यका मंगलाचरण है। सिर्फ़ 'प्रवचनसार' में पॉंच पद्योंका मगलाचरण मिलता है। परन्तु इस पॉंच पद्योंके विशेष मगलाचरणमे भी जिनचंद्रगुरुको नमस्कार नहीं किया

---

* विवेकविलासकी इस प्राचीन प्रतिका समाचार अभी हालमें मुझे अपने एक मित्र द्वारा मालूम हुआ है।

गया है। यह विलक्षणता इसी श्रावकाचारमें पाई जाती है। रहीं मगलाचरणके भाव और भाषाकी वात, वह भी उक्त आचार्यके किसी ग्रंथसे इस श्रावकाचारकी नहीं मिलती। विवेकविलासमें भी यही पद्य है; भेद सिर्फ़ इतना है कि उसमें ' जिनविधु , के स्थानमें ' सुरिवरं ' लिखा है। जिनदत्तसूरिके गुरु ' जीवदेव , का नाम इस पद्यके चारों चरणोंके प्रथमाक्षरोंको मिलानेसे निकलता है। यथाः—

जीववत्प्रतिभा यस्य,
वचो मधुरिमाचित्तम्।
देह गेह श्रियस्त स्व,
वन्दे सूरिवरं गुरुम् ॥ ३ ॥

जी+व+दे+व=जीवदेव।

बस, इतनी ही इस पद्यमें कारीगरी ( रचनाचातुरी ) रक्खी गई है। और तौरपर इसमे कोई विशेष गौरवकी बात नहीं पाई जाती। विवेकविलासके भाषाकारने भी इस रचनाचातुरीको प्रगट किया है। इससे यह पद्य कुदकुदस्वामीका बनाया हुआ न होकर जीवदेवके शिष्य जिनदत्तसूरिका ही बनाया हुआ निश्चित होता है। अवश्य ही कुंदकुद-श्रावकाचारमें ' सूरिवर ' के स्थानमे ' जिनविधु'की बनावट की गई है। इस बनावटका निश्चय और भी अधिक दृढ होता है जब कि दोनो ग्रथोंके, उद्धृत किए हुए, पद्य न. ९ को देखा जाता है। इस पद्यमे ग्रथके नामका परिवर्त्तन है--विवेकाविलासके स्थानमें 'श्रावकाचार' बनाया गया है—वास्तवमें यदि देखा जाय तो यह ग्रथ कदापि ' श्रावकाचार ' नहीं हो सकता। श्रावककी ११ प्रतिमाओं और १२ व्रतोंका वर्णन तो दूर रहा, इस ग्रथमें उनका नाम तक भी नहीं है। भगवत्कुदकुदने स्वय षट्ट पाहुड़के अतर्गत ' चरित्र पाहुड'में ११ प्रतिमा

और १२ व्रतरूप श्रावकधर्मका वर्णन किया है। और इस कथनके अन्तकी २७ वी गाथामें, 'एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं' इस वाक्यके द्वारा इसी ( ११ प्रतिमा १२ व्रतरूप संयमाचरण)को श्रावकधर्म बतलाया है। परन्तु वे ही कुंदकुद अपने श्रावकाचारमें जो ख़ास श्रावकधर्मके ही वर्णनके लिए लिखा जाय उन ११ प्रतिमादिकका नाम तक भी न देवें, यह कभी हो नहीं सकता। इससे साफ़ प्रगट है कि यह ग्रन्थ श्रावकाचार नहीं है; बल्कि विवेकविलासके उक्त ९ वें पद्यमें 'विवेकविलासाख्यः' इस पदके स्थानमें 'श्रावकाचारविन्यास' यह पद रखकर किसीने इस ग्रंथका नाम वैसे ही श्रावकाचार रख छोड़ा है। अब पाठकोंको यह जाननेकी ज़रूर उत्कंठा होगी कि जब इस ग्रंथमें श्रावकधर्मका वर्णन नहीं है तब क्या वर्णन है? अतः इस ग्रंथमें जो कुछ वर्णित है, उसका दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है:—

"सवेरे उठनेकी प्रेरणा; स्वप्नविचार; स्वरविचार; सबेरे पुरुषोंको अपना दाहिना और स्त्रियोंको बायाँ हाथ देखना; मलमूत्र त्याग और गुदादि प्रक्षालनविधि; दन्तधावनविधि; सवेरे नाकसे पानी पीना; तेलके कुरले करना; केशोंका सँवारना; दर्पण देखना; मातापितादिककी भक्ति और उनका पालन; देहली आदिका पूजन; दक्षिण वाम स्वरसे प्रश्नोंका उत्तरविधान; सामान्य उपदेश; चंद्रबलादिकके विचार करनेकी प्रेरणा; देवमूर्तिके आकारादिका विचार; मंदिरनिर्माणविधि; भूमिपरीक्षा; काष्टपाषाणपरीक्षा; स्नानविचार; क्षौरकर्म (हजामत) विचार; वित्तादिकके अनुकूल शृंगार करनेकी प्रेरणा; नवीनवस्त्रधारणविचार; ताम्बूल भक्षणकी प्रेरणा और विधि; खेती, पशुपालन और अन्नसग्रहादिकके द्वारा धनोपार्जनका विशेष वर्णन; वणिक्व्यवहारविधि;

राज्यसेवा; राजा, मंत्री, सेनापति और सेवकका स्वरूपवर्णन; व्यवसाय महिमा; देवपूजा; दानकी प्रेरणा, भोजन कब, कैसा, कहाँ और किस प्रकार करना न करना आदि; समय मालूम करनेकी विधि, भोजनमें विषकी परीक्षा; आमदनी और खर्च आदिका विचार करना; संध्या-समय निषिद्ध कर्म; दीपकशकून; रात्रिको निषिद्ध कर्म; कैसी चार-पाई पर किस प्रकार सोना; वरके लक्षण, वधूके लक्षण; सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार शरीरके अंगोपांग तथा हस्तरेखादिकके द्वारा पुरुषपरीक्षा और स्त्रीपरीक्षाका विशेष वर्णन लगभग १०० श्लोकोंमें; विषकन्याका लक्षण; किस स्त्रीको किस दृष्टिसे देखना, त्याज्य स्त्रियाँ; स्त्रियोंके पद्मिनी, संखिनी आदि भेद; स्त्रियोंका वशीकरण; सुरतिके चिह्न; ऋतुभेदसे मैथुनभेद; स्त्रियोंसे व्यवहार; प्रेम टूटनेके कारण; पतिसे विरक्त स्त्रियोंके लक्षण; कुलस्त्रीका लक्षण और कर्त्तव्य; रज-स्वलाका व्यवहार; मैथुनविधि; वीर्यवर्धक पदार्थोंके सेवनकी प्रेरणा; गर्भमें बालकके अंगोपांग बननेका कथन, गर्भस्थित बालकके स्त्रीपु-रुष नपुंसक होनेकी पहचान; जन्ममुहूर्त्तविचार, बालकके दाँत नि-कलनेपर शुभाशुभविचार, निद्राविचार; ऋतुचर्या; वार्षिक श्राद्ध कर-नेकी प्रेरणा; देश और राज्यका विचार; उत्पातादि निमित्त विचार, वस्तुकी तेजी मंदी जाननेका विचार; ग्रहोंका योग, गति और फल विचार; गृहनिर्माणविचार; गृहसामग्री और वृक्षादिकका विचार; वि-द्यारंभके लिए नक्षत्रादि विचार; गुरुशिष्यलक्षण और उनका व्यव-हार; कौन कौन विद्यायें और कलायें सीखनी; विषलक्षण तथा सर्पा-दिकके छूनेका निषेध; सर्पादिक दुष्ट मनुष्यके विष दूर होने न होने आदिका विचार और चिकित्सा ( ८५ श्लोकोंमें ); षट्दर्शनोंका वर्णन; सविवेक वचनविचार; किस किस वस्तुको देखना और किसको

नहीं; दृष्टिविचार और नेत्रस्वरूपविचार, चलने फिरनेका विचार; नीतिका विशेषोपदेश ( ६५ श्लोकोंमें ), पापके काम और क्रोधादिके त्यागका उपदेश; धर्म करनेकी प्रेरणा; दान, शील, तप और १२ भावनाओंका संक्षिप्त कथन; पिंडस्थादिध्यानका उपदेश; ध्यानकी साधक-सामग्री; जीवात्मासंबंधी प्रश्नोत्तर, मृत्युविचार और विधिपूर्वक शरीर-त्यागकी प्रेरणा।"

यही सब इस ग्रंथकी संक्षिप्त विषय-सूची है। संक्षेपसे, इस ग्रंथमें सामान्यनीति, वैद्यक, ज्योतिष, निमित्त, शिल्प और सामुद्रकादि शास्त्रोंके कथनोंका संग्रह है। इससे पाठक खुद समझ सकते हैं कि यह ग्रंथ असलियतमें 'विवेकविलास' है या 'श्रावकाचार'। यद्यपि इस विषयसूचीसे पाठकोंको इतना अनुभव ज़रूर हो जायगा कि इस प्रकारके कथनोंको लिये हुए यह ग्रंथ भगवत्कुंदकुंदाचार्यका बनाया हुआ नहीं हो सकता। क्योंकि भगवत्कुदकुंद एक ऊँचे दर्जेके आत्मा-नुभवी साधु और संसारदेहभोगोंसे विरक्त महात्मा थे और उनके किसी भी प्रसिद्ध ग्रंथसे उनके कथनका ऐसा ढंग नहीं पाया जाता है। परन्तु फिर भी इस नाममात्र श्रावकाचारके कुछ विशेष कथ-नोंको, नमूनेके तौरपर, नीचे दिखलाकर और भी अधिक इस बातको स्पष्ट किये देता हूँ कि यह ग्रंथ भगवत्कुंदकुंदाचार्यका बनाया हुआ नहीं है:—

( १ ) भगवत्कुंदकुंदाचार्यके ग्रंथोंमे मंगलाचरणके साथ या उसके अनन्तर ही ग्रंथकी प्रतिज्ञा पाई जाती है और ग्रंथका फल तथा आशीर्वाद, यदि होता है तो वह, अन्तमें होता है। परन्तु इस ग्रंथके कथनका कुछ ढंग ही विलक्षण है। इसमें पहले तीन पद्योंमें तो मंगलाचरण किया गया; चौथे पद्यमें ग्रंथका फल, लक्ष्मीकी प्राप्ति

आदि बतलाते हुए ग्रथको आशीर्वाद दिया गया; पांचवेंमें लक्ष्मीको चंचल कहनेवालोंकी निन्दा की गई; छठे सातवेंमें लक्ष्मीकी महिमा और उसकी प्राप्तिकी प्रेरणा की गई; आठवें नौवेंमें·(इतनी दूर आकर) ग्रथकी प्रतिज्ञा और उसका नाम दिया गया है; दसवेंमें यह बतलाया है कि इस ग्रंथमें जो कहीं कहीं (?) प्रवृत्तिमार्गका वर्णन किया गया है वह भी विवेकी द्वारा आदर किया हुआ निर्वृत्तिमार्गमें जा मिलता है; ग्यारहवें बारहवेंमें फिर ग्रंथका फल और एक बृहत् आशीर्वाद दिया गया है; इसके बाद ग्रथका कथन शुरू किया है। इस प्रकारका अक्रम कथन पढनेमें बहुत ही खटकता है और वह कदापि भगवत्कुदकुंदका नहीं हो सकता। ऐसे और भी कथन इस ग्रंथमें पाये जाते है। अस्तु। इन पद्योंमेसे पॉचवॉ पद्य इस प्रकार है:—

चंचलत्वं कलंकं ये श्रियो ददति दुर्धियः।
ते मुग्धाः स्वं न जानन्ति निर्विवेकमपुण्यकम् ॥ ५ ॥

अर्थात्—जो दुर्बुद्धि लक्ष्मीपर चंचलताका दोष लगाते हैं वे मूढ़ यह नहीं जानते हैं कि हम खुद निर्विवेकी और पुण्यहीन हैं। भावार्थ, जो लक्ष्मीको चंचल बतलाते है वे दुर्बुद्धि, निर्विवेकी और पुण्यहीन हैं।

पाठकगण! क्या अध्यात्मरसके रसिक और अपने ग्रंथोंमें स्थान स्थानपर दूसरोंको शुद्धात्मस्वरूपकी प्राप्ति करनेका हार्दिक प्रयत्न करनेवाले महर्षियोंके ऐसे ही वचन होते है? कदापि नहीं। भगवत्कुदकुंद तो क्या सभी आध्यात्मिक आचार्योंने लक्ष्मीको 'चंचला' 'चपला,' 'इन्द्रजालोपमा,' 'क्षणभंगुरा,' इत्यादि विशेषणोंके साथ वर्णन किया है। नीतिकारोंने भी 'चलालक्ष्मीश्चलाः प्राणाः...' इत्यादि वाक्योंद्वारा ऐसा ही प्रतिपादन किया है और वास्तवमें लक्ष्मीका स्वरूप है भी ऐसा ही। फिर इस कहनेमें दुर्बुद्धि

और मूढ़ताकी बात ही कौनसी हुई, यह कुछ समझमें नहीं आता। यहाँपर पाठकोंके हृदयमें यह प्रश्न ज़रूर उत्पन्न होगा कि जब ऐसा है तब जिनदत्तसूरिने ही क्यों इस प्रकारका कथन किया है? इसका उत्तर सिर्फ़ इतना ही हो सकता है कि इस बातको तो जिनदत्त-सूरि ही जानें कि उन्होंने क्यों ऐसा, वर्णन किया है। परन्तु ग्रंथके अंतमें दी हुई उनकी 'प्रशस्ति'से इतना ज़रूर माळूम होता है कि उन्होंने यह ग्रंथ जावालि—नगराधिपति उदयसिंह राजाके मंत्री देवपालके पुत्र धनपालको खुश करनेके लिए बनाया था। यथाः—

"तन्मनःतोषपोषाय जिनाद्यैर्दत्तसूरिभिः।
श्रीविवेकविलासाख्यो ग्रंथोऽयं निर्ममेऽनघः॥ ९॥

शायद इस मंत्रीसुतकी प्रसन्नताके लिए ही जिनदत्तसूरिको ऐसा लिखना पड़ा हो। अन्यथा उन्होने खुद दसवें उल्लासके पद्य न० ३१ में धनादिकको अनित्य वर्णन किया है।

(२) इस ग्रंथके प्रथम उल्लासमें जिनप्रतिमा और मंदिरके निर्माणका वर्णन करते हुए लिखा है कि गर्भगृहके अर्धभागके भित्तिद्वारा पाँच भाग करके पहले भागमें यक्षादिक की; दूसरे भागमें सर्व देवियोंकी; तीसरे भागमें जिनेंद्र, सूर्य, कार्तिकेय और कृष्णकी; चौथे भागमें ब्रह्माकी और पाँचवें भागमें शिवलिंगकी प्रतिमायें स्थापन करनी चाहिये। यथाः—

"प्रासादगर्भगेहार्द्धे भित्तित पंचधा कृते।
यक्षाद्याः प्रथमे भागे देव्यः सर्वा द्वितीयके॥ १४८॥
जिनार्कस्कन्दकृष्णानां प्रतिमा स्युस्तृतीयके।
ब्रह्मा तु तुर्यभागे स्याल्लिंगमीशस्य पंचमे॥ १४९॥"

यह कथन कदापि भगवत्कुंदकुंदका नहीं हो सकता। न जैनमतका ऐसा विधान है और न प्रवृत्ति ही इसके अनुकूल पाई जाती है। श्वेता-म्बर जैनियोंके मंदिरोंमें भी यक्षादिकको छोड़कर महादेवके लिंगकी

स्थापना तथा कृष्णादिककी मूर्तियाँ देखनेमें नहीं आतीं। शायद यह कथन भी जिनदत्तसूरिने मंत्रीसुतकी प्रसन्नताके लिए, जिसे प्रशस्तिके सातवें पद्यमें सर्व धर्मोंका आधार बतलाया गया है, लिख दिया हो।

( ३ ) इस ग्रथके दूसरे उल्लासका एक पद्य इस प्रकार हैः—

" साध्वर्थे जीवरक्षायै गुरुदेवगृहादिषु।
मिथ्याकृतैरपि नृणां शपथैर्नास्ति पातकम् ॥ ६९ ॥ "

इस पद्यमें लिखा है कि साधुके वास्ते, और जीवरक्षाके लिए गुरु तथा देवके मदिरादिकमे झूठी क़सम ( शपथ ) खानेसे कोई पाप नहीं लगता। यह कथन जैनसिद्धान्तके कहाँ तक अनुकूल है यह विचारणीय है।

( ४ ) आठवें उल्लासमें ग्रथकार लिखते हैं कि बहादुरीसे, तपसे, विद्यासे या धनसे अत्यंत अकुलीन मनुष्य भी क्षणमात्रमे कुलीन हो जाता है। यथाः—

" शौर्येण वा तपोभिर्वा विद्यया वा धनेन वा।
अत्यन्तमकुलीनोऽपि कुलीनो भवति क्षणात् ॥ ३९१ ॥"

मालूम नहीं होता कि आचारादिकको छोड़कर केवल बहादुरी, विद्या या धनका कुलीनतासे क्या संबंध है और किस सिद्धान्तपर यह कथन अवलम्बित है।

( ५ ) दूसरे उल्लासमें ताम्बूलभक्षणकी प्रेरणा करते हुए लिखा है कि—

" यः स्वादयति ताम्बूलं वक्त्रभूपाकरं नरः।
तस्य दामोदरस्येव न श्रीस्त्यजति मंदिरम् ॥ ३९ ॥

अर्थात्—जो मनुष्य मुखकी शोभा बढ़ानेवाला पान चबाता है उसके घरको लक्ष्मी इस प्रकारसे नहीं छोड़ती जिस प्रकार वह श्री-

कृष्णको नहीं छोड़ती। भावार्थ, पान चवानेवाला मनुष्य कृष्णजीके समान लक्ष्मीवान् होता है।

यह कथन भी जैनमतके किसी सिद्धान्तसे सम्बंध नहीं रखता और न किसी दिगम्बर] आचार्यका ऐसा उपदेश हो सकता है। आजकल बहुतसे मनुष्य रात दिन पान चवाते रहते हैं परन्तु किसीको भी श्रीकृष्णके समान लक्ष्मीवान् होते नहीं देखा।

( ६ ) ग्यारहवें उल्लासमें ग्रंथकार लिखते हैं कि जिस प्रकार बहुतसे वर्णोंकी गौओंमें दुग्ध एक ही वर्णका होता है उसी प्रकार सर्व धर्मोंमें तत्त्व एक ही है। यथा—

**" एकवर्णं यथा दुग्धं बहुवर्णासु धेनुषु।**
**तथा धर्मस्य वैचित्र्यं तत्त्वमेकं परं पुनः ॥ ७३ ॥**

यह कथन भी जैनसिद्धान्तके विरुद्ध है। भगवत्कुंदकुंदके ग्रंथोंसे इसका कोई मेल नहीं मिलता। इसलिए यह कदापि उनका नहीं हो सकता।

( ७ ) पहले उल्लासमें एक स्थानपर लिखा है कि जिस मंदिर पर ध्वजा नहीं है उस मंदिरमें किये हुए पूजन, होम और जपादिक सब ही विलुप्त हो जाते है; अर्थात् उनका कुछ भी फल नहीं होता। यथाः—

**" प्रासादे ध्वजनिर्मुक्ते पूजाहोमजपादिकम्।**
**सर्वं विलुप्यते यस्मात्तस्मात्कार्यो ध्वजोच्छ्रयः ॥ १७१ ॥**

यह कथन बिलकुल युक्ति और आगमके विरुद्ध है। इसको मानते हुए जैनियोंको अपनी कर्मफिलासोफीको उठाकर रख देना होगा। उमास्वामिश्रावकाचारमें भी यह पद्य आया है। इस ग्रंथपर जो लेख नं० १ इससे पहले दिया गया है उसमें इस पद्यपर विशेष लिखा जा चुका है। इस लिए अब पुनः अधिक लिखनेकी ज़रूरत नहीं है।

( ८ ) ग्रंथकार महाशय एक स्थानपर लिखते हैं कि—कपट करके भी यदि निःस्पृहत्व प्रगट किया जाय तो वह फलका देनेवाला होता है। यथा.—

" नराणां कपटेनापि निःस्पृहत्वं फलप्रदम् ॥ ८-३९६ ( उत्तरार्ध )

इस कथनसे कपट और बनावटका उपदेश पाया जाता है। इतना नीचा और गिरा हुआ उपदेश भगवत्कुदकुद और उनसे घटिया दर्जेके दिगम्बर मुनि तो क्या, उत्तम श्रावकोंका भी नहीं हो सकता।

( ९ ) दशवें उल्लासमें छह प्रकारके बाह्य तपके नाम इस प्रकार लिखे हैं:—

" रसत्यागस्तनुक्लेश औनोदर्यमभोजनम् ।
लीनता वृत्तिसंक्षेपस्तपःषोढा बहिर्भवम् ॥ २५ ॥"

अर्थात्—१ रसत्याग, २ कायक्लेश, ३ औनोदर्य, ४ अनशन, ५ लीनता और ६ वृत्तिसंक्षेप ( वृत्तिपरिसंख्यान ), ये छह बाह्य तपके भेद हैं।

इन छहों भेदोंमें ' लीनता ' नामका तप श्वेताम्बर जैनियोंमें ही मान्य है। श्वेताम्बराचार्य श्रीहेमचंद्रसूरिने ' योगशास्त्र ' में भी इन्हीं छहों भेदोंका वर्णन किया है। परन्तु दिगम्बर जैनियोंमें ' लीनता ' के स्थानमें ' विविक्तशय्यासन, वर्णन किया है; जैसा कि तत्त्वार्थसूत्रके निम्नलिखित सूत्रसे प्रगट है:—

" अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागाविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥ ९-१९॥ "

इससे स्पष्ट है कि यह ग्रथ श्वेताम्बर जैनियोंका है। दिगम्बर ऋषि भगवत्कुंदकुंदका बनाया हुआ नहीं है।

(१०) आठवें उल्लासमें जिनेंद्रदेवका स्वरूप वर्णन करते हुए अठारह दोषोंके नाम इस प्रकार दिये हैं:—

१ वीर्यान्तराय, २ भोगान्तराय, ३ उपभोगान्तराय, ४ दानान्तराय, ५ लाभान्तराय, ६ निद्रा, ७ भय, ८ अज्ञान, ९ जुगुप्सा, १० हास्य, ११ रति, १२ अरति, १३ राग, १४ द्वेष, १५ अविरति, १६ काम, १७ शोक और १८ मिथ्यात्व। यथाः—

" बलभोगोपभोगानामुभयोर्दानलाभयोः।
नान्तरायस्तथा निद्रा, भीरज्ञानं जुगुप्सनम् ॥२४१॥
हासो रत्यरती रागद्वेषावविरतिःस्मरः।
शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टादशदोषा न यस्य सः ॥२४२॥"

अठारह दोषोंके ये नाम श्वेताम्बर जैनियोंद्वारा ही माने गये हैं। प्रसिद्ध श्वेताम्बर साधु आत्मारामजीने भी इन्हीं अठारह दोषोंका उल्लेख अपने 'जैनतत्त्वादर्श' नामक ग्रंथके पृष्ठ ४ पर किया है। परन्तु दिगम्बर जैन सम्प्रदायमें जो अठारह दोष माने जाते हैं और जिनका बहुतसे दिगम्बर जैनग्रंथोंमें उल्लेख है उनके नाम इस प्रकार है:—

" १ क्षुधा, २ तृषा, ३ भय, ४ द्वेष, ५ राग, ६ मोह, ७ चिन्ता, ८ जरा, ९ रोग, १० मृत्यु, ११ स्वेद, १२ खेद, १३ मद, १४ रति, १५ विस्मय, १६ जन्म, १७ निद्रा, और १८ विषाद।"

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंकी इस अष्टादशदोषोंकी नामावलीमे बहुत बड़ा अन्तर है। सिर्फ़ निद्रा, भय, रति, राग और द्वेष, ये पाँच दोष ही दोनोमें एक रूपसे पाये जाते हैं। बाकी सब दोषोंका कथन परस्पर भिन्न भिन्न है और दोनोंके भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंपर अवलम्बित है। इससे निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह ग्रंथ

श्वेतांवर सम्प्रदायका ही है। दिगम्बरोंका इससे कोई सम्बंध नहीं है। और श्वेताम्बर सम्प्रदायका भी यह कोई सिद्धान्त ग्रंथ नहीं है बल्कि मात्र विवेकविलास है, जो कि एक मंत्रीसुतकी प्रसन्नताके लिए बनाया गया था। विवेकविलासकी संधियों और उसके उपर्युल्लिखित दो पद्यों (न० ३,९) में कुछ ग्रंथनामादिकका परिवर्तन करके ऐसे किसी व्यक्तिने, जिसे इतना भी ज्ञान नहीं था कि दिगम्बर और श्वेताम्बरों द्वारा माने हुए अठारह दोषोंमें कितना भेद है, विवेकविलासका नाम 'कुन्दकुन्दश्रावकाचार' रक्खा है। और इस तरह पर इस नकली श्रावकाचारके द्वारा साक्षी आदि अपने किसी विशेष प्रयोजनको सिद्ध करनेकी चेष्टा की है। अस्तु। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिस व्यक्तिने यह परिवर्तन-कार्य किया है वह बड़ा ही धूर्त और दिगम्बर जैनसमाजका शत्रु था। परिवर्त्तनका यह कार्य कब और कहाँपर हुआ है इसका मुझे अभी-तक ठीक निश्चय नहीं हुआ। परन्तु जहाँतक मैं समझता हूँ इस परिवर्त्तनको कुछ ज्यादह समय नहीं हुआ है और इसका विधाता जयपुर नगर है।

अन्तमें जैन विद्वानोंसे मेरा सविनय निवेदन है कि यदि उनमेंसे किसीके पास कोई ऐसा प्रमाण मौजूद हो, जिससे यह ग्रंथ भगवत्कुदकुंदका बनाया हुआ सिद्ध हो सके तो वे खुशीसे बहुत शीघ्र उसे प्रकाशित कर देवें। अन्यथा उनका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि जिस भंडारमें यह ग्रंथ मौजूद हो, उस ग्रंथपर लिख दिया जाय कि 'यह ग्रंथ श्रीजिनचंद्राचार्यके शिष्य कुंदकुंदस्वामीका बनाया हुआ नहीं है। बल्कि यह ग्रंथ श्वेताम्बर जैनियोंका 'विवेकविलास' है। किसी धूर्तने ग्रंथकी संधियों और तीसरे व नौवें पद्यमें ग्रंथ नामादिक-

का परिवर्त्तन करके इसका नाम 'कुंदकुंदश्रावकाचार' रख दिया है'—साथ ही उन्हें अपने भंडारोंके दूसरे ग्रंथोंको भी जाँचना चाहिए और जांचके लिए दूसरे विद्वानोंको देना चाहिए। केवल वे हस्त-लिखित भंडारोंमें मौजूद है और उनके साथ दिगम्बराचार्योंका नाम लगा हुआ है, इतनेपरसे ही उन्हें दिगम्बर-ऋषि-प्रणीत न समझ लें। उन्हें खूब समझ लेना चाहिए कि जैन समाजमें एक ऐसा युग भी आचुका है जिसमें कषायवश प्राचीन आचार्योंकी कीर्तिको कलंकित करनेका प्रयत्न किया गया है और अब उस कीर्तिको संरक्षित रखना हमारा खास काम है। इत्यलं विज्ञेषु।

देववंद (सहारनपुर)
ता० १७-२-१४।

जुगलकिशोर मुख्तार।

---

# जैन-जीवनकी कठिनाइयाँ।

(१)

मेरा जन्म एक जैनकुलमें हुआ था, इस लिए वचपनमें मै समझता था कि जिस तरह यूरोपियन, अमेरिकन, जापानी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जातियाँ है उसी तरह जैन भी एक जाति है और उसमें मैंने जन्म लिया है। यद्यपि नव वर्षकी उमर तक मुझे इतना ज्ञान नहीं था कि मैं 'जैन' हूँ। परन्तु ज्यों ही मैं दश वर्षका हुआ त्यों ही एक जैन पंडितने मुझे नमोकार मंत्र, पंचमंगल, दो चार विनती आदि रटा दीं और तबसे मैंने यह कहना सीख लिया कि 'मै एक जैन हूँ।' उस समय मै यह नहीं जानता था कि जैन बननेमें कोई विशेष आनन्द या लाभ है। अर्थात् तब तक मेरे शरीरपर, मनपर और जीवनपर जैनका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। मेरी यह दशा

सत्रह वर्षकी उमर तक रही और जब अठारहवें वर्षमें मैं बुद्धिविषयक ग्रन्थोंका स्वतंत्र रूपसे अध्ययन करने लगा तब मेरे मनमें इस प्रकारके विचार उठने लगे कि 'जैन' किसे कहते हैं, और जैन बननेमें विशेष लाभ कौनसा है।

अब मैंने जैनधर्मके आधुनिक ग्रन्थोंका पढना प्रारंभ किया, उनपर मैं तर्कवितर्क करने लगा और जैन साधुओंके तथा विद्वानोंके सहवासमें रहकर उनके स्वभावका, वर्तावका और आचार विचारोंका अनुभव प्राप्त करने लगा। फल यह हुआ कि जैनजातिमें रहनेसे मुझे विरक्ति हो गई। जैन बने रहनेमें न तो मुझे कुछ लाभ नजर आया और न कोई आनन्द। धीरे धीरे जैनोंके लोकव्यवहारानुसार मन्दिरोंमें जाना, साधु ब्रह्मचारियोंकी सेवा शुश्रूषा करना, मेला प्रतिष्ठाओंमें जाना और पचायती कामकाजोंमें शामिल होना आदि सब काम मैंने छोड़ दिये। यद्यपि जैनकुलमें जन्म लेनेके कारण लोग मुझसे जैन कहते थे परन्तु अब मुझे स्वयं आपको 'जैन' कहलानेमें संकोच होने लगा।

(२)

दिन, महीना और वर्ष बीतने लगे। बावीसवें वर्षमें उच्चश्रेणीकी अँगरेज़ी शिक्षाने मेरी बुद्धिको तीव्र बनाई और प्रत्येक विषयकी गहरी जाँच करनेकी ओर मेरी रुचि बढ़ी। इसी समय अनायास ही मुझे जैन फिलासोफीके कई ग्रन्थ प्राप्त हो गये और उनके पढ़नेसे मेरे हृदयमें प्रेरणा उत्पन्न हुई कि जैनधर्मका ख़ास तौरसे मनन और परिशीलन करना चाहिए। नीतिके ग्रन्थ और पाश्चात्य फिलासोफीकी पुस्तकें पढते समय मुझे जो जो शकायें उत्पन्न होती थीं इन ग्रन्थोंका मनन करनेसे उनका समाधान आप ही आप होने लगा। छद्मस्थ दशासे लेकर सर्वज्ञ केवलीकी दशा तककी बीचकी शृङ्खल

परसे मैं विकाशसिद्धान्तके नियमोंका ( Law of Evolution) मुझे ज्ञान होने लगा; अर्थात् इस जन्मके आशय और कर्तव्यको मैं समझने लगा। पुनर्जन्मका सिद्धान्त, कर्मसिद्धान्त, जड़ चेतनकी शक्ति और उनकी खूबियाँ, अनेक दृष्टिबिन्दुओसे प्रत्येक विचार करनेवाली नय निक्षेपोंकी योजना, स्थूल औदारिक शरीरके सिवा तैजस कार्माण शरीरोंका अस्तित्व, मनुष्यशरीर और विश्वरूपकी समानता, स्वर्गादि सूक्ष्म अदृष्ट भवनोंका अस्तित्व और सौन्दर्य, लेश्याओ ( सूक्ष्म देहके रगों ) का स्वरूप और उनसे होनेवाले परिणाम इत्यादि बातोंने मेरे मनपर बड़ा भारी प्रभाव डालना शुरू किया। ऐसा मालूम होने लगा कि मैं अँधेरेमेंसे एकाएक प्रकाशमें आ रहा हूँ। मुझे विश्वास होने लगा कि इस नवीन प्राप्त किये हुए ज्ञानसे जीवनकी प्रत्येक घटनाका कारण ढूँढ़ा जा सकता है। मुझे अपने भीतर छुपे हुए ‘ कोई ’ का अनुभव होने लगा।

जिस ज्ञानसे मेरे नेत्र खुल गये, और जिस ज्ञानसे समझमें नहीं आनेवाली बातोंका भेद समझमें आने लगा उस ज्ञानपर मोहित हो जाना मेरे लिए बिलकुल स्वाभाविक था। अब मुझे इस बातके कहनेमें कुछ भी लज्जा या संकोच नहीं रहा कि एक दिन मै जिस ‘ जैन’ शब्दका कहना अपने लिए अच्छा नहीं समझता था वही ‘ जैन ’ शब्द अपने नामके साथ जुड़ा हुआ देख सुनकर मुझे प्रसन्नता होने लगी।

(३)

परन्तु मेरा यह आनन्द और उत्साह चिरस्थायी नहीं हुआ। ज्ञानकी नवीनतासे उत्पन्न हुआ आनन्द चिरस्थायी हो भी कहाँ सकता है। क्या थोड़ेसे सिद्धान्तोंका रहस्य समझ लेनेसे चिरस्थायी आनन्द प्राप्त हो सकता है? यदि ऐसा होता तो चाहे जो मनुष्य वर्ष दो वर्ष ज्ञान प्राप्त करके सुखी हो जाता।

दिन पर दिन जाने लगे और ज्यों ज्यों ज्ञानकी नवीनता घटने लगी त्यों त्यों मेरा आनन्द भी कम होने लगा। अब जीवन मुझे भाररूप मालूम होने लगा और मैं फिरसे जीवन और आनन्दरहित बनकर दिन बिताने लगा।

मेरी यह शुष्क अवस्था लगभग दो वर्ष तक रही। एक दिन मैं अपना दाहिना हाथ कपालपर रक्खे हुए बैठा था और अपनी इस अवस्थाका विचार कर रहा था। मैं लगभग स्थिर कर चुका था कि जैनतत्त्वज्ञानमें भी कोई वास्तविक आनन्द देनेकी शक्ति नहीं है। इतनेमें मेरी दृष्टि उस बटनपर पड़ी जो कि मेरी आँखके सामने ही था और कमीजकी दाहिनी बाँहमें लगा हुआ था। इस बटनको मैंने कोई दो वर्ष पहले खरीदा था। यह सुवर्णका नहीं था—सोनेके बटन खरीदनेकी मेरी शक्ति भी नहीं थी; परन्तु देखनेमें सुवर्ण ही जैसा मालूम होता था। किसी हल्की धातुपर सोनेका मुलम्मा चढ़ाकर यह बनाया गया था। मैंने देखा कि अब वह पहले जैसा नहीं रहा है—शोभारहित प्रकाशरहित हो गया है।

अब मैंने समझा कि केवल ऊपरका भाग प्रकाशित करनेसे काम नहीं चल सकता; केवल मस्तकको ज्ञानसे भर देनेसे चिरस्थायी आनन्द या प्रकाशकी आशा नहीं की जा सकती। 'मैं' सम्पूर्ण प्रकाशित बनूँ, मेरा हृदय और मेरा आचरण सुवर्णमय बने, तभी जीवन 'जीवनमय' और 'प्रकाशमय' हो सकता है। अब मुझे विश्वास हो गया कि सुवर्ण एक बहुमूल्य वस्तु है और वह गरीबोंके लिए नहीं है। आनन्द और जीवन जितने आकर्षक है उतने ही वे अधिक मूल्यमें मिल सकते हैं। जो दुःखको दूर करना चाहता है उसे दुःख भोगनेके लिए—परिश्रम करनेके लिए भी तैयार होना चाहिए।

यह सोचकर मैने 'जैनजीवन' बनानेका निश्चय किया। अर्थात् अब मैं जैनतत्त्वज्ञानको चारित्ररूपसे व्यवहारमें लानेके लिए तत्पर हो गया। जिन बारह व्रतोंका रहस्य समझ कर मैं जहाँ तहाँ उनकी प्रशंसा किया करता था उन्हींका पालन करनेका मैने पक्का निश्चय कर लिया।

(४)

वास्तवमें सारी कठिनाइयाँ मेरे सामने इसी समय उपस्थित हुई। बीड़ी भंग आदि पदार्थोंके सेवनका मुझे बहुत ही शौक था। परन्तु अब इनके छोड़े बिना व्रतोंका पालन करना कठिन हो गया। रात्रि-भोजन, दुष्पाच्य भोजन और तीक्ष्ण चरपरे पदार्थोंका त्याग व्रतीको करना ही चाहिए। नाटक, तमाशे, हँसी दिल्लगी, गपशप, मनोहर दृश्य, फेशन, वासनाओंको जागृत करनेवाले उपन्यास और काव्य, आकुलता बढ़ानेवाले रोजगार; इन सब बातोंका त्याग किये बिना व्रतोंका पालन नहीं हो सकता। गरज यह कि मुझे अपना सारा जीवन बदल डालना चाहिए—नवीन जीवन प्रारंभ करनेके समान 'इकना एक' से गिनना शुरू करना चाहिए, ऐसा मुझे मालूम हुआ। वास्तवमे यह काम बहुत ही कठिन था, परन्तु यह सोचकर कि गिनतीके पहाड़े घोंटे विना गणितज्ञ बनना असंभव है—मैने अपने जीवनका साहसपूर्वक फिरसे प्रारंभ किया।

जिन्हें उक्त वस्तुओंके छोड़नेकी कठिनाइयोंका अनुभव होगा वे ही मेरी इस समयकी असुविधाओंका, बीच बीचमें आनेवाली कमजोरि-योंका और कठिनाइयोंका ख़याल कर सकेंगे।

केवल मनोनिग्रह सम्बन्धी कठिनाइयोंसे ही मेरे दुःखकी पूर्ति नहीं हुई। लोगोंके साथ मिलना जुलना बन्द कर देनेके कारण मेरे सम्ब-न्धी तथा इष्टमित्र मुझे मनहूस, वक्रव्रती, स्वार्थी, अर्द्धविक्षिप्त आदि

पदवियोंसे विभूषित करने लगे। फेशनकी चुगलमेंसे निकलनेके साथ ही मेरे कुटुम्बी जन मुझसे असन्तुष्ट जान पड़े। मायाचारी कथन अथवा मुँहदेखी बातें कहना छोड देनेका और अमिश्र सत्य कहनेका परिणाम यह हुआ कि धनिक, अगुए और त्यागी नामधारी लोग मुझसे रुष्ट हो गये—वे मेरे विरुद्ध आन्दोलन करने लगे।

(५)

जैनतत्त्वज्ञानकी प्राप्ति तो मुझे शुरूसे ही आनन्द देने लगी थी परन्तु यह 'जैनजीवन' तो मेरे लिए शुरूसे ही कष्टकर और असह्य हो गया।

परन्तु, इतना ही कष्ट मेरे लिए बस न हुआ। पहले प्राप्त किये हुए ज्ञानने इस कष्टमे और भी वृद्धि की। पूर्वजन्मोंका स्मरण होनेसे, मन–वचन–कायरूप शस्त्र हिंसक कार्योंमें निरन्तर प्रवृत्त करनेसे जो आत्माका प्रत्येक प्रदेश अन्धकारसे छा रहा था उसका ख़याल आनेसे, और जीवन अनिश्चित है इसका विश्वास हो जानेसे, मैं प्रत्येक मिनिट, प्रत्येक पाई, और प्रत्येक मौका खो देनेके पहले हज़ारों तरहके विचार करने लगा। भला, ऋणी तथा भिखारीका उड़ाऊ या अपव्ययी होनेसे कैसे काम चल सकता है? मनुष्यका जीवन अनिश्चित है। उसे पूर्व कर्मोंरूपी बड़े भारी कर्जको अदा करना है। तब वह अपने हाथकी समयरूप लक्ष्मी, द्रव्यरूप लक्ष्मी, शरीरबलरूप लक्ष्मी और विचारबलरूप लक्ष्मी; इन सबका बिना विचारे उड़ाऊकी तरह कैसे ख़र्च कर सकता है? इससे मै उन विषयोंका भी गहरा पैठकर विचार करने लगा कि जिन्हें दुनिया बिलकुल मामूली समझ रही थी। सचमुच ही सच्चा ज्ञान बडी भारी जोखिमदारी उत्पन्न कर देता है। प्रत्यक कार्य करते समय मुझे पूर्व कर्मोंका, वर्तमान देशकालका और आगामी परिणामका

विचार करनेका अभ्यास पड़ गया। यह शरीर ही 'मै' नहीं हूँ, यह शरीर केवल मेरे अकलेका ही शरीर नहीं है, वर्तमान ही केवल एक समय नहीं है, भिन्न दिखनेवाले जीवोंमें और मुझमे निश्चयसे कोई भेद नहीं है; इन सब सिद्धान्तोंके स्मरणने मुझे बहुत ही मितव्ययी, साधा और सरल वननेके लिए लाचार कर दिया और जैसे बने तैसे दूसरोंकी उत्क्रान्ति उन्नति या सुखके लिए अपनी सारी शक्तियोंका व्यय करनेकी ओर तत्पर कर दिया। इससे मेरे कुटुम्बके लोग जो कि ऊपरकी श्रेणीपर नहीं चढ़े थे मुझसे बहुत ही चिढ़ गये और असन्तोष प्रगट करने लगे।

इस तरह एक ओरसे तो कुटुम्बी जन, जान पहचानवाले, जाति विरादरीके अगुए और धर्मगुरु मेरे विरुद्ध खड़े हो गये और दूसरी ओरसे जैनतत्त्वज्ञानने मेरी आँखोंके सामने जो विशाल ज्ञान और जोखिमदारियाँ उपस्थित की थीं उनके मारे मैं हैरान परेशान होने लगा। वास्तवमें मुझे इसी समय यह माल्रुम हुआ कि जैन वननेमें कितना कष्ट उठाना पड़ता है।

ऊपर वतलाई हुई कठिनाइयोंमेंसे उन कठिनाइयोंको तो शायद सब ही मान लेंगे जो कुटुम्ब तथा समाजादिकी ओरसे * सामने आती

* जो वास्तविक जैनी है उसकी दृष्टि दूसरे लोगोंकी अपेक्षा वहुत आगे पहुँचती है। उसकी नैतिक पद्धति वर्तमानका नहीं किन्तु भविष्यतका अवलम्वन करती है। उसके लिए वर्तमानका मार्ग यथेष्ट नहीं, कारण वह आज कोई ऐसी वस्तुके प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है कि जिसे दुनियाके दूसरे लोग शायद कल प्राप्त करें। एक जैन आज ऐसे आचारके चलानेका प्रयत्न करता है जो दुनियाकी समझमें कल उतरेगा और जिसका अगीकार दुनियाके लिए परसों शक्य होगा। जैनके विचार, दृष्टिविन्दु और मार्ग ज्यों ज्यों अधिकाधिक आगे वढते जाते हैं त्यों त्यों वे और लोगोंके विचारों, दृष्टिविन्दुओं और मार्गोंसे भिन्न होते जाते हैं।

हैं परन्तु इस वातको शायद ही कोई स्वीकार करे कि विशाल ज्ञान और जोखिमदारियोंके ख्यालसे भी दुःख होता है। अच्छा तो ठहरिए, मैं एक दो दृष्टान्त देकर इसके समझानेका प्रयत्न करता हूँ:—

१—परमार्थ या परोपकार करना अच्छा है, इस आशयसे व्यापारादिमें रुपया कमाकर उन्हें लोगोंके उपकारमें खर्च करना अच्छा है या इसी आशयसे ज्ञानमें गहरा प्रवेश करके—'गुप्तदृष्टा' बनकरके दुनियाको उपदेश देनेमें लग जाना और उसके घनघोर अन्धकारपूर्ण मार्गमें थोडा वहुत प्रकाश डालना अच्छा है? अर्थात् इन दो वातोंमेंसे किसके करनेसे जीवनका विशेष उपयोग हो सकता है?

२—मेरे वालक और मेरे वालबुद्धि सहधर्मी बुरे रास्ते जा रहे हैं। यदि उन्हें सीधी तरहसे सीधा रास्ता वतलाया जाता है तो वे मानते नहीं है परन्तु यदि मनमें दयाभाव रखके बाहरसे कुछ डाँटडपट की जाती है तो वे डरसे सीधे रास्ते पर चलने लगते हैं और कुछ समय तक चलते रहनेसे उनको अभ्यास हो जाता है- वह उनके लिए स्वाभाविक हो जाता है। पर उक्त कृत्रिम डाँटडपट दिखलानेसे कभी कभी मेरी आन्तरिक शान्तिमें बाधा पड़ने लगती है? (यहाँ यह मान लेना चाहिए कि कुछ न करके केवल आत्मसुधारणामें ही संतोष मान कर वैठ रहना जैनजीवनसे विरुद्ध है।)

कौनसा रास्ता अधिक सुगम है इसका नहीं, किन्तु कौनसा रास्ता अधिक हितावह है इसके निर्णय करनेका काम ज्यों ज्यों ज्ञान

---

तव दुनियाके विचारों, दृष्टिविंदुओं, मार्गों, रीति रवाजोंसे जुदा होना, दुनियाके मनुष्योंके कानून जालसे मुक्त होना, नियमोंके पुतलेके आगे सिर झुकानेसे इंकार करना यह क्या कोई दुनियाकी दृष्टिमें छोटा मोटा अपराध है? ऐसे लोगोंको कडीसे कडी सजा कैसे देना चाहिए इस कामको दुनिया अच्छी तरह जानती है।

चढ़ता जाता है त्यों त्यों अधिक कष्टदायक होता जाता है। राजा होनेसे कितनी कठिनाइयाँ झेलना पड़ती है इसका अनुभव एक भिखारीको नहीं हो सकता। अर्द्धदग्ध लेभागू लोगोंको नई नई योजनायें गढ़ना बहुत सहज माल्रम होता है; परन्तु विद्वानोंको नहीं। " जहाँ देवता पैर रखनेमें भी डरते हैं वहाँ मूर्खलोग खूब धूमधामसे चलते हैं।"

पहले ' जैन ' कहलवानेसे अप्रसन्न, पीछे थोड़ेसे जैनतत्वज्ञानके प्राप्त होनेसे प्रसन्न, फिर ' जैनजीवन ' व्यतीत करनेका इच्छुक और पीछे ' जैनजीवन ' से उत्पन्न होनेवाली बाहरी और भीतरी कठिनाइयोंसे दुःखी; इस तरह मैं क्रमक्रमसे अनेक अवस्थाओंमें प्रगति करने लगा।

इस पिछली अवस्थाका मैंने अभी अतिक्रमण नहीं किया है इसलिए इसके पीछेकी स्थितियोका स्वरूप चित्रित करके बतलाना मेरे लिए अशक्य है। अभी मैं ' जैनजीवन ' बिता रहा हूँ और इस जीवनको अधिकसे अधिक निर्दोष और अधिकसे अधिक सम्पूर्ण बनानेके लिए अधिकाधिक प्रयत्न कर रहा हूँ। यहाँ मैं यह अवश्य कहूँगा कि जैनजीवन अंगीकार करनेके बाद मुझे जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है वे अनुभवसे ऐसी माल्रम हुई हैं कि उन्नतिक्रमका आशय समझ लेने पर वे असह्य नहीं जान पड़ती हैं और उनसे विरक्ति भी नहीं होती है।

जो मनुष्य सुगम या सहज जीवन व्यतीत करता है, जिसकी दृष्टिके आगे कभी भयंकर कठिनाइयाँ और बड़ी बड़ी विघ्नबाधायें खड़ी नहीं हुई हैं, वह मनुष्य वास्तवमें देखा जाय तो ईर्षा करनेके योग्य नहीं किन्तु दया करनेके योग्य है। क्योंकि इनके विना उसकी उत्क्रान्ति नहीं हो सकती। बालकोंको सीखा हुआ पाठ बोल जानेमें

कोई कठिनाई नहीं पड़ती; परन्तु नये और कठिन पाठ सीखनेका कष्ट भोगे विना वे विद्वान् नहीं हो सकते। हम देखते हैं कि जो विद्यार्थी कठोर गुरुके पास पढ़ता है वह बहुत प्रवीण होता है। गुप्तज्ञानके प्रेमियोंको नई नई भूमिकाओंपरसे उत्तीर्ण होना चाहिए, नये नये पदचिह्न बनाना चाहिए, नवीन राज्योंको जीतनेवालों और पता लगानेवालोंको जितना साहस और सहनशीलता धारण करनी पड़ती है उससे भी अधिक साहस और सहनशीलता धारण करनी चाहिए। क्योंकि स्थूल राज्योंका पता लगानेकी अपेक्षा सूक्ष्म भवनोंके पता लगाने और प्राप्त करनेका काम बहुत ही कठिन और बहुमूल्य है। क्या आप समझते हैं कि महावीर भगवान् जैसे महात्माओंको भी यह काम सहज मालूम हुआ था? उनका तप, उनका विहार, उनका कायोत्सर्ग और उनका परीषहसहन ये सब बातें क्या सूचित करती हैं? दुःख दुःखसे ही दूर होता है। सोना महँगा ही मिलता है। कायर, डरपोक, सुखिया और सिर्फ ज्ञानकी ही बातें करनेवालोंको स्थूल अथवा सूक्ष्म राज्य प्राप्त करनेका अधिकार नहीं।

जैनधर्म यह कोई जातिविशेष नहीं, किन्तु एक जीवन है। यह कोई कोरी फिलासोफी भी नहीं है किन्तु फिलासोफीकी नीवपर खड़ा किया हुआ आध्यात्मिक जीवन है। इस जीवनको जिस तरह वैश्य प्राप्त कर सकते है उसी तरह ब्राह्मण, क्षत्री, भंगी, चमार, यूरोपियन, जापानी आदि भी प्राप्त कर सकते है। वैश्य-ब्राह्मण-क्षत्री–भंगी–चमार-यूरोपियन–जापानी आदि भेदोंका जैनजीवनमें–जैनधर्ममें आस्तित्व ही नहीं है। यह विश्वकी सर्वसाधारण सम्पत्ति है, विश्वके रहस्यकी कुंजी है और समस्त जीवोंको परस्पर जोड़नेवाली सुवर्णमय सकल है।

सचमुच ही जैनधर्म यह एक बहुत ही अच्छा आश्रयस्थल है—बहुत ही कीर्तिमय आश्रयस्थल है; परन्तु वह सुखचैन और मौज शौकको उत्तेजित करनेवाला स्थल नहीं है। जैनधर्ममें अगणित जीवोंको शान्ति मिली है; सचमुच ही उसमें महती शान्ति विद्यमान है परन्तु डरपोक और युद्धोंसे डरनेवाले लोग जिस शान्तिकी खोजमें रहते है वह शान्ति जैनधर्म नहीं दे सकता। जैनधर्ममें अगणित जीवोंको प्रकाश मिला है। सचमुच ही उसमें सम्पूर्ण प्रकाश समाया हुआ है; परन्तु वह ऐसा प्रकाश नहीं है जो अपने ग्राहकोंके लिए मार्ग साफ़ बना दे। वह ऐसा प्रकाश है कि जो सामने फैलेहुए घनघोर अन्धकारके आरपार जानेकी शक्ति देता है और स्वीकृत मार्गकी कठिनाइयोको स्पष्ट करके बतला देता है। और जैनधर्म ऐसा है यह बड़े भारी सौभाग्यका विषय है। *

---

# ऐतिहासिक लेखोंका परिचय।

इस समय भारतवर्षके प्राचीन इतिहासके अन्वेषणके लिए शिलालेख इत्यादि ही मुख्य आधार है इस बात पर सर्व विद्वान् सहमत है। ये लेख केवल पर्वत–शिलाओं पर ही नहीं हैं, किन्तु अन्य कई पदार्थोंपर भी मिले हैं। ये लेख (१) किन किन पदार्थोंपर हैं? (२) किन भाषाओंमें हैं? (३) इनमें क्या लिखा है और (४) इनका इतिहासमें इतना मान क्यों है? इन प्रश्नोंके उत्तरको ऐतिहासिक अन्वेषणकी वर्णमाला कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। संक्षेपमें इन प्रश्नोंके उत्तर ये है:—

---

* जैनहितेच्छुमें प्रकाशित गुजराती लेखका अनुवाद।

## ( १ ) पदार्थ ।

पदार्थ जिन पर ये लेख मिले हैं अनेक प्रकारके हैं; लेकिन वे तीन विभागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं,—पापाण, धातु और मिट्टी। सबसे अधिक और महत्त्वपूर्ण लेख पाषाणशिलाओं पर मिले हैं।

**पापाण**—पाषाणके लेख अधिकाश पर्वतोंकी शिलाओं अर्थात् चट्टानों पर हैं। इनमें महाराजा अशोकके १४ लेख अधिक प्रसिद्ध है। ये लेख गिरनार ( जूनागढ़ ), कालसी (देहरादून ), और धौली ( उड़ीसा ) इत्यादि स्थानोंमें है। इन १४ लेखोंके अतिरिक्त महाराजा अशोकके और भी बहुतसे लेख हैं। अन्य राजाओंके लेख भी बहुत हैं जिनमेंसे मुख्य मुख्य कॉगड़ा और बीजापुरके ज़िलोंमें और मैसूर राज्यमें हैं। इनसे अनेक राजाओंकी राज्यसबधी बहुतसी बातोंका पता चलता है। जैनशिलालेख भी बहुतसे स्थानोंपर है। मैसूर राज्यान्तर्गत श्रवणबेलगुलमें चद्रगिरि और विन्ध्यगिरि पर्वतोंपर जैनियोंके अनेक महत्त्वसूचक शिलालेख सस्कृत और कनड़ी भाषाओंमें है जिनसे जैन-इतिहाससंबंधी बहुतसी बातोंका पता लगता है।* शत्रुंजय (पालीताना) तीर्थपर श्रीआदीश्वरभगवानके मदिर पर और आबू और गिरनारके अनेक मंदिरोंमें भी कई जैन शिलालेख है। थोड़े ही वर्ष हुए उडीसा ( कलिंग ) में भी कई लेख मिले हैं जिनसे प्रकट होता है कि कलिंगाधिपति राजा खारवेल जैनधर्मानुयायी ही थे। यदि ये शिलालेख न

---

* इन लेखोंका विस्तारपूर्वक विवरण 'जैनसिद्धान्तभास्करकी १ और २-३ किरणों, 'ऐपीग्राफिका कर्नाटिका' और 'ईन्स्क्रपशन्स् ऐट श्रवणबेलगोला में दिया है। इन लेखोंके संबधमें बहुतसी ऐतिहासिक और मनोज्ञ बातें हैं परतु वे इस लेखकी सीमासे बाहर है अतएव उनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जासकता।

मिलते तो कौन जानता कि जैनधर्मका प्रचार किसी समय उड़ीसामें भी बहुलतासे था।*

चट्टानोंके अतिरिक्त कुछ लेख शिल्पकारों द्वारा बनाये हुए स्तंभोंपर मिलते है। ये स्तंभ आकारमें गोल हैं और बहुत ऊँचे हैं। इनमें महाराजा अशोकके स्तंभ अधिक प्रसिद्ध हैं। ये स्तंभ इलाहाबाद, दिल्ली, जिला चंपारन (बंगाल) इत्यादि स्थानोंमें हैं। इनके लेखोंसे महाराजा अशोककी शासन और धर्मसंबधी बहुतसी बातोंका परिचय मिलता है। अन्य स्तंभ मैसूर, बीजापूर,- मालवा आदि स्थानोंमें हैं।

बहुतसे लेख इमारतोंपर भी मिले हैं। डाक्टर फुहररको मथुरामें कंकाली टीलेके खोदे जानेपर बहुतसी इमारतें और लेख मिले। इनसे कई जैनमंदिरों और स्तभोंका परिचय मिला है। जिनपर कई अत्यंत प्राचीन जैनधर्मसंबंधी लेख हैं † बौद्धोंके भी बहुतसे स्तूप हैं। ये स्तूप ईंट और पत्थर दोनोंहीके बने हुए है। इनमे भूपाल राज्यमें सांचीके स्तूप सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यहाँका सबसे बड़ा स्तूप ३५ गज लम्बे व्यासके वृत्तपर बना है, और १९ गज ऊँचा है। ये स्तूप बहुधा उलटे हुए कटोरेके आकारके बने हुए हैं। इलाहाबादके दक्षिणमें बरहुतमें भी एक विशाल स्तूप है। इन स्तूपोंके बाहरी भाग और फाटकोंपर अनेक लेख, चित्र और मूर्तियाँ हैं जिनसे बहुतसे प्राचीन राजाओंका पता लगा है। इन स्तूपोंके भीतर भी कुछ कम ऐतिहा-

---

* जैनशिलालेखोंका विस्तृत वृत्तात 'जैनहितैषी' के श्रावण वीर स० २४३८ के अकमें या 'जैनशासन' के वी० स० २४३८ के खास अक (पृष्ठ १२९-१३२) में देखो।

† ये लेख अब लखनऊके अजायबघरमें रक्खे हुए हैं।

सिक सामग्री नहीं है। इनके भीतर पत्थरके सदूक मिले हैं जिसमें बौद्धोंके मृत शरीरोंकी भस्म रक्खी जाती थी। इन संदूकोंके ऊपर बहुतसे लेख खुदे हुए मिले हैं जिनसे बौद्धधर्मके प्रचारके विषयमें बहुतसी बातोंका परिचय मिला है। कहीं कहीं यह लेख संदूकोंके ढकनोंके भीतरकी ओर केवल स्याहीसे ही लिखे मिले है। अभी हालमें तक्षशिला ( पजाब ) के खोदे जानेपर जो अन्वेषण हुए है वे डाक्टर मारशलने ४ सितम्बर १९१३ ई० को शिमलामें पंजाब ऐतिहासिक सोसाइटीको पढ़कर सुनाए थे। तक्षशिलाके टीलोंमें बहुतसे स्तूप और इमारतें मिली हैं जिनसे राजा कनिष्कके समयके सम्बधमे कुछ नवीन बातें हाथ लगी हैं। इन इमारतोंमेंसे कई सिक्के भी मिले हैं जिनसे भारतवर्षके इतिहासकी बहुतसी बातोंका परिचय मिला है। मुसलमानोंकी तो ऐसी बहुतसी इमारतें आगरा, देहली, सीकरी, बीजापुर इत्यादि स्थानोंमें विद्यमान है जिनपर ऐतिहासिक लेख हैं।

विहार प्रांतके अंतर्गत गया जिलेमें बहुतसी गुफायें हैं जिन पर महाराजा अशोकके लेख मिले हैं। ऐसी गुफायें और भी कई स्थानोंमे हैं। कहीं इन गुफाओंमें चैत्यालय भी बने हैं। जूनागढ़ और उडीसा-की गुफाओंमें कई जैनलेख और प्रतिमायें मिली हैं जो जैनधर्मके लिए बड़े महत्त्वकी है।

वैदिक, जैन और बौद्धधर्मसंबधी प्रतिमाओंपर सैकड़ों ही लेख मिलते हैं। श्रवणबेलगुलमें विंध्यगिरि पर्वतपर श्रीबाहुबलि स्वामीकी एक विशाल मूर्ति हैं जिस पर एक बहुत प्राचीन शिलालेख है।

धातु—अब तक सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, लोहा इत्यादि अनेक धातुओंपर लेख मिल चुके हैं। इनमेंसे अधिकाश लेख ताम्रपत्रोंपर हैं। इन पत्रोंकी लम्बाई चौडाई २ इंचसे लेकर २॥ फुट तक पाई

गई है। किसी किसी पत्र पर केवल एक ओर लेख है और किसी किसी पर दोनो ओर। कोई कोई लेख ऐसे भी हैं जो कई पत्रोंमें समाप्त हुए हैं। जब राजा अपनी प्रजामेसे किसी पुरुषको ग्राम इत्यादि दान देते थे तो यह बात इन ताम्रपत्रोंपर लिख कर उस व्यक्तिविशेषको दे दी जाती थी, अतएव यह ताम्रपत्र अधिकतर उन लोगोंके यहाँ मिले हैं जिनके पूर्वजोंको दान दिये गये थे। कहीं कहीं ये खेतो और दीवारोंमें भी गढ़े हुए मिले हैं जो कि बहुत काल व्यतीत होनेपर अपने अधिकारियोंके हाथसे निकल गये अथवा खो गये हैं। इन पत्रोंपर दानी राजाओंकी छापें अंकित हैं। ये छापें अलग भी मिली हैं।

सोने, चॉदीके पत्रों और मुद्राओंपर लेख बहुधा स्तूपोंमें ही मिले है। पीतलकी प्रतिमाओंपर बहुत लेख मिले हैं। सोने, चाँदी, इत्यादिके सिक्के भी बहुत मिले हैं जिनके लेख इतिहासके लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

जिला देहलीमें महरौनी ग्राममें एक लोहेका स्तंभ है। इसकी ऊँचाई ९ गज है। इस पर एक छोटीसी कविता अंकित है जो महाराजा चंद्रगुप्त द्वितीयको समर्पित है।

मिट्टी—बहुधा मिट्टीके घट और अन्य प्रकारके बरतन जिन पर स्याहीसे लिखे हुए या खुदे हुए लेख है, मिले हैं। पश्चिमोत्तर सरहद्दी प्रातमें मिले हुए कुछ बरतनोंके लेख यह सूचित करते हैं कि वे बौद्ध साधुओको दानमें अर्पण किये गये थे।

मिट्टीके बने हुए और अग्निमे पकाये हुए बहुतसे चौरस टुकड़े मिले हैं जिन पर बौद्धोंके लेख और चित्र अंकित हैं।

ईंटों पर भी लेख मिले हैं। ये लेख ईंटोंके साथ साँचेमें ढाले हुए हैं। ये वहुधा पंजाव और सयुक्त प्रांतमें मिले हैं। जिला गाज़ीपुरमें वहुतसी ईंटें मिली हैं जिन पर राजा कुमारगुप्तके लेख हैं। कुछ ईंटों पर वौद्धधर्मसंवधी सूत्र भी लिखे मिले है।

## २ भापा।

ये लेख अनेक भाषाओं और लिपियोंमें है। अधिकतर लेख सस्कृत प्राकृत और पाली भापाओंमें हैं; अन्य भाषाओंमें कनड़ी, तैलग, मलयालम, मराठी इत्यादि मुख्य हैं। मुसलमान बादशाहोंके लेख फारसी और अरवी भाषाओंमें है। अधिकाश लेख गद्यमें है; कुछ पद्यमें तथा मिश्रित गद्य और पद्यमें भी हैं। कई प्रकारकी प्राकृत भापाओं और पाली भाषाके पढ़ने और समझनेमें पहले वड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। कुछ लेखोंके पढ़नेमें तो अनेक विद्वानोंको वरसों तक सरतोड़ परिश्रम करना पड़ा है। किन्तु वड़े परिश्रमके पश्चात् अव इन भाषाओंके कोश और व्याकरण बन गये हैं। अतएव वर्तमान और आगामी पुरातत्त्वान्वेषियोंके लिए वड़ी सुगमता हो गई है। इन लेखों पर संवत् भी भिन्न भिन्न मिलते है; कलियुग, विक्रम, मालव, शक, गुप्त, चेदी, लक्ष्मणसेन, नेवाड़ इत्यादि कई सवत् हैं। वहुतसे लेखोंमें मास और तिथियाँ तक लिखी है। कई लेखोंमें सवत्के अंक तो दिये है किन्तु यह नहीं लिखा कि वे कौनसे संवत् हैं। ऐसे लेखोंके कालनिर्णय करनेमें वडा कष्ट उठाना पड़ता है। लेखोंके सवतोंके विपयमें भी विद्वानोंने कई पुस्तकें लिख डाली हैं जिनमे कालनिर्णयमें वहुत सहायता मिलती है। ( अपूर्ण )

मोतीलाल जैन, आगरा।

---

# चार लाखके दानसे कौनसी संस्था खुलनी चाहिए?

इन्दौरके दानवीर सेठ हुकुमचन्दजीने अभी हाल जो चार लाख रुपया दान करनेकी घोषणा की है, उससे कौनसी और कैसी संस्था खोली जानी चाहिए इस विषयमें सर्व साधारणसे सम्मतियाँ माँगी गई है और उन सब सम्मतियोंपर विचार करनेका विश्वास दिलाया गया है। मेरी समझमें सेठजीकी यह उदारता उस उदारतासे भी बहुत बड़ी है जो उन्होंने चार लाख रुपयाका महान् दान करनेमें प्रकट की है। जैन समाजके लिए इससे अधिक सौभाग्यका विषय और क्या हो सकता है कि उसके अगुए और धनीमानी लोग उसकी सम्मतिसे उसका हित करनेके लिए तत्पर हो रहे है।

मैं समाजका एक अल्पज्ञ सेवक हूँ, अतएव मै भी इस विषयमे अपने विचार प्रगट कर देना उचित समझता हूँ। आशा है कि उदार-हृदय सेठजी इनपर एक दृष्टि डालजानेकी कृपा करेगे।

जहाँतक मैं जानता हूँ सेठजी अपने इस द्रव्यसे इन्दौरमें ही संस्था खोलना चाहते हैं। इन्दौरसे बाहर किसी दूसरे स्थानमें संस्था खोल-नेकी उनकी इच्छा नहीं है। अतएव इन्दौरकी परिस्थितियों सुविधाओं और आवश्यकताओंका खयाल रखके मै इस विषयपर विचार करूँगा।

यहाँ मैं यह कह देनेमें कुछ हानि नहीं समझता कि बहुतसे सज्जन जो इस रकमसे एक 'जैनकालेज' खोलनेकी सम्मति दे रहे हैं वह ठीक नहीं है। कारण एक तो, एक कालेजके लिए यह रकम बहुत ही कम है दूसरे इन्दौरमें दो कालेज हैं उनमें ही विद्यार्थियोंकी संख्या यथेष्टसे बहुत कम है। तब इस तीसरे कालेजको यथेष्ट विद्यार्थी मिलना कठिन है। यदि बाहरके जैन विद्यार्थियोंके आकर रहनेकी आशा की जाय,

तो वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि उन-प्रान्तोंसे यह स्थान बहुत ही दूर है जहाँ कि कालेजोंमें पढ़नेवाले जैन विद्यार्थियोंकी बहुलता है। जैन कालेजके योग्य स्थान देहली है, वहाँ चाहे जितने विद्यार्थी मिल सकते हैं परन्तु सेठजी अपनी संस्था इन्दौरमें ही स्थापित करना चाहते हैं। तीसरे जैन समाजमें अभीतक ऐसे स्वार्थत्यागी और सुयोग्य वर्कर या काम करनेवाले नहीं दिखलाई देते जो एक अच्छे कालेजको चला सकें। यदि इन्दौरके सेठ तिलोकचन्द हाईस्कूलको ही हम लोग अच्छी तरह चला सके और उसे एक आदर्श शिक्षा संस्था बना सके तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उक्त हाईस्कूल ही थोडे समयमें जैन कालेजका रूप धारण कर लेगा, अर्थात् इस हाईस्कूलको ही जैन कालेजका प्रारभ समझना चाहिए। उदारहृदय सेठ कल्याणमलजी इसमें और भी कई लाख रुपया लगा देनेकी पवित्र इच्छा रखते हैं। ऐसी अवस्थामें उक्त चार लाखकी रकमसे हमें कालेजके सिवा और ही किसी आवश्यक संस्थाके खुलनेकी प्रतीक्षा करना चाहिए। जैनसमाजमें अभी बीसों उपयोगी संस्थाओंकी आवश्यकता है जिनमेंसे यहाँ मैं दो चार सस्थाओंका उल्लेख किये देता हूँः—

१ **जैनशिक्षाप्रचारकभण्डार**—इस समय एक ऐसी संस्थाकी बड़ी भारी जरूरत है कि जिससे चाहे जहाँ चाहे जिस प्रकारकी शिक्षा पानेवाले जैन विद्यार्थियोंको मासिक वृत्तियाँ, एक मुश्त पारितोषक या सहायतायें दी जा सकें। ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँपर जैनविद्यार्थी रहते हैं और सरकारी या गैरसरकारी शिक्षासस्थायें भी हैं। परन्तु द्रव्याभावसे स्कूलोंकी फीस न दे सकनेके कारण वे पढ़ नहीं सकते हैं। बहुतसे विद्यार्थी उच्चश्रेणीकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए देशके ही अन्य स्थानोंमें या विदेशोंमें जाना चाहते हैं परन्तु सहायताके विना

नहीं जा सकते । बहुतसे स्थान ऐसे है जहाँ पढ़नेवाले विद्यार्थी तो बहुत हैं परन्तु स्थानीय जैनी अपनी निर्धनताके कारण वहाँ कोई पाठशाला स्थापित नहीं कर सकते हैं, अथवा थोड़ी बहुत बाहरी सहायताकी आशा रखते हैं। बहुतसी पाठशालाये ऐसी है जहाँ पठनपाठनका प्रबन्ध तो अच्छा है परन्तु विद्यार्थियोंको स्कालर्शिप देकर रखनेकी गुंजाइश नहीं है । इस भंडारसे इस तरहके अनेक विद्यार्थियोका और पाठशालाओंको सहायता दी जा सकेगी और सारे देशके जैनी इससे लाभ उठा सकेंगे । चार लाख रुपयोंका मासिक व्याज लगभग १५००) के होगा । यदि पाँच रुपया महीनाके हिसाबसे एक एक विद्यार्थीको सहायता दी जायगी, तो इस भंडारकी ओरसे कोई चार सौ पाँच सौ लड़के निरन्तर विद्या प्राप्त करते रहेंगे । अन्य संस्थाओंके समान प्रबन्धादिकी झंझटें भी इसमें बहुत कम है; एक आफिस और दो तीन कर्मचारी रखनेसे ही इसका अच्छा प्रबन्ध हो सकता है । पुण्यके समान यश भी इससे बहुत होगा ।

कुछ वृत्तियाँ ऐसी भी इस भंडारकी ओरसे रक्खी जावें जो देश भरके हाईस्कूलों, कालेजों और संस्कृत पाठशालाओंमें पढ़नेवाले जैन अजैन विद्यार्थियोंको संस्थाकी ओरसे नियत किये हुए ग्रन्थोंकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर दी जावें। ऐसा करनेसे सैकडो जैन और अजैन विद्यार्थी जैनसाहित्यसे परिचित होने लगेंगे। इसका प्रबन्ध शिक्षाखातेके अधिकारियोंसे लिखापढ़ी करनेपर अच्छी तरहसे हो सकता है।

एक फंड इस संस्थामें इस तरहका भी खोला जावे जिससे उच्च श्रेणीकी विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले किन्तु शिक्षा व्ययका

प्रबन्ध न कर सकनेवाले विद्यार्थियोंको बिना सूदके उधार रुपया दिया जावे और इस बातकी लिखा पढी कर ली जाय कि जीविकाकी व्यवस्था हो जानेपर वे धीरे धीरे अपना कर्ज अदा कर देंगे। इससे सैकड़ों विद्यार्थियोंके लिए विद्याप्राप्तिका मार्ग सुगम हो जायगा। बम्बईमें इस प्रकारकी एक सस्था बहुत दिनोंसे चल रही है। आजतक उसके द्वारा सैकडों विद्यार्थी अपनी ज्ञानपिपासाको शान्त कर सके हैं।

२. **औद्योगिक विद्यालय**—देश दिनपर दिन दरिद्र होता जा रहा है। लोग बिना उद्योगके मारे मारे फिरते हैं। शिक्षितोंको औद्योगिक शिक्षा नहीं मिलती, इससे वे नोकरीके सिवा ओर कोई भी उद्योग नहीं कर सकते है और नौकरियाँ देशमें थोड़ी हैं। शिक्षा इस प्रकारकी दी जाती है कि शिक्षितोंसे परिश्रम नहीं हो सकता—शिक्षागृहोंमें वे सुकुमार बना दिये जाते हैं। इससे एक ऐसे विद्यालयकी बड़ी भारी जरूरत है जिसमें पढ़ना लिखना सिखलानेके साथ साथ तरह तरहके उद्योग सिखलाये जावें और मानसिक परिश्रमके साथ साथ शारीरिक श्रम भी विद्यार्थियोंसे लिया जावे। जैनसमाजमें भी उद्योगहीनता बेतरह बढ़ रही है। देहातोंमें जाइए, वहाँ आपको हजारों जैनी ऐसे मिलेंगे जो उद्योगके बिना उदरपोषण करनेके लिए दूसरोंका मुँह ताकते हैं। इस विद्यालयसे हजारों निरुद्योगी सीख जावेंगे और थोडे ही समयमें स्वाधीन जीविका प्राप्त करनेमें समर्थ हो जावेंगे। यह विद्यालय अमेरिकाके कर्मवीर डा० टी. बुकर वाशिंगटनके आदर्शविद्यालयके ढँगका खोलना चाहिए। आगेके अंकमें वाशिंगटनका जीवनचरित दिया गया है उससे उनकी सस्थाका परिचय मिल सकता है। इस विद्यालयमें और सब प्रकारकी शिक्षाओंके साथ साथ धार्मिक शिक्षाका भी अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि इस प्रकारकी संस्थाको चलानेकी योग्यता रखनेवाले कहाँसे आवेंगे? जैनियोंमें सचमुच ही ऐसे वर्कर मिलना कठिन है; परन्तु अजैनोंमें प्रयत्न करने पर बहुतसे लोग मिल सकते हैं और वे बड़ी सफलतासे ऐसी संस्थाओंको चला सकते हैं। एक औद्योगिक सस्थाके लिए यह आवश्यक भी नहीं है कि जैनी ही कार्यकर्त्ता मिलें। धर्मशिक्षाका प्रबन्ध जैनियोंके द्वारा हो ही जायगा।

२ **सरस्वतीसदन**—इस संस्थाके चार विभाग किये जावें। १ लगभग एक लाख रुपयेके ख़र्चसे जैनधर्मके संस्कृत, प्राकृत, मागधी और हिन्दी भाषाके तमाम हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थ संग्रह किये जावें और उनसे एक अद्वितीय जैनपुस्तकालय स्थापित किया जाय। ५० हज़ार रुपये ख़र्च करके सर्वसाधारणोपयोगी सब तरहके विशेष करके सस्कृत, हिन्दी और अँगरेजीके ग्रन्थ संग्रह किये जावें और इन्दौरमें जो एक अच्छे सार्वजनिक पुस्तकालयकी कमी है उसकी पूर्ति की जाय। २५ हजारकी पूँजीसे एक अच्छा जैनप्रेस खोला जाय और ७५ हजार की पूँजीसे संस्कृत हिन्दी अँगरेज़ी आदि भाषाओंमें जैनग्रन्थ छपवा छपवाकर लागतके दामों-पर, अर्धमूल्यमें अथवा बिना मूल्य वितरण किये जावें। ऐसा प्रयत्न किया जाय जिससे थोड़े ही समयमे प्रत्येक स्थानके मन्दिरमें एक एक अच्छा पुस्तकालय बन जावे। इसी विभागसे अच्छे लेखकोंको पारि-तोषिक आदि देनेकी भी व्यवस्था की जाय। लगभग ५० हजारकी पूँजीसे एक अच्छे साप्ताहिक पत्रके और एक उच्चश्रेणीके मासिक पत्रके निकालनेकी व्यवस्था की जाय। ये दोनों पत्र इस ढंगके निकाले जावें कि जिससे जैन और अजैन सब ही लाभ उठा सकें। शेष रकमसे इमारतो और कर्मचारियोंकी व्यवस्था की जाय।

**४ संस्कृतविद्यालय**—हमारे यहाँ संस्कृतकी कई पाठशालायें हैं परन्तु धनाभावसे उनकी अवस्था जैसी चाहिए वैसी सन्तोषजनक नहीं है। इसलिए अबतक एक आदर्श संस्कृतविद्यालयकी आवश्यकता बनी ही है। यह ठीक है कि संस्कृत भाषा अब कोई जीवित भाषा नहीं है। ससारकी सर्वश्रेष्ठ भाषा होनेपर भी उसमें हमारी नवीन जीवन समस्याओंके हल करनेकी शक्ति नहीं है; तो भी हमें यह न भूल जाना चाहिए कि वह हमारे पूर्वजोंके यशोराशिकी स्मृति है और हमारी प्राचीन सभ्यताकी उज्ज्वल निदर्शन है। और धर्मतत्त्वोंका मर्म समझना तो उसकी शरण लिये विना अव भी एक तरहसे बहुत कठिन है। अतएव अँगरेज़ी और हिन्दीके विद्यालयोंके समान इस पवित्र देववाणीकी रक्षाके लिए सस्कृतविद्यालयकी भी बडी भारी आवश्यकता है। चार लाखकी रकमसे संस्कृतविद्यालय बहुत अच्छी तरहसे चल सकता है। संस्कृत विद्यार्थियोंके विषयमें अकसर यह शिकायत सुनी जाती है कि वे पण्डिताई करनेके सिवा और किसीके कामके नहीं होते है; परन्तु प्रयत्न करनेसे यह शिकायत दूर हो सकती है। संस्कृतके साथ साथ उन्हें अच्छी हिन्दी, काम चलाऊ ॲंगरेजी और किसी एक उद्योगकी शिक्षा देनेका भी प्रबन्ध करना चाहिए। ऐसा करनेसे वे जीविकाके लिए चिन्तित न रहेगे। शिक्षा-पद्धतिका ज्ञान भी उन्हें अच्छी तरहसे करा देना चाहिए जिससे यदि वे अध्यापकी करना चाहे तो योग्यतापूर्वक कर सकें। संस्कृतके अध्यापकोंकी आवश्यकता भी हमारे यहाँ कम नहीं है।

अन्तमें मैं यह निवेदन कर देना भी आवश्यक समझा हूँ कि इस बडी रकमसे केवल एक ही अच्छी संस्था स्थापित करना चाहिए— इसका एकसे अधिक जुदाजुदा कामोंमें बाँटना उन लोगोंके लिए

वहुत कष्टप्रद होगा, जो इससे वड़ी वड़ी आशाये कर रहे है । क्योंकि छोटी छोटी संस्थाओंके खोलनेवाले तो वहुतसे है-छोटी सस्थायें है भी अनेक; परन्तु एकमुश्त इतनी बड़ी रकम देकर एक विशाल संस्था खोलनेवाले एक सेठजी ही है । उन्हें अपनी इस विशेषतापर ध्यान रखना चाहिए ।

---

# कविवर बनारसीदासजी पर एक भ्रममूलक आक्षेप ।

" सुनी कहैं देखी कहैं, कलपित कहै वनाय ।
दुराराध ये जगतजन, इन सौं कछु न वसाय ॥ "

—अर्धकथानक ।

नाटकसमयसार, वनारसीविलास आदि आध्यात्मिक ग्रन्थोंके कर्त्ता कविवर वनारसीदासजीसे प्रायः सारा जैनसमाज परिचित है । जैन-धर्मके भाषासाहित्यमें उनकी जोड़का शायद ही और कोई कवि हुआ हो । उनकी रचना वहुत ही उच्चश्रेणीकी है । वे केवल अनुवादक, या टीकाकार नहीं थे—किन्तु धर्मके मर्मको समझकर और उसे अपने रगमें रंगकर अपेन शब्दोंमें प्रगट करनेवाले महात्मा थे । वे स्वयं अपना ५५ वर्षका जीवनचरित ( अर्धकथानक ) लिखकर भाषासा-हित्यमें एक अपूर्व कार्य कर गये है और बतला गये हैं कि भारत-वासी विद्वान् भी इतिहास और जीवनचरितका महत्त्व समझते थे और उनका लिखना भी जानते थे । उनके ग्रन्थोंका जैनधर्मके तीनों सप्रदायोमें एकसा आदर है; सब ही उन्हे भक्तिभावपूर्वक पढ़कर आत्म-कल्याण करते हैं ।

उनके इस आदर और भक्तिभावको क्षीण करनेके लिए सहयोगी जैनशासनने अपने २४ दिसम्बरके अङ्कमें एक लेख प्रकाशित किया है और उसमें बनारसीदासजीको एक नवीन मतका प्रवर्तक और निन्हव ठहराया है। हम इस लेखके द्वारा यह बतला देना चाहते हैं कि बनारसीदासजी जैसा कि सहयोगी समझता है शुष्क अध्यात्मी निन्हव या किसी पाखण्डमतके प्रवर्तक नहीं थे।

बनारसीदासजीके समयमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके एक विद्वान् हो गये हैं। उनका नाम था श्रीमेघविजयजी उपाध्याय। उपाध्यायजीने 'युक्ति-प्रबोध' नामका एक प्राकृत नाटक और उसकी स्वोपज्ञसंस्कृत टीका लिखी है। यह नाटक बनारसीदासजीके मतका खण्डन करनेके लिए लिखा गया था जैसा कि नाटककी इस प्रारंभिक गाथासे मालूम होता है:—

पणमिय वीरं जिणंदं दुम्मयमयमयाविमद्दणमयंदं।
वोच्छं सुयणहियत्थं वाणारसीयस्समयभेयं॥

अर्थात् दुर्मतरूपी मृगके नाश करनेके लिए मृगेन्द्रके समान महावीर भगवानको नमस्कार करके, मैं सुजनोंके हितार्थ वानारसीदासके मतका भेद बतलाता हूँ।

उक्त नाटकके अभी तक हमें दर्शन नहीं हुए परन्तु जैनशासनके कथनानुसार उसमे लिखा है कि "बनारसीदास आगरेके रहनेवाले श्रीमाली वैश्य थे और लघु खरतरगच्छके अनुयायी थे। श्वेताम्बर सम्प्रदायके माने हुए तत्त्वोंपर उनकी श्रद्धा थी। उनकी धर्मदृढता रुचि और श्रद्धा प्रशंसनीय थी। समय समयपर वे प्रोषध उपवासादि तप और उपधान वगैरह किया करते थे; सामायिक प्रतिक्रमण आदि नित्यनियमोंकी भी वे पालना करते थे। इसके साथ ही वे साधु और

गृहस्थोंके आचार विचारोंके भी अच्छे ज्ञाता थे। यद्यपि इस समय उन्हें अध्यात्मसे अतिशय प्रेम था, परन्तु वह नाममात्रका अध्यात्म नहीं सच्चा अध्यात्म था। इसके बाद दर्शनमोहके उदयसे उनके मनमें इस प्रकारकी भावना हुई कि 'साधु और श्रावकोंके आचारमें अनेक अतीचार लगते हैं। शास्त्रोंमें साधुओं और श्रावकोंका जैसा आचार वर्णन किया गया है वैसा न साधु पालते हैं और न श्रावक उसके अनुसार चलते हैं। अर्थात् आजकल न तो साधुपना है और न श्रावकपना; और जो द्रव्यक्रियायें की जाती हैं उनसे कोई फल निकलनेवाला नहीं। अतएव केवल अध्यात्ममे लीन होना ही सर्वश्रेष्ठ है।' जब उनके मनमें इस प्रकारका विश्वास हुआ तब उसे उन्होंने अपने गुरुपर भी प्रकट कर दिया। गुरु महाराजने बहुत ही अच्छी युक्तियाँ देकर समझाया कि व्यवहारकी बड़ी भारी आवश्यकता है। केवलीभगवान् भी व्यवहारका त्याग नहीं करते हैं। दिगम्बराचार्योंने भी समयसारमूल तथा उसकी टीकामें और दूसरे अनेक ग्रन्थोंमे व्यवहारकी पुष्टि की है। परन्तु दर्शनमोहके उदयसे उन्हें कोई भी बात न रुची। बाद उन्होंने पं० रूपचंद, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुँवरपाल और धर्मदासके साथ मिलकर श्वेताम्बर दिगम्बरका खिचड़ा-रूप एक जुदा मत चलाया और हिन्दीमें जो समयसारनाटक बनाया उसमें भी मूल समयसारके अतिरिक्त बहुतसी नई बातें घुसेड़ दीं। श्वेताम्बरसम्प्रदाय छोड़के जब वे दिगम्बरसम्प्रदायमे गये तब वहाँ भी उन्हें गुरुकी पींछी कमण्डलुपर शंका हुई और वे दिगम्बर पुराणोंको अप्रमाणिक मानने लगे। बनारसीदासजीने अपना मत वि० १६८० मे प्रगट किया।"

युक्तिप्रबोधमें यह भी लिखा है कि "जब बनारसीदासजीकी मृत्यु हो गई, तब उन्होंने अपनी गादीपर कुँवरपालको बैठाया। क्योंकि उनके

कोई सन्तान नहीं थी। उनके पीछेकी परम्परा उन्हें गुरुके तुल्य गिनती थी और उनकी परम्पराके माननेवाले समय समयपर 'श्वेताम्बर, दिगम्बर सम्प्रदायमें ऐसा कहा है,' इस प्रकार न कहकर यह कहते थे कि 'गुरुमहाराजने ऐसा कहा है'।"

सहयोगी जैनशासनके उक्त आक्षेपका सारा दारोमदार इसी युक्तिप्रबोध नाटक पर है। नाटकके उक्त कथनपर विश्वास करके ही उसने बनारसीदासजीपर कई इलजाम लगा डाले है, पढ़ने या विचारनेका उसने कष्ट नहीं उठाया। यदि वह ऐसा करता तो एक महात्माकी कीर्तिको कलङ्कित करनेका अपराध उससे न होता।

युक्तिप्रबोधके कर्ताका पहला आक्षेप यह है कि बनारसीदासजी केवल अध्यात्ममें लीन हो गये थे और द्रव्य क्रियाओंको उन्होंने कष्टक्रियायें समझकर छोड दी थीं। अर्थात् व्यवहारको छोडकर वे केवल निश्चयावलम्बी होगये थे और इस तरह निश्चय और व्यवहार दोनोंकी साधना करनेवाले जैनधर्मको उन्होंने केवल निश्चयसाधक बनानेका प्रयत्न किया था। इतना ही नहीं, उन्होंने अपना एक नया ही मत प्रचलित किया था। परन्तु बनारसीदासजीके ग्रंथोंसे इस बातका प्रमाण नहीं मिलता। यद्यपि अध्यात्म या निश्चयकी ओर उनका अधिक झुकाव माल्म होता है परन्तु व्यवहारको भी उन्होंने छोड न दिया था; उनके ग्रन्थोंमें वीसों स्थल ऐसे है जिनमें व्यवहारकी पुष्टि मिलती है। यथाः—

**जो विन ज्ञान क्रिया अवगाहै, जो विन क्रिया मोक्षपद चाहै।**
**जो विन मोक्ष कहै मैं सुखिया, सो अजान मूढ़नमें मुखिया॥**

—नाटकसमयसार।

इसमें जो बिना क्रियाके मोक्ष चाहता है उसे मूर्ख बतलाकर क्या बनारसीदासजीने यह स्पष्ट सिद्ध नहीं कर दिया कि मैं क्रिया या व्यव-

हारको आवश्यक समझता हूँ ? नीचे लिखे पद्योंसे भी मालूम होता है कि वे व्यवहारके उच्छेदक नहीं थे:—

जाकी भगति प्रभावसों, कीनौ ग्रन्थ निवाहि ।
जिन प्रतिमा जिन सारिखी, नमैं बनारसि ताहि ॥७३॥

जौलौं ग्यानकौ उदोत तौलौं नाहिं बंध होत,
बरतै मिथ्यात तब नानाबंध होहि है ।
ऐसौ भेद सुनिकै लग्यौ तू विषय भोगनिसौं,
जोगनिसौं उद्दिमकी रीतितै बिछोहि है ॥
सुनि भैया संत तू कहै मैं समकितवंत,
यह तौ एकंत परमेसरकी दोहि है ।
विषयसौं विमुख होहि अनुभवदसा अरोहि,
मोखसुख टोहि तोहि ऐसी मति सोहि है ॥९-१६

बंध बढ़ावैं अंध है, ते आलसी अजान ।
मुकति हेतु करनी करैं, ते नर उद्यमवान ॥

विवहार दिष्टिसौं विलोकति बंध्यौ सौ दीसै,
निहचै निहारत न बांध्यौ इन किन ही ।
एक पच्छ बंध्यौ एक पच्छसौं अबंध सदा,
दोऊ पच्छ अपने अनादि धरे इन ही ॥
कोऊ कहै समल विमलरूप कहै कोऊ,
चिदानंद तैसौई बखान्यौ जैसौ जिन ही ।
बंध्यौ मानै खुल्यौ मानै दुहूं नैको भेद जानै,
सोई ग्यानवंत जीव तत्त्व पायौ तिन ही ॥४-२४

इसके सिवाय बनारसीविलास और नाटकसमयसार इन दोनों ही ग्रन्थोंमें जिनपूजा, प्रतिमापूजा, बाईस अभक्ष्य, ग्यारह प्रतिमा, तप, दान, नौधाभक्ति, आदिका सुन्दर वर्णन है और ये सब विषय व्यवहार-

में ही गर्भित है। जो केवल निश्चयका पोषक है वह इन विषयोंका वर्णन नहीं कर सकता।

वनारसीदाजीने कोई नवीन मत चलाया था, उनके ग्रन्थोंसे इनका कोई प्रमाण नहीं मिलता। युक्तिप्रबोधके कर्त्ताको छोड़कर और कोई इस बातका कहनेवाला नहीं है। आगरेमें वनारसीदासजीके पीछे दिगम्बर-सम्प्रदायके अनेक ग्रन्थकर्त्ता हुए हैं जिन्होंने उनका नाम बड़े आदरसे लिया है। यदि उनका कोई नवीन मत होता और उसकी परम्परा कॅवरपाल आदिसे चली होती, तो यह कभी सभव न था कि दूसरे ग्रन्थकर्त्ता जो कि अपने सम्प्रदायके कट्टर श्रद्धालु थे, वनारसीदासजीकी प्रशसा करते। बनारसीदासजीके ग्रन्थोका प्रचार भी अधिकतासे न होता। उनका नाटकसमयसार तो ऐसा अपूर्व ग्रन्थ है कि उसे जैनोंके तीनों सम्प्रदाय ही नहीं अजैन लोग भी पढकर अपना कल्याण करते हैं।

दूसरा आक्षेप यह है कि 'वनारसीदास न तो दिगम्बरी थे और न श्वेताम्बरी–उन्होने दोनोंका एक खिचडा वनाया था।' यह ठीक है कि वनारसीदास श्रीमाल वैश्य थे, श्वेताम्बर सम्प्रदायमें उनका जन्म हुआ था और खरतरगच्छीय यति भानुचन्द्र उनके गुरु थे; परन्तु पीछे दिगम्बर सम्प्रदायके ही अनुयायी हो गये थे ऐसा उनकी रचनासे स्पष्ट मालूम होता है। साधुवन्दना नामक कवितामे उन्होंने मुनियोंके अट्ठाईस मूल गुणोंका वर्णन किया है और उसमे मुनिके लिए वस्त्रोंका त्याग करना या दिगम्बर रहना आवश्यक वतलाया है। इसके सिवा उत्तम कुलके श्रावकके यहॉ भोजन करना उचित वतलाया है। ये दोनों वातें श्वेताम्बर सम्प्रदायसे विरुद्ध हैं–

> लोकलाजविगलित भयहीन, विषयवासनारहित अदीन।
> नगन दिगम्बर मुद्राधार, सो मुनिराज जगत सुखकार ॥२८

उत्तमकुल श्रावक संचार, तासु गेह प्रासुक आहार।
भुंजै दोष छियालिस टाल, सो मुनि वंदौं सुरत सँभाल॥ ११

एक जगह वस्त्रसहित प्रतिमाका निषेध करते हुए लिखा है:—

पटभूषन पहरे रहै प्रतिमा जो कोई।
सो गृहस्थ मायामयी, मुनिराज न होई॥ २
जाके तिय संगत नहीं, नहिं वसन न भूषन।
सो छवि है सरवग्यकी, निर्मल निर्दूपन॥ ३

—वनारसीविलास, पृष्ठ २३४

और भी, नाटकसमयसारमें अठारह दोषोंका वर्णन करते हुए केवलीको भूखप्यासरहित बतलाया है, मक्खनको अभक्ष्य बतलाया है और स्थविरकल्प जिनकल्पके वर्णनमें लिखा है—; 'थविरकलपी जिन-कलपी दुविध मुनि, दोऊ बनवासी दोऊ नगन रहत है।" ये सब बातें श्वेताम्बर मानतासे विरुद्ध हैं।

किसी नये या मिश्रित मतके स्थापित करनेको वे बुरा समझते थे, ऐसे पुरुषको उन्होंने स्वयं ही विपरीत मिथ्यादृष्टि कहा है:—

ग्रंथ उकत पथ उथपि जो, थापै कुमत सुकीय।
सुजस हेत गुरुता गहै, सो विपरीती जीय॥

—समयसार।

तीसरा आक्षेप यह है कि उन्होंने दिगम्बर पुराणोंकी मानता छोड़ दी थी। परन्तु युक्तिप्रबोधके लेखको छोड़कर इसका भी कोई प्रमाण नहीं है। विरुद्ध इसके दो चार रचनाओंसे यही सिद्ध होता है कि वे पुराणोको मानते थे। वनारसीविलासमें 'त्रेसठ शलाका पुरुषोंकी नामावली,' 'नवसेना विधान,' वेदनिर्णय पंचासिका,' आदि कवितायें पुराणोंके अनुसार ही लिखी गई हैं। एक कवितामे जुगलियोके धर्मका भी वर्णन किया गया है।

चौथा आक्षेप यह है कि 'उन्होंने हिन्दीमें नाटकसमयसार बनाया और उसमें मूल समयसारके अतिरिक्त बहुतसी बातें घुसेड़ दीं।' इससे युक्तिप्रबोधके कर्त्ताका यदि यह आशय हो कि उन्होंने मूलसमयसारके अभिप्रायोंसे विरुद्ध बातें अपने भाषासमयसारमें मिला दीं, तो इसके लिए कोई प्रमाण नहीं। जिन लोगोंने इस ग्रन्थका और आत्मख्याति टीकाका स्वाध्याय किया है वे मुक्तकण्ठसे इस बातको स्वीकार करेंगे कि बनारसीदासजीको मूल ग्रंथकर्ताके और संस्कृतटीकाके भावोंकी रक्षा करनेमें और उनके अभिप्रायोंको स्पष्ट करनेमें भाषाटीकाओंके जितने रचयिता हुए हैं उन सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। और यदि नवीन बातें घुसेड़ देनेका यह मतलब हो कि उन्होंने मूलग्रन्थका शब्दशः अनुवाद नहीं किया है, बहुतसी बातें अपनी ओरसे कही हैं तो इसमें बनारसीदासजीकी निन्दा नहीं उलटी प्रशंसा है। सच्चा टीकाकार या भाषान्तरकार वही है जो मूल ग्रन्थके विचारोंको आत्मसात करके उन्हें अपने शब्दोंमें अपने ढगसे एक निराले ही रूपमें प्रकाशित करे; न कि विभक्त्यर्थ या शब्दार्थ मात्र लिखकर छुट्टी पा ले। समयसारके अन्तिम भागमें मूल प्राकृत ग्रन्थसे दो तीन बातें अधिक हैं और उनका उल्लेख भाषामें स्पष्ट शब्दोंमे कर दिया गया है—एक तो अमृतचन्द्रसूरिने अपनी टीकामें जो स्याद्वादका स्वरूप और साधकसाध्यद्वार नामके दो अध्याय अधिक लिखे हैं और जिनकी मूलग्रन्थको समझनेके लिए बहुत ही आवश्यकता है, दूसरे गुणस्थानोंका स्वरूप। इसके लिए बनारसीदासजी कहते हैं:—

> परम तत्त्व परचै इसमाहीं, गुनथानककी रचना नाहीं।
> यामैं गुनथानक रस आवै, तो गिरंथ अति शोभा पावै॥

अर्थात् गुणस्थानोका स्वरूप इस ग्रन्थके लिए शोभावर्द्धक होगा ऐसा समझकर उन्होंने इसका लिखना आवश्यक समझा। अतः

यह आक्षेप व्यर्थ है कि "समयसारमें बहुतसी नई बातें घुसेड़ दी गई हैं।"

इस तरह जितने आक्षेप बनारसीदासजी पर किये गये हैं, उन सबका निराकरण हो जाता है। अब प्रश्न यह है कि उपाध्याय मेघविजयजीने अपने ग्रन्थमें उनपर आक्षेप क्यों किये? क्या वे सर्वथा निर्मूल हैं?

नहीं, बनारसीदासजीकी एक समय ऐसी अवस्था अवश्य ही हो गई थी—वे व्यवहारको सर्वथा ही छोड़कर केवल अध्यात्मको पकड़ बैठे थे। इसका उल्लेख उन्होंने अपने अर्धकथानक नामक जीवनचरितमें स्वयं ही किया है। वि० सं० १६८० के लगभग जब उन्होने अर्थमल्लजी नामक अध्यात्मप्रेमी सज्जनके कहनेसे नाटक-समयसारका अध्ययन किया तब वे बाह्य क्रियाओंसे बिलकुल ही हाथ धो बैठे। उनके चन्द्रभान, थानमल और उदयकरन नामक मित्रोंकी भी यही दशा हुई। और तो क्या भगवानको चढ़ाया हुआ खानेमें भी इन्होंने कोई दोष न समझा। आपको ये मुनिराज भी बना लेते थे:—

"नगन होंहिं चारों जने, फिरहिं कोठरी माहिं।
कहहिं भये मुनिराज हम, कछू परिग्रह नाहिं।"

उनकी इस अवस्थाको देखकर:—

"कहहिं लोग श्रावक अरु जती, बानारसी खोसरामती!"

अपनी इस अवस्थाका उन्होंने इन शब्दोंमें परिहास किया है:—

"करनीको रस मिट गयो, भयो न आतमस्वाद।
भई बनारसीकी दसा, जथा ऊँटको पाद॥"

उनकी यह दशा वि० सं० १६८० से १६९२ तक रही। मालूम होता है कि उपाध्यायजीने इसी समय अपने ग्रन्थकी रचना की होगी

और जैसा कि वनारसीदासजीने स्वयं लिखा है कि उस समय श्रावक और यति लोग मुझे 'खोसरा-मती' कहते थे—उन्हें एक नवीन मतका प्रवर्तक लिख दिया होगा। परन्तु कविवरकी आगे यह दशा नहीं रही थी। वि० स० १६९२ मे प० रूपचन्दजीका आगरेमें आगमन हुआ। उन्होंने इन्हे अध्यात्मके एकान्त रोगमें ग्रसित देखकर गोम्मट-साररूप औषधि देना प्रारंभ कर दिया। तब गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रियाका विधान सुनते ही वनारसीदासजीके हृदयके पट खुल गये। वे कहते हैं:—

तब वनारसी औराहि भयौ, स्यादवादपरणति परणयो।
सुनि सुनि रूपचंदके वैन, वानारसी भयो दिढ़जैन॥
हिरदेमें कछु कालिमा, हुती सरदहन वीच।
सोउ मिटी समता भई, रही न ऊँच न नीच॥

इससे स्पष्ट है कि जिस अवस्थाका वर्णन उपाध्यायजीने किया है वह * सवत् १६८० से लेकर १६९२ तककी है—परन्तु आगे वनारसीदासजी दृढश्रद्धानी जैन वन गये थे।

इस वीचमें कविवरने वहुतसी पद्यरचना की थी। उसका सग्रह भी वनारसीविलासमें किया गया है। यद्यपि उक्त रचना उस समय की है जब वे केवल निश्चयावलवी थे तो भी उसमें कोई दोष नहीं है। जीवनचरितमें उसके विषयमें कहा है:—

सोलह सौ वानवे लौं, कियौ नियत[1]रसपान।
पै कवी[2]सुरी सव भई, स्यादवाद परमान॥

इससे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि वनारसीदासजीकी रचना सर्वथा निर्दोष और कल्याणकारिणी है; उससे जैनधर्मको या

* उपाध्यायजीने वनारसीदासजीके मतकी उत्पत्तिका समय भी यही १६८० वतलाया है। १ नियतरस—निश्चयनय। २ कविता।

जैनसमाजको किसी प्रकारकी हानि पहुँचनेकी संभावना नहीं। और नाटकसमयसारकी रचना तो उन्होने उक्त अवस्थासे उत्तीर्ण हो जानेके बाद सवत् १६९३ मे की है। इससे उसके विषयमे किसी प्रकारकी शंका ही नहीं हो सकती।

युक्तिप्रबोधकी रचना किस समय हुई, यह हमें अभीतक माल्रूम नहीं है। यदि उपाध्याय मेघविजयजीने उसे सत्यकी भित्तिपर बनाया है तो वह संवत् १६९२ के पहले पहलेका बना हुआ होना चाहिए। परन्तु जैनशासनके कथनानुसार यदि उसमें बनारसीदासजीकी मृत्युका और कुँवरपालजीके द्वारा उनकी परम्परा चलनेका भी जिकर है तो कहना होगा कि या तो स्वयं उपाध्यायजीने किसी द्वेषके वश, उनके निर्दोष सत्यमार्गानुयायी हो जानेपर भी, उनपर दोषारोप किया है और यह सभव भी है क्योंकि बनारसीदासजी अन्तमें दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी हो गये थे और उपाध्यायजी स्वयं श्वेताम्बर थे, या युक्तिप्रबोध बना तो होगा उसी १६८० से १६९२ तकके बीचमे, जब बनारसीदासजी एकान्तनिश्चयावलम्बी थे परन्तु पीछे अनावश्यक हो जाने पर भी उसको आवश्यक बनाये रखनेके खयालसे उन्होंने स्वय या उनके किसी शिष्यने उक्त परम्परा चलनेकी बात लिख दी होगी। इस बातका निर्णय युक्तिप्रबोधके देखनेसे हो सकता है। कुछ भी हो, पर बनारसीदासजीकी रचना और उनकी आत्मकहानी ( जीवन-चरित ) इस बातको अच्छी तरह स्पष्ट कर देती है कि वे किसी नये मतके प्रवर्तक, निन्हव या पाखण्डी नहीं थे। आशा है कि जैनशासनके सम्पादक महाशय इस लेखपर विचार करेंगे और एक महात्मापर उन्होने जो आक्षेप किये है उनको दूर करनेकी उदारता दिखलावेगे।

---

# विविध प्रसङ्ग ।

## १ इन्दौरका उत्सव ।

इन्दौरका उत्सव आनन्दके साथ समाप्त हो गया । इसमें सन्देह नहीं कि यदि इसके साथ ही 'जैनहाईस्कूल' के खोलनेका भी समारम्भ होता तो उत्सवका रग कुछ और ही हो जाता, परन्तु स्कूल न खुल सका, इससे लोगोंका उत्साह कुछ मन्दसा रहा–तो भी उत्सव खासा हुआ और अच्छी सफलताके साथ हुआ। उपदेश और व्याख्यानोंकी, शास्त्रचर्चा और उन्नतिचर्चाओंकी, सभाओं और प्रस्तावोंकी कई दिन तक अच्छी चहल पहल रही। मालवा प्रान्तिक सभाकी ता० २ और ३ अप्रैलको दो बैठकें हुईं। उनमें दो बातें महत्त्वकी हुईं–एक तो सभापति सेठ हीराचन्द नेमीचन्दका विचारपूर्ण व्याख्यान और दूसरी, सभाके स्थायी फण्डके लिए लगभग सात हजार रुपयोंका चन्दा । एक दिन मोरेनाकी जैनसिद्धान्तपाठशालाके स्थायी फण्ड खोलनेका विचार किया गया। एक लाख रुपयेकी आवश्यकता समझी गई। स्थायी फण्डके लिए एक ट्रूस्टकमेटी चुनी गई और चन्दा एकत्र करनेके लिए एक 'डेप्युटेशन पार्टी' बनाई गई । दानवीर सेठ हुकमचन्दजीने डेप्युटेशनके साथ घूमनेकी बडी प्रसन्नतासे स्वीकारता दी और जब सभाके सम्मुख चन्देकी अपील की गई तब आपने पाठशालाको बडे ही उत्साहसे १०००० रुपया देकर उसके स्थायी फण्डकी नीव डाल दी। लगभग डेढ हजार रुपयेके और भी चन्दा हुआ। गरज यह कि अब सिद्धान्तपाठशालाके स्थायी होनेमें कोई सन्देह नहीं रहा। डेप्युटेशन पार्टीका दौरा बहुत जल्दी शुरू होगा। इस उत्सवमें दो कार्य और भी बडे महत्त्वके हुए –एक तो रायबहादुर सेठ कल्याणमजीने इन्दौरमें एक कन्यापाठशाला खोलनेके लिए २५००० रु० देना स्वीकार किया और ता० ६ अप्रैलको उसका प्रारभिक मूहुर्त भी कर दिया और दूसरा इन्दौरमें एक 'उदासीनाश्रम' खोलनेका निश्चय किया गया। इसके लिए दानवीर सेठ हुकमचन्दजीने १०००० रु० ( आश्रमकी इमारतके लिए ) रायबहादुर सेठ कल्याणमलजीने १०००० रु० और अण्यान्य धर्मात्माओंने लगभग ५००० रु० का और भी चन्दा देना स्वीकार किया। इस तरह इस उत्सवमें सब मिला कर लगभग ७० हजार रुपयोंका दान हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय इन्दौरकी धनिकमण्डलीकी उदारताका स्रोत खूब ही

वेगसे वह रहा है। भगवानसे प्रार्थना है कि यह वेग बहुत समय तक जारी रहे और इससे सारा जैनसमाज हराभरा सुस्निग्ध सफल होता रहे।

## २ इन्दौरकी उल्लेख योग्य घटनायें।

इन्दौरके इस उत्सवमें कुछ घटनायें ऐसी हुई हैं जिनका उल्लेख करना हम बहुत ही आवश्यक समझते हैं और उनसे हम बहुत कुछ लाभ उठानेकी आशा रखते हैं। ता० १ अप्रैलकी रातको श्रीयुक्त शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीका एक प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। उसमें आपने जैनधर्म और जैनसमाजकी उन्नतिके उपाय बतलाते हुए कहा कि " वर्तमान जैनसमाज अनेक जातियोंसे बना हुआ है और उनमें प्राय. ऐसी ही जातियाँ अधिक है जिनकी जनसख्या बहुत ही थोडी है। इन सब जातियोंमें परस्पर विवाहसम्बन्ध नहीं होता है और इससे बडी भारी हानि यह हो रही है कि हमारी सख्या दिन पर दिन घटती जा रही है। प्राचीन समयमें इस प्रकारका बन्धन नहीं था। हमारे ग्रन्थोंमें अनेक जातियोंके परस्पर विवाह होनेके बहुतसे प्रमाण मिलते है। इस लिए यदि अब भी हमारी जातियोंमें परस्पर विवाह होने लगे तो कुछ हानि नहीं है।" यह प्रस्ताव ब्रह्मचारीजीने बहुत ही नम्रतासे पेश किया था और प्रारभमें यह भी कह दिया था कि प्रत्येक मनुष्यको अपने विचार प्रगट करनेका अधिकार है, इस लिए मैं अपने विचार आप लोगों पर प्रकट कर देना चाहता हूं। मै यह नहीं कहता कि इसे मान ही लेवें, मानने न माननेके लिए आप स्वतत्र है, पर इस प्रस्ताव पर आप विचार अवश्य ही करें। इसके बाद पं० दरयावसिंहजी सोधियाने उक्त प्रस्तावका शान्तिके साथ विरोध किया और बतलाया कि इसकी आवश्यकता नहीं है। इस तरह यह विषय यहाँ ही समाप्त हो चुका था। परन्तु कुछ महाशय इससे बहुत ही क्षुब्ध हुए और सभाविसर्जित हो जानेपर सभास्थानमें ही उन्होंने गालागालि शुरू करके एक तरहका हुल्लड मचा दिया। इसके बाद दूसरे दिन एक महात्माने सभामें खडे होकर ब्रह्मचारीजीके कथनका लोगोंको मनमाना ऊँटपटाँग अर्थ समझाकर उनकी शानके खिलाफ बहुतसी बातें कहीं। चाहिए यह था कि इसपर ब्रह्मचारीजीको भी बोलनेका मौका दिया जाता, परन्तु वे कहते कहते रोक दिये गये और इस तरह न केवल उनके विचारोंके गले पर छुरी चलाई गई, किन्तु उनका अपमान भी किया गया। इसी तरहकी एक घटना और भी ता० ३ की रातको हुई। कुँवर दि-

ग्विजयसिंहजीका व्याख्यान हो रहा था। उन्होंने कहा कि जैनियोंकी जनसंख्या घट रही है। और यह नियम है कि जब किसी चीजका खर्च तो जारी रहता है पर आमदनीकी कोई सूरत नहीं होती तब उसका एक न एक दिन शेष हो ही जाता है। इस लिए हमें चाहिए कि अजैनोंको जैन बनाकर अपनी संख्याको क्षीण होनेसे रोकें। बस, इतना सुनते ही बहुतसे लोग भडक उठे और हुल्लड मचानेके लिए खडे हो गये। यह देखकर सेठ हुकुमचन्दजी खडे होगये और उन्होंने बहुत कुछ समझा बुझाकर बडी मुश्किलसे उन्हें शात किया। सेठजीने कहा कि "इसमें भडकनेकी कोई बात नहीं है। प्रत्येक जातिका मनुष्य जैनधर्म धारण कर सकता है। यह आपका सामाजिक या जातीय प्रश्न नहीं है–ये यह नहीं कहते कि जो लोग जैनधर्म धारण करलें उनके साथ तुम रोटी बेटी व्यवहार भी जारी कर दो। फिर इतनी उछल कूद मचानेकी क्या आवश्यकता है। इत्यादि।" इन दो घटनाओंसे हमारे शिक्षित भाईयोंको जानना चाहिए कि हमारे समाजमें विचारसहिष्णुताकी कितनी कमी है और जब तक लोगोंमें इतना भी धैर्य नहीं है–वे दूसरोंकी बातोंको सुन भी नहीं सकते है तबतक समाजमें किसीभी सुधारको आश्रय मिलनेकी आशा कैसे की जा सकती है? इस विषयमें मालवा आदि प्रान्त तो बहुत ही बढे चढे हैं–उनकी रूढियों या संस्कारोंके विरुद्ध एक शब्द भी यदि कोई कह दे तो उनके मिजाजकी गर्मीका पारा १०५ ·डिग्रीपर जा पहुँचे। इसका कारण उनकी घोर अज्ञानता है। जब उनके कानोंतक कभी ऐसे शब्द गये ही नहीं, अपनी संकीर्ण परिधिके बाहर भी कुछ है यह जब उन्हें मालूम ही नहीं, तब ऐसा होना स्वाभाविक ही है। इस लिए सबसे पहले हमारा यह कर्तव्य होना चाहिए कि सर्व साधारणमें विचारसहिष्णुता उत्पन्न करें। इसके लिए कुछ नये विचारोंके परन्तु शान्त दूरदर्शी और सदाचारी उपदेशक नियत किये जावें और वे जगह जगह घूमकर विचारसहिष्णुताके सिद्धान्त समझावें, नये विचारोंको उत्तमताके साथ लोगोंके कानोंतक पहुँचावें, देश और समाजकी वर्तमान परिस्थितियोंका ज्ञान करावें। सुधारसम्बन्धी कुछ ट्रेक्ट छपाकर जगह जगह वितरण किये जावें और समाचारपत्रोंमें सुधारसम्बन्धी लेख खूब स्वाधीनताके साथ लिखे जावें। यदि वर्तमान समाचारपत्रोंसे काम न चले–वे यदि अपनी दब्बू दुरगी और गिरी हुई पालिसीको छोडना पसन्द न करें तो एक दो बिलकुल स्वाधीन और शानदार पत्र निकालनेका प्रयत्न किया जाय।

यह हमें याद रखना चाहिए कि जबतक हमारा नये उत्थानका सदेश लोगोंके कानोंतक इस जोरसे न पहुँचेगा कि उनकी झिल्लियाँ फटने लगें और वे सुनते सुनते ऊब जावें, तबतक उनमें विचारसहिष्णुता नहीं आ सकती–उन्हें सुननेका अभ्यास नहीं हो सकता और तब तक कोई भी नये सुधारके होनेकी आशा नहीं की जा सकती। इस खयालसे कि जब ये समझने लगेंगे तब हम कुछ सुनावेंगे हमें सैकडों वर्ष तक भी सुनानेका अवसर नहीं मिलेगा। सफलता की कुंजी यही है कि हम उद्योग करते रहें–कर्तव्य करते रहें और विघ्नबाधाओंकी और भ्रूक्षेप भी न करें।

## ३ जैन हाईस्कूल क्यों न खुला?

पाठकोंको मालूम है कि जयपुरनिवासी पं० अर्जुनलालजी सेठी बी ए. को हाईस्कूलकी प्रबन्धकारिणी कमेटीने इस लिए चुनकर इन्दौर बुला लिया था कि वे जैन हाईस्कूलके प्रिंसिपाल बनकर कार्य करें। सेठीजी लगभग १० वर्षसे शिक्षाप्रचार सम्बन्धी कार्य कर रहे हैं। शिक्षापद्धति और शिक्षासस्थाओंके विषयमें उन्होंने बहुत उच्च श्रेणीका ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया है। इस विषयमें वे जैन समाजमें अद्वितीय हैं। धार्मिक ज्ञान भी उनका बहुत बढा चढा है। इन बातोंपर ध्यान देनेसे कहना पड़ता है कि प्रबन्धकारिणी कमेटीने उनके चुननेमें बहुत बडी योग्यताका परिचय दिया था और सेठीजीके द्वारा उसका हाईस्कूल भारतवर्षका एक आदर्श हाईस्कूल बन जाता, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। परन्तु 'यच्चेतसापि न कृत तदिहाभ्युपैति' जो कभी सोचा भी नहीं था वह हो गया, हमारे दुर्भाग्यसे सेठीजीपर एक भयकर विपत्ति आकर टूट पडी जिससे उत्सवके समय हाईस्कूल खुल न सका और यदि हमारा अनुमान सत्य हो तो जैन हाईस्कूल सदाके लिए एक उत्साही स्वार्थत्यागी सचालकसे वञ्चित हो गया। जहाँ तक हम जानते हैं सेठीजी आज तक कभी किसी राजनैतिक आन्दोलनमें शामिल नहीं हुए है। वे शान्तिप्रिय और राजभक्त जैनजातिके केवल एक धार्मिक और सामाजिक शिक्षक थे। उन्होंने शिक्षाप्रचारका जो बडा भारी भार उठा रक्खा था उसको छोड़कर और किसी काममें हाथ डालनेके लिए उनके पास समय भी न था। परन्तु आज कल देशकी दशा ही कुछ ऐसी हो रही है कि राजनैतिक मामलोंसे दूर रहनेवाले लोग भी सुखकी नींद नहीं सोने पाते। यह सुनकर सारा जैनसमाज दहल उठा कि ता० ८ मार्चको सेठीजी और उनके शिष्य कृष्णलालजीको पुलिस गिरिफ्तार कर ले गई। बीचमें जब यह सुना कि

सेठीजी और उनके शिष्य देहलीसे वापस लाकर छोड दिये गये हैं तव वहुत कुछ सन्तोष हुआ। परन्तु थोडे ही दिन वाद ता० २३ को जव वे फिर गिरिफ्तार कर लिए गये और साथ ही शिवनारायण द्विवेदी, मोतीचन्द शाह आदि उनके तीन चार विद्यार्थी भी गिरिफ्तार किये गये, तव हम लोगोंके आश्चर्यका कुछ ठिकाना नहीं रहा। अव तक सव लोग हवालातमें ही हैं परन्तु स्पष्टत यह किसी पर भी प्रकट नहीं है कि ये सव क्यों गिरिफ्तार किये गये है। केवल यही सुना जाता है कि देहलीके राजद्रोहसम्वधी मामलेमें सन्देहके कारण ये सव पकडे गये हैं। जव तक यह मामला अदालतमें न आ जावे और कुछ खुलासा मालूम न हो तव तक इस विषयमें हमें कुछ लिखनेका अधिकार नहीं। परन्तु यह हम अवश्य कहेंगे कि सरकारको वहुत सोच समझकर ये मामले चलाने चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि व्यर्थ ही निरुपद्रवी और शान्तिप्रिय लोग सताये जावें और इसका लोगोंके चित्तपर कुछ और ही परिणाम हो। हमें विश्वास है कि जैनप्रजा जिसे वास्तवमें राजद्रोह कहते हैं उससे कोसों दूर है।

## ४ रोगनिवारिणी रमणी।

पेरिस ( फ्रान्स ) के पत्रोंमें वहाँकी 'मेडम ललोज' नामकी एक स्त्रीके सम्वन्धमें वडी ही आश्चर्यजनक वातें प्रकाशित हुई हैं। वचपनमें ज्योंही वह किसी झाडपर अपना हाथ रखती थी त्योंही उसके पत्ते और फूल खिल उठते थे। इस समय वह चाहे जिस रोगीको हाथसे स्पर्श करके या केवल दृष्टिपात करके नीरोग कर सकती है। इस तरह रोग दूर करते समय उसके हाथमेंसे एक प्रकारका प्रवाह निकलता है। यह प्रवाह यदि फोटो लेनेके काच पर डाला जाता है तो उसपर सुनहरी या गुलावी निशान हो जाते हैं। जव वह दूसरोंका दर्द दूर कर चुकती है तव उसे थोडी देरके लिए दर्द होने लगता है जो कि आपही आप आराम हो जाता है। सैकडों मीलकी दूरी पर रहनेवाले रोगीको भी वह अपने घर वैठे आराम पहुँचा सकती है। वह न तो विज्ञापन प्रकाशित कराती है और न मान तथा धनकी वह इच्छा रखती है। वह वहुत ही धर्मपरायणा है। यह एक आत्माकी अद्भुत शक्तियोंका प्रत्यक्ष दृष्टान्त है।

## भ्रमसंशोधन।

जैनहितैषीके पिछले अंकके 'ग्रन्थपरीक्षा' नामक लेखका प्रूफ सावधानीसे नहीं देखा गया, इस लिए उसमें वहुतसी अशुद्धियाँ रह गई हैं। श्लोकोंके नम्बरों और शव्दोंमें वहुत प्रमाद हुआ है। इसका हमें खेद है। आशा है कि पाठक इसके लिए हमें क्षमा करेंगे और लेखको विचारपूर्वक पढनेकी कृपा करेंगे।

# चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें।

**चित्रमयजगत्**–यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। "इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज" के ढंग पर बडे साइजमें निकलता है। एक एक पृष्ठमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। सालभरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००, ५०० चित्रोंका मनोहर अल्बम बन जाता है। जनवरी १९१२ से इसमें विशेष उन्नति की गई है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डा० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक संख्याका ।)॥ है।

**राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र**–राजा साहबके चित्र संसारभरमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपर पर पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु०।

**चित्रमय जापान**–घर बैठे जापानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टिसौंदर्य्य, रीतिरवाज, खानपान, नृत्य, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित है। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपरपर छपी है। मूल्य एक रुपया।

**सचित्र अक्षरबोध**–छोटे २ बच्चोंको वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बडा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पडते हैं। मूल्य छह आना।

**वर्णमालाके रंगीन ताश**–ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

**सचित्र अक्षरलिपि**–यह पुस्तक भी उपर्युक्त "सचित्र अक्षरबोध" के ढंगकी है। इसमें बाराखडी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने हैं।

**सस्ते रंगीन चित्र**—श्रीदत्तात्रय, श्रीगणपति, रामपचायतन, भरतभेट हनुमान, शिवपचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर, विष्णु, लक्ष्मी, गोपीचन्द, अहिल्या, शकुन्तला, मेनका, तिलोत्तमा, रामवनवास, गजेंद्रमोक्ष, हरिहर भेट, मार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी, रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहिल्योद्धार, विश्वामित्र मेनका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रगीन चित्र। आकार ७ × ५, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा।

श्री सयाजीराव गायकवाड वडोदा, महाराज पचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णशिष्टाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रगीन चित्र, आकार ८ × १० मूल्य प्रति सख्या एक आना।

**लिथोके बढियाँ रंगीन चित्र**—गायत्री, प्रात सन्ध्या, मध्याह्न सन्ध्या, सायसन्ध्या प्रत्येक चित्र।) और चारों मिलकर ॥), नानक पथके दस गुरु, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपचायतन, रामपचायतन, महाराज जार्ज, महारानी मेरी। आकार १६ × २० मूल्य प्रति चित्र।) आने।

**अन्य सामान्य**—इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई, स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराजा, बादशाह, सरदार, अंग्रेजी राजकर्ता, गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र उचित और सस्ते मूल्य पर मिलते हैं। स्कूलोंमें किंडरगार्डन रीतिसे शिक्षा देनेके लिये जानवरों आदिके चित्र सब प्रकारके रगीन नकशे ड्राईंगका सामान, भी योग्य मूल्यपर मिलता है। इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये।

मैनेजर चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी

---

# केशर।

काश्मीरकी केशर जगत्प्रसिद्ध है। नई फसलकी उम्दा केशर शीघ्र मंगाइये। दर १) तोला।

## सूतकी मालायें।

सूतकी माला जाप देनेके लिए सबसे अच्छी समझी जाती है। जिन भाइयोंको सूतकी मालाओंकी जरूरत होवे हमसे मंगावें। हर वक्त तैयार रहती है। दर एक रुपयेमें दश माला।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई

ॐ

# जैनहितैषी।

साहित्य, इतिहास, समाज और धर्मसम्बन्धी
लेखोंसे विभूषित

## मासिकपत्र।

सम्पादक और प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी।

दसवाँ भाग। | माघ, फाल्गुन श्रीवीर नि० संवत् २४४० | ४-५ वाँ अंक।

विषयसूची।



पत्रव्यवहार करनेका पता—
श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई।



# जैनहितैषी ।

श्रीमत्परमगम्भीरस्याद्वादामोघलाञ्छनम् ।
जीयात्सर्वज्ञनाथस्य शासनं जिनशासनम् ॥

१०वाँ भाग] माघ,फा०श्री०वी०नि०सं०२४४० । [४,५ वाँ अं.

## बुकर टी० वाशिंगटन ।

आफ्रिकाके मूलनिवासियोंकी नीग्रो ( हवशी ) नामक एक जाति है। सत्रहवीं सदीमे इस जातिके लोगोंको गुलाम बनाकर अमेरिकामें बेचनेका क्रम आरंभ हुआ। यह क्रम लगभग दो सदियोंतक जारी रहा। इतने समय तक दासत्वमें रहनेके कारण उन लोगोंकी कैसी अवनति हुई होगी, उन्हें कैसा भयंकर कष्ट सहन करना पड़ा होगा और उनकी स्थिति कैसी निकृष्ट हुई होगी, सो सभी अनुमान कर सकते है। इन लोगोंके साथ पशुओंसे भी बढ़कर बुरा वर्ताव किया जाता था। वे बुरी तरहसे मारे पीटे जाते थे, कुटुम्बियोंसे जुदा कर दिये जाते थे, और एक साधारण चीजके समान चाहे जिसके हाथ बेच दिये जाते थे। यह अत्याचार सन् १८६२ तक जारी रहा। आखिर महात्मा लिंकनकी अनुकम्पा और आन्दोलनसे १८६३ के प्रारंभमें नीग्रो जातिके तीस चालीस लाख आदमियोंको स्वाधीनता मिल गई; गोरोंके समान ये काले लोग भी मनुष्य समझे जाने लगे।

बुकर टी० वाशिंगटनका जन्म सन् १८९२--९८ में इसी नीग्रो जातिके एक अत्यन्त गरीब दासकुलमें हुआ। जिस समय अमेरिकाके सब दास मुक्त किये गये उस समय उसकी अवस्था तीन चार वर्षकी थी। स्वतंत्र होनेपर उसके मातापिता अपने बच्चेको लेकर कुछ दूर माल्डन नामक गॉवको, नमककी खानमें मज़दूरी करनेके लिए, चले गये। वहॉ बुकरको भी दिनभर खानके भीतर नमककी भट्टीमें काम करना पड़ता था। यद्यपि बालक बुकरके मनमें लिखना पढना सीखनेकी बहुत इच्छा थी, तथापि उसके पिताका ध्यान केवल कुटम्बके निर्वाहके लिए पैसा कमानेहीकी ओर था। ऐसी अवस्थामें शिक्षाप्राप्तिकी अनुकूलता नहीं हो सकती। इतनेमें उस गॉवके समीपही नीग्रो जातिकी शिक्षाके लिए एक छोटीसी पाठशाला खोली गई। इस पाठशालामें वह रातको जाकर पढने लगा। मज़दूरीके कष्टप्रद जीवनमें भी वह अपनी ज्ञान बढ़ानेकी इच्छाको चरितार्थ करने लगा। सन् १८७२ में, वह हैम्पटन नगरके नार्मल स्कूलमें पढ़नेके लिए गया। बिना पैसेके अत्यन्त कष्ट सहन करके मज़दूरी करते हुए उसने हैम्पटनकी ५०० मीलकी लम्बी सफ़र तै की। स्कूलके अध्यक्ष बड़े ही परोपकारी थे। उनकी कृपासे बुकर चार वर्षमें ग्रेजुएट होगया। इस स्कूलमें वाशिंगटनने जिन बातोंकी शिक्षा पाई उनका सारांश यह है:—

१ "पुस्तकोंके द्वारा प्राप्त होनेवाली शिक्षासे वह शिक्षा अधिक उपयोगी और मूल्यवान् है जो सत्पुरुषोंके समागमसे मिलती है।"

२—"शिक्षाका अन्तिम हेतु परोपकार ही है। मनुष्यकी उन्नति केवल मानसिक शिक्षासे नहीं होती। शारीरिक श्रमकी भी बहुत

आवश्यकता है। श्रमसे न डरनेसे ही आत्मविश्वास और स्वाधीनता प्राप्त होती है । जो लोग दूसरोंकी उन्नतिके लिए यत्न करते हैं जो लोग दूसरोंकी सुखी करनेमें अपना समय व्यतीत करते हैं--वे ही सुखी और भाग्यवान् है। "

२—" शिक्षाकी सफलताके लिए ज्ञानेन्द्रिय, अन्त.करण और कर्मेंद्रियकी एकता होनी चाहिए । जिस शिक्षासे श्रमके विषयमे घृणा उत्पन्न होती है उससे कोई लाभ नहीं होता। "

बुकर स्कूलमें पढ़ने और बोरडिंगमें रहनेका खर्च न सकता था, इस लिए वह स्कूलमें द्वारपालकी नोकरी करके और छुट्टीके दिनोमें शहरमे मज़दूरी या नौकरी करके द्रव्यार्जन करता था। इस प्रकार स्वयं परिश्रम करके अपने आत्मविश्वासके बलपर उसने हैम्पटन स्कूलका क्रम पूरा किया। उसका नाम पदवीदानके समय माननीय विद्यार्थियोंमें दर्ज किया गया।

ग्रेजुएट होनेके बाद वार्शिंगटन अपने घर लौट आया और वहाँ एक नीग्रो-स्कूलमें शिक्षकका काम करने लगा। कोई दोवर्ष तक यह काम करके वह शिक्षाविषयक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए वाशिंगटन शहरमे आठ महिने रहा। वहाँ उसने नीग्रो लोगोंकी सामाजिक दशाके सम्बन्धमें बहुतसा ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद उसने हैम्पटन स्कूलमें दो वर्षतक शिक्षकका काम किया और एक सुप्रसिद्ध शिक्षक हो गया।

सन् १८८१ में, अलाबामा रियासतके टस्केजी नामक ग्रामके निवासियोंने एक आदर्शस्कूल खोलना चाहा और इसके लिए उन्होंने मि० वाशिंगटनको अपने यहाँ बुला लिया। वहाँ पहुँचकर वाशिंगटनने दो महिने तक उस प्रदेशके निवासियोंकी सामाजिक और आर्थिक

दशाकी अच्छी तरह जाँच की और इसके बाद उसने एक टूटीसी झोपडीमें पाठशाला खोल दी। इस पाठशालामें वाशिंगटन ही अकेले शिक्षक थे। लडके और लड़कियाँ मिलकर सब ३० छात्र थे। वे सब व्याकरणके नियम और गणितके सिद्धान्त मुखाग्र जानते थे परन्तु उनका उपयोग करना न जानते थे। वे शारिरीकश्रम या मिहनत करनेको नीच काम समझते थे। ऐसी अवस्थामें, पहले पहल वाशिंगटनको अपने नूतन तत्त्वोंके अनुसार शिक्षा देनेमें बहूत कठिनाइयाँ हुई। उसने निश्चय किया कि इस प्रान्तके निवासियोंको कृषिसम्बन्धिनी शिक्षा दी जानी चाहिए और एक या दो ऐसे भी व्यवसायोकी शिक्षा दी जानी चाहिए जिसके द्वारा लोग अपना उदरनिर्वाह अच्छी तरह कर सकें। उन्होंने ऐसी शिक्षा देनेका संकल्प किया जिससे विद्यार्थियोंके हृदयमें शारीरिक श्रम, व्यवसाय, मितव्यय और सुव्यवस्थाके विषयमें प्रेम उत्पन्न हो जाय, उनकी बुद्धि, नीति और धर्ममें सुधार हो जाय; और जब वे पाठशालासे निकलें तब अपने देशमे स्वतन्त्र रीतिसे उद्यम करके सुखप्राप्ति कर सकें तथा उत्तम नागरिक बन सकें। परन्तु ऐसी शिक्षा देनेके लिए वाशिंगटनके पास एक भी साधनकी अनुकूलता न थी। इतनेमे उन्हें मालूम हुआ कि टस्केजी गाँवके पास एक खेत बिकाऊ है। इसपर हैम्पटनके कोषाध्यक्षसे ७५० रुपया कर्ज लेकर उन्होंने वह जमीन मोल ले ली। उस खेतमें दो तीन पुरानी झोपडियाँ थीं। उन्हींमें वे अपने विद्यार्थियोंको पढाने लगे। पहले पहल विद्यार्थी किसी प्रकारका शारीरिक काम न करना चाहते थे; परन्तु जब उन्होंने अपने हितचिन्तक शिक्षक वाशिंगटनको हाथमे कुदाली फावडा लेकर काम करते देखा तब वे बड़े उत्साहसे काम करने लगे।

जमीन मोल लेनेके बाद इमारत बनानेके लिए धनकी आवश्यकता हुई। तब वे गाँव गाँवमें भ्रमण करके द्रव्य एकट्ठा करने लगे। इस

काममे उन्होंने वड़े वड़े कष्ट उठाये; परन्तु अन्तमें उनका प्रयत्न सफल हुए बिना न रहा। धन एकट्ठा करनेके विषयमें वाशिंगटनके नीचे लिखे अनुभवसिद्ध नियम वड़े कामके है:—

१. तुम अपने कार्यके विषयमे अनेक व्यक्तियो और संस्थाओको अपना सारा हाल सुनाओ। यह हाल सुनानेमें तुम अपना गौरव समझो। तुम्हें जो कुछ कहना हो संक्षेपमें और साफ़ साफ़ कहो।

२. परिणाम या फलके विषयमें निश्चिन्त रहो।

३. इस वातपर विश्वास रक्खो कि संस्थाका अन्तरंग जितना ही स्वच्छ, पवित्र और उपयोगी होगा उतना ही अधिक उसको लोकाश्रय भी मिलेगा।

४. धनी और गरीब दोनोंसे सहायता माँगो। सच्ची सहानुभूति प्रकट करनेवाले सैकड़ों दाताओंके छोटे छोटे दानोंपर ही परोपकारके बड़े बड़े काम होते हैं।

५. चन्दा एकट्ठा करते समय दाताओंकी सहानुभूति, सहायता और उपदेश प्राप्त करनेका यत्न करो।

आत्मावलम्बन और परिश्रमसे धीरे धीरे टस्केजी संस्थाकी उन्नति होने लगी। सन् १८८१ में इस सस्थाकी थोड़ीसी जमीन, तीन इमारतें, एक शिक्षक और तीस विद्यार्थी थे। अब वहाँ १०६ इमारतें २,३५० एकड जमीन, और १५०० जानवर है। कृषिके उपयोगी यन्त्रों और अन्य सामानकी कीमत ३८,८५, ६३९ रुपया है। वार्षिक आमदनी ९,००,००० रुपया है और कोषमे ६,४५००० रुपया जमा है। यह रकम घर घर भिक्षा मॉगकर एकट्ठा की जाती है। इस समय सस्थाकी कुल जायदाद एक करोड़से अधिककी है जिसका प्रबन्ध पंचोंद्वारा किया जाता है। शिक्षकोकी संख्या १८० और वि-

द्यार्थियोंकी १६४९ है। १००० एकड़ जमीनमें विद्यार्थियोंके श्रमसे खेती होती है। मानसिक शिक्षाके साथ साथ भिन्न भिन्न चालीस व्यवसायोंकी शिक्षा दी जाती है। इस संस्थामें शिक्षा पाकर लगभग ३००० आदमी दक्षिण अमेरिकाके भिन्न भिन्न स्थानोंमें स्वतन्त्र रीतिसे काम कर रहे है। ये लोग स्वयं अपने प्रयत्न और उदाहरणसे अपनी जातिके हजारों लोगोंको आधिभौतिक और आध्यात्मिक, धर्म और नीतिविषयक शिक्षा दे रहे है।

वाशिंगटनको टस्केजी सस्थाका जीव या प्राण समझना चाहिए। आपहीके कारण इस संस्थाने इतनी सफलता प्राप्त की है। आप पाठशालामें शिक्षकका काम भी करते हैं और सस्थाकी उन्नतिके लिए गॉव गॉव, शहर शहर, भ्रमण करके धन भी एकट्ठा करते हैं। उन्हें अपनी स्त्रीसे भी बहुत सहायता मिलती है। वे यह जाननेके लिए सदा उत्सुक रहते हैं कि अपनी सस्थाके विषयमे कौन क्या कहता है। इससे संस्थाके दोष मालूम हो जाते है और सुधार करनेका मौका मिलता है। आपका अपनी सफलताका रहस्य इस प्रकार बतलाते है:—

१. ईश्वरके राज्यमें किसी व्यक्ति या जातिकी सफलताकी एक ही कसौटी है। वह यह कि प्रत्येक प्रयत्न सत्कार्य करनेकी प्रेरणासे प्रेरित होकर करना चाहिए।

२. जिस स्थानमें हम रहे उस स्थानके निवासियोंकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आर्थिक उन्नति करनेका यत्न करना ही सबसे बड़ी बात है।

३. सत्कार्यप्रेरणाके अनुसार प्रयत्न करते समय किसी व्यक्ति, समाज या जातिकी निन्दा, द्वेष और मत्सर न करना चाहिए। जो काम

भ्रातृभाव, बन्धुप्रेम और आत्मीयतासे किया जाता है, वही सफल और सर्वोपयोगी होता है।

४. किसी कार्यका यत्न करनेमें आत्मविश्वास और स्वाधीनभावको न भूल जाना चाहिए। यदि एक या दो प्रयत्न निष्फल हो जायँ तो भी हताश न होना चाहिए। अपनी भूलोंकी ओर ध्यान देकर विचार-पूर्वक बार बार यत्न करते रहना चाहिए।

वाशिंगटनका यह विश्वास है कि योग्यता अथवा श्रेष्ठता किसी भी वर्ण, रंग और जातिके मनुष्यमें हो, वह छिप नहीं सकती। गुणोंकी परीक्षा और चाह हुए विना नहीं रहती। अमेरिका निवासियोंने बुकर टी० वाशिंगटन जैसे सद्गुणी और परोपकारी कार्यकर्ताका उचित आदर करनेमें कोई बात उठा नहीं रक्खी। हारवार्ड–विश्वविद्यालयने आपको 'मास्टर आफ आर्ट्स' की सन्मानसूचक पदवी दी है। अमेरिकाके प्रेसीडेंटने आपकी सस्थामें पधारकर कहा था–" यह संस्था अनुकरणीय है। इसकी कीर्ति यहीं नहीं, किन्तु विदेशोंमें भी बढ़ रही है। इस संस्थाके विषयमें कुछ कहते समय मि० वाशिंगटनके उद्योग, साहस, प्रयत्न और बुद्धिसामर्थ्यके सम्बन्धमें कुछ कहे विना रहा नहीं जाता। आप उत्तम अध्यापक हैं, उत्तम वक्ता है और सच्चे परोपकारी हैं। इन्हीं सद्गुणोंके कारण हम लोग आपका सम्मान करते हैं।"

सोचनेकी बात है कि जिस आदमीका जन्म दासत्वमें हुआ, जिसको अपने पिता या और पूर्वजोंका कुछ भी हाल मालूम नहीं, जिसको अपनी बाल्यावस्थामें स्वयं मजदूरी करके पेट भरना पड़ा, वही इस समय अपने आत्मविश्वास और आत्मबलके आधारपर कितने ऊँचे पद पर पहुँच गया है। वाशिंगटनका जीवनचरित पढकर कहना

पडता है कि "नर जो पै करनी करे तो नारायण हो जाय।" प्रतिकूल दशामें भी मनुष्य अपनी जाति, समाज और देशकी कैसी और कितनी सेवा कर सकता है, यह बात इस चरितसे सीखने योग्य है। यद्यपि हमारे देशमें अमेरिकाके समान दासत्व नहीं है तथापि, वर्त-मान समयमें, अस्पृश्य जातिके पाच करोडसे अधिक मनुष्य सामा-जिक दासत्वका कठिन दुःख भोग रहे हैं। क्या हमारे यहाँ, वाशिंग-टनके समान, इन लोगोंका उद्धार करनेके लिए कभी कोई महात्मा उत्पन्न होगा? क्या इस देशकी शिक्षापद्धतिमें शारीरिक श्रमकी ओर ध्यान देकर कभी सुधार किया जायगा? जिन लोगोने शिक्षाद्वारा अपने समाजकी सेवा करनेका निश्चय किया है क्या वे लोग उन तत्त्वोंपर उचित ध्यान देगे जिनके आधारपर टस्केजीकी सस्था काम कर रही है?*

---

# कन्या-निर्वाचन।

शायद ही कोई अभागा ऐसा हो, जिसे अपने जीवनमे कमसे कम एक बार किसी न किसीकी कन्याको देखनेके लिए न जाना पड़े। किन्तु वह क्या देखता है? कन्याका रग गोरा है या काला, ऑखे छोटी हैं या बड़ी, नाक ऊँची है या बैठी इत्यादि। अधिक हुआ तो कोई यह भी पूछ लेता है कि कन्या पढ़ना लिखना जानती है या नहीं? इसके उत्तरमें कन्याका पिता और कुछ नहीं तो यह अवश्य कह देता है कि लड़की घरका काम काज करना सीखी है। इसके बाद ही कन्या पसन्द हो जाने पर विवाहकी तैयारिया होने लगती है।

---

* फरवरीकी 'सरस्वती' के लेखका सार।

किन्तु वास्तवमे ही क्या कन्याका निर्वाचन करना इतना सहज है ? हमें जानना चाहिए कि हिन्दूविवाहमे न तो छोड़छुट्टी या स्तीफेका रिवाज है और न कोर्टशिप है, इसी लिए पात्रीनिर्वाचन करते समय बहुत कुछ सोच विचार करनेकी जरूरत है। पहले देखना चाहिए कन्याका चरित्र, इसके बाद उसकी बुद्धि और अन्तमे उसका रूप। अब प्रश्न यह है कि एक छोटीसी अपरिचित बालिकाके चरित्र और बुद्धिका निर्णय कैसा किया जा सकता है ? उत्तर यह है कि मनुष्यके चरित्रका और बुद्धिका निदर्शन उसके मुखकी आकृतिमें मौजूद रहता है। हमें चाहिए कि मुखकी आकृति देखकर लोगोके स्वभावका निर्णय करना सीखे। किसीके उज्ज्वल नेत्रोंमे बुद्धिकी ज्योति दिखलाई देती है, किसीके नेत्रोंसे उसके स्नेहालु हृदयका पता लगता है, किसीकी चितवन और अधर देखते ही दुश्चरित्रताका सन्देह होता है और किसीकी उन्नत भौंहें, चौड़ा ललाट, तथा अधरोष्ठोंकी गठन देखते ही उसकी चिन्ताशीलता और दृढ़ प्रतिज्ञाका परिचय मिलता है। जो अपनी तीक्ष्ण बुद्धिकी सहायतासे मुख देखकर अन्तःकरणकी परीक्षा करनेमें सिद्धहस्त है, उन्हें ही कन्याको देखनेके लिए भेजना चाहिए—उन्हींसे कन्यानिर्वाचनका उद्देश्य सिद्ध हो सकता है।

एक उपाय और भी है, वह यह कि अपने सगे सम्बन्धियो या रिश्तेदारोंसे कन्याके सम्बन्धमें पूछताछ करना। यह ज़रूर है कि इस तरहकी पूछताछ करनेसे जो बातें मालूम होती हैं उनके झूठ और सच होनेका निर्णय सावधानीसे करना पड़ेगा। क्योंकि ऐसे बहुत लोग होते हैं जो निःस्वार्थ और निरपेक्ष भावसे ऐसी बातें नहीं बतेलाते। परन्तु कन्याके पक्षी और विपक्षी दोनोंकी बातें मालूम करके बहुत कुछ निर्णय किया जा सकता है। एक बात और है,—अपरि-

चिता कन्याकी अपेक्षा परिचिता कन्याका चुनाव करना बहुत सहज है। इस लिए पाठको, तुम्हें चाहिए कि अपने दरिद्र पड़ोसीकी जिस हँस-मुख कन्याको तुम सुशीला और बुद्धिमती जानते हो, अन्यत्रकी अप-रिचिता रूपवती और धनी कन्याका त्याग करके भी उसके साथ विवाह कर लो। ऐसा करनेसे तुम्हारा गृहस्थजीवन बहुत कुछ सुखमय हो जायगा।

तीसरा उपाय यह है कि कन्याके पिता, भाई, मामा आदिका स्वभाव जानकर उसके स्वभावका पता लगाना। कन्यामें बहुतसे गुण तो ऐसे होते है जो उसकी वंशपरम्परोंसे चले आये हैं और बहुतसे ऐसे होते है जो उसके पालनपोषण करनेवाले लोगोंके सहवास या प्रभावसे उत्पन्न हुए हैं। इसी कारण उसके कुटुम्बियोंका परिचय पाकर स्वयं उसका भी बहुत कुछ परिचय पाया जा सकता है। जिस घरके लोग मूर्ख और दुराचारी हैं उसे छोड़कर जिस घरके लोग सच्चरित्र और विद्वान् हैं उसी घरकी कन्या लाना चाहिए।

अब रूपके विषयमें विचार करना चाहिए। अँगरेज़ीमें एक कहावत है कि Health is beauty, अर्थात् स्वास्थ्य या निरोगता ही सौन्दर्य्य है। जहाँ नीरोगता नहीं वहाँ रूप नहीं। नीरोग शरीर और प्रफुल्ल मनके लिए अगोंका लावण्य अवश्य ही प्रयोजनीय है, परन्तु उसका अधिक विचार करनेकी ज़रूरत नहीं है। यदि अधिक रूप हुआ तो अच्छा ही है और न हुआ तो कोई हानि भी नहीं है। हमें उस सौन्दर्यके समझनेका अभ्यास करना चाहिए जो मनकी अच्छी वृत्तियोंके प्रभावसे मुखकी आकृतिमें झलका करता है और जो केवल आँखोंकी विशालता और नाककी ऊँचाईपर अवलम्बित नहीं है। प्रसिद्ध लेखक बाबू बंकिमचन्द्रने अपने ‘ कुन्दनन्दिनी ( विषवृक्ष )’

और 'कृष्णकान्तका बिल' नामक उपन्यासोंमे रूपज मोह और गुणज प्रेमका विश्लेषण करके दिखलाया है कि स्त्रीके रूपकी अपेक्षा गुणका मूल्य बहुत ही अधिक है।

इसके बाद कन्याकी शिक्षाके प्रबन्धमें विचार करना चाहिए। केवल पढ़ना जान लेनेसे शिक्षा नही होती। हमारी कन्यायें प्रायः ऐसे स्कूलोंमें शिक्षा पाती है जहाँ वे हमारी जातीय विशेषता और गौरवकी एक भी बात नहीं सीखतीं। जो अच्छी कन्यापाठशालायें या कन्याविद्यालय है वहाँ पढ़ाईका खर्च अधिक है इस लिए दरिद्रताके कारण लोग उनमे पढ़ानेका प्रबन्ध नहीं कर सकते। बहुत लोग यह सोच कर भी रह जाते है कि लड़कीके विवाहमें हज़ार दो हज़ार रुपये लगेंगे ही, तब उसको पढ़ानेके लिए ऊपरसे और अधिक ख़र्च क्यों करें? परन्तु अब उन्हें यह जाना लेना चाहिए कि आज कलके वर सुशिक्षित कन्याओंको बहुत पसन्द करते है इसलिए वे उन्हे मामूलीसे भी कम ख़र्च कराके खुशी खुशी लेनेके लिए राजी हो सकते है, और इस तरह केवल ख़र्चकी ओर नज़र रखकर भी विचार किया जाय तो कन्याकी शिक्षाके लिए खर्च करना फिजूल ख़र्च नहीं कहा जा सकता।

हमारी कन्याओंको किस प्रकारकी शिक्षा मिलनी चाहिए, इस विषयका विस्तारपूर्वक विवेचन करनेके लिए यहाँ स्थान नहीं है। तो भी संक्षेपत. यह कहा जा सकता सकता है कि स्कूलों और घरोंमे लड़कियोंको ऐसी शिक्षा मिलना चाहिए जिससे वे विवाह होनेके पश्चात् आदर्श गृहणियॉ वन सके। एक ओर तो वे पति और दूसरे कुटुम्बी जनोंकी सेवा शुश्रूषा कर सकें और दूसरी ओर अपनी सन्तानको वैज्ञानिक प्रणालीके अनुसार लालित पालित और शिक्षित कर

सकें। इसके लिए उन्हे किसी चतुर स्त्रीसे घरके काम काज अच्छी तरहसे सीखना चाहिए, रक्षकोंके पास या पुस्तक समाचारपत्रोंके द्वारा यह जानना चाहिए कि आजकलके युवकोंका चिन्ताप्रवाह किस प्रणालीसे बह रहा है और किस ओर जा रहा है, आरोग्यविज्ञान और शिशु-शिक्षाविज्ञानकी सहज सरल पुस्तकें पढना चाहिए और पुराणादि धर्मशास्त्रोंके स्वाध्याय और व्रतपालनके द्वारा धर्मनिष्ठ होना चाहिए। इस प्रकारकी सुशिक्षिता कन्याओंके साथ विवाह करनेके लिए किसी प्रकारके आर्थिक लाभकी अपेक्षा रक्खे बिना बहुतसे शिक्षित वर उत्सुक होंगे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। यह बड़े ही दुःखकी बात है कि हम लोगोंमें बहुत ही कम लोग ऐसे है जो स्त्रीशिक्षाके सम्बन्धमे विचार करते है और उसके लिए कुछ यत्न करते हैं। इस समय उपयोगी पुस्तकें रचने और आदर्श कन्याविद्यालय स्थापित करनेके लिए प्रत्येक देशहितैषी व्यक्तिको उद्योग करना चाहिए।

कन्याकी परीक्षा कर चुकनेपर उसके वंशका परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। इस विषयमें प्राचीन विद्वानोंकी सम्मति सर्वथा आदरणीय है। जिस वंशमें उन्माद, मूर्च्छा आदि वंशानुक्रमिक रोग है, जो वंश मूर्ख और अधार्मिक है, उसमें धन होनेपर भी कभी विवाह-सम्बन्ध न करना चाहिए। जिस वंशमें अनेक पंडितों और धर्मात्माओंने जन्म लिया है, विवाहके लिए वही वंश अच्छा और कुलीन है।

अन्तमें कन्यानिर्वाचनमें जो एक बड़ा भारी असुभीता है, उसका उल्लेख कर देना हम यहाँपर बहुत आवश्यक समझते हैं। इस समय हमारे देशमें चारों वर्णोंके भीतर इतनी अधिक जातियाँ और उपजातियाँ बन गई है कि उनकी गणना करना कठिन हो गया है। हमारे जैन-समाजमें भी जातियों और उपजातियोंकी कमी नहीं है और इससे प्रत्येक

जाति उपजातिकी संख्या बहुत ही कम हो गई है। एक उपजाति विवाहके लिए अपने ही भीतर सीमाबद्ध रहती है दूसरी उपजाति या जातिसे वह सम्बन्ध नहीं कर सकती और इससे बहुत स्थानोमे न तो योग्य वर मिल सकते है और न योग्य कन्यायें ही मिल सकती है। लाचार बेजोड़ या अयोग्य विवाहोंसे गृहस्थजीवन अतिशय दुःख--पूर्ण बनाया जाता है। इसके सिवा बहुतसे वर कन्याओंका रक्तसम्बन्ध अतिशय निकटका हो जाता है और इससे प्राचीन ऋषियोंकी आ--ज्ञाका पालन नही हो सकता है। शरीरशास्त्रज्ञ विद्वानोका सिद्धान्त है कि रक्तसम्बन्ध जितना ही दूरका होगा उतना ही अच्छा होगा। निकटका रक्तसम्बन्ध वंशवृद्धिका बहुत बड़ा घातक है। इस विपत्तिसे उद्धार पानेके लिए आवश्यक है कि उपजातियों और जातियोंका विवाहसम्बन्ध जारी कर दिया जाय। इसके द्वारा समाजका बहुत बड़ा उपकार होगा। *

---

## आवरण।

मनुष्यके पदतल ( तलुवे ) ऐसी खूबीसे बनाये गये थे कि खडे होकर पृथ्वीपर चलनेके लिए इससे अच्छी व्यवस्था और हो नहीं सकती थी। परन्तु जिस दिनसे जूतोका पहनना शुरू हुआ उस दिनसे पदतलोको धूल और मिट्टीसे बचानेकी चेष्टाने उनका प्रयोजन ही मिट्टी कर दिया। जिस गरजसे वे बनाये गये थे, उसे ही लोग भूल गये। इतने दिनोंतक पदतल सहज ही हमारा भार वहन करते थे, परन्तु अब पदतलोंका भार स्वय हम ही वहन करने लगे है। क्योंकि इस समय यदि हमें खाली पैर विना जूतोंके चलना पड़ता है

* एक बगला लेखका परिवर्तित अनुवाद।

तो पदतल हमारे सहायक न बनकर उलटे पदपद पर दुःखके कारण हो जाते हैं। केवल इतना ही नहीं, उनके लिए हमें सर्वदा ही सतर्क और सावधान रहना पड़ता है। क्योंकि यदि हम मनको अपने पदतलोंकी सेवामें नियुक्त न रक्खें तो आपत्ति उठानी पड़े। यदि उनमे थोड़ीसी सर्दी लग जाय तो छींके आने लगें और पानी लग जाय तो ज्वर चढ़ने लगे। तब लाचार होकर मोजे, स्लीपर, जूते, बूट आदि नाना उपचारोंसे हम इस उपाङ्गकी पूजा करते हैं और इसे सारे कर्मोंसे विमुक्त कर देते है अर्थात् पैरोंको किसी कामका नहीं रखते। ईश्वरने हमें यथेष्ट नहीं दिया, इसलिए मानो हम उसके प्रति यह एक प्रकारका उलहना देते है—यह बतलाते हैं कि तुम्हारे दिये हुए पदतल हमारी उक्त बाह्य पूजासामग्रीके विना किसी कामके नहीं।

विश्वजगत्, और अपनी स्वाधीन शक्तिके बीच, सुविधाओंके प्रलोभनसे हमने इसी तरह न जाने कितनी 'चीनकी दीवालें' खड़ी कर दी हैं। इस तरह संस्कार और अभ्यासपरम्परासे हम उन कृत्रिम आश्रयोंको सुविधा और अपनी स्वाभाविक शक्तियोंको असुविधा समझने लगे हैं। कपड़े पहन पहन कर हमने उन्हें इस पदपर पहुँचा दिया है कि कपड़े हमारे चमड़ेसे भी बड़े हो गये हैं। अब हम विधाताके बनाये हुए इस आश्चर्यमय सुन्दर अनावृत्त ( नग्न ) शरीरकी अवज्ञा या अवहेलना करने लगे हैं।

किन्तु जब हम पुराने समयपर दृष्टि डालते हैं तो माळूम होता है कि कपडों और जूतोंको एक अन्धेकी मूठके समान पकड़ रखना हमारे इस गर्मदेशमे नहीं था। एक तो सहज ही हम बहुत कम कपडोंका उपयोग करते थे; और फिर बचपनमें हमारे बच्चे बहुत समय तक कपड़े जूते न पहनकर अपने नग्न शरीरके साथ नग्न जगतका योग

बिना संकोचके बहुत अच्छी तरह किया करते थे। परन्तु इस समय हमने अँगरेज़ोंकी नकल करके शिशुओंके शरीर देखकर भी लज्जित होना शुरू कर दिया है। केवल विलायतसे लौटे हुए ही नहीं, शहरोंके रहनेवाले साधारण गृहस्थ भी आजकल अपने बच्चोंको किसी पाहुनेके सामने नंगा उघाड़ा देखकर संकुचित होते हैं और इस तरह बच्चोंको भी निजकी देहके सम्बन्धमें सकुचित कर डालते हैं।

ऐसा करनेसे हमारे देशके शिक्षितोंमें एक प्रकारकी बनावटी लज्जाकी सृष्टि हो रही है। जिस उमरतक शरीरके सम्बन्धमें किसी प्रकारकी कुण्ठा या लज्जा नहीं होनी चाहिए, उस उमरको अब हम पार नहीं कर सकते हैं—अब हमारे लिए मनुष्य, जन्मसे लेकर मरणतक लज्जाका विषय बनता जाता है। यदि कुछ समय तक और भी हमारी यही दशा रही, तो एक दिन ऐसा आ जायगा कि हम चौकी टेबिलोंके पायोको भी बिना ढका या नग्न देखकर लाल पीले होने लगेंगे!

यदि यह केवल लज्जाकी ही बात होती, तो मै आक्षेप नहीं करता। किन्तु इससे पृथ्वीपर दुःखकी वृद्धि होती है। हमारी लज्जाके कारण बच्चे व्यर्थ ही कष्ट पाते हैं। इस समय वे प्रकृतिके ऋणी हैं, सभ्यताका ऋण लेना उन्हें पसन्द ही नहीं। परन्तु बेचारे क्या करें; रोनेके सिवा उनके पास और कोई बल नहीं। अपने पालनपोषण करनेवालोंकी लज्जा निवारण करनेके लिए और उनके गौरवको बढ़ानेके लिए उन्हें जरी और रेशमके कपड़ोंसे घिरकर वायुके करस्पर्श और प्रकाशके चुम्बनसे वंचित होना पड़ता है। इससे वे रोकर और चिल्लाकर बधिर विचारकके कानोंके समीप शिशुजीवनका अभियोग उपस्थित किया करते हैं। परन्तु बेचारे यह नहीं जानते कि पितामातामें एक्जिक्यूटिव् ( कारगुज़ार ) और जुडीशल् ( अदालती ) एकत्र हो जानेसे उनका सारा आन्दोलन और आवेदन व्यर्थ हो जाता है।

इस पालनपोषण करनेवालोंको भी दुःख भोगना पडता है। क्यों कि अर्थ लज्जाकी सृष्टि होनेसे अनावश्यक उपद्रव बढ़ जाते हैं। जो सभ्य जन नहीं हैं केवल सरल सीधे सादे बच्चे है उन पर भी निरर्थक सभ्यता लादकर अपव्यय करना शुरू कर दिया जाता है। नग्नता या नगेपनमें एक बडी भारी खूबी यह है कि उसमें प्रतियोगिता या बदाबदी नहीं है। किन्तु कपड़ोंमें यह बात नहीं है। उनसे इच्छाओंकी मात्राये और आडम्बरोंके आयोजन तिल तिल करके बढ़ते ही चले जाते है। बच्चोंका नवनीत-कोमल, सुन्दर शरीर धनाभिमान प्रकाशित करनेका एक उपलक्ष्य बन जाता है और सभ्यताका बोझा निष्कारण अपरिमित और असह्य होता जाता है।

इस विषयमें अब हम डाक्टरी और अर्थनीतिकी युक्तियाँ और नहीं देना चाहते। क्योंकि यह लेख हम शिक्षाके सम्बन्धमें लिख रहे है। मिट्टी-जल-वायु-प्रकाशके साथ पूरा पूरा सम्बन्ध न होनेसे शरीरकी शिक्षा पूर्ण नहीं हो सकती। हमारा मुख जाडोंमे और गर्मियोंमें सर्वदा ही खुला रहता है, इसीसे हमारे मुखका चमड़ा अन्य सारे शरीरके चमडेकी अपेक्षा अधिक शिक्षित है—अर्थात् वह (मुख) इस बातको अच्छी तरहसे जानता है कि बाहरके साथ अपना सामञ्जस्य बनाये रखनेके लिए किस तरह चलना चाहिए। वह अपने आप ही सम्पूर्ण है—उसे कृत्रिम आश्रय लेनेकी आवश्यकता नहीं।

यहाँ हम यह कह देना आवश्यक समझते है कि हम मैंचेस्टरके व्यापारियोंको हानि पहुँचानेके लिए अँगरेजोंके राज्यमे नग्नताका प्रचार नहीं करना चाहते हैं। हमारा मतलब यह है कि शिक्षा देनेकी एक खास अवस्था है—और वह बाल्यकाल है। उस समय शरीर और मनको परिणत परिपक्व करनेके लिए प्रकृति देवीके साथ हमारा

बाधारहित–बेरोक संयोग होना चाहिए। वह ढँकने मूँदनेका समय नहीं है–उस समय सभ्यताकी ज़रा भी ज़रूरत नहीं। किन्तु उस उमरसे ही बच्चोंके साथ सभ्यताकी लड़ाई छिड़ी देखकर बड़ा ही दुःख होता है। बच्चा कपड़ा फेंक देना चाहता है; परन्तु हम उसे ढँके रखना चाहते हैं। वास्तवमे देखा जाय तो यह झगड़ा बच्चेके साथ नहीं किन्तु प्रकृतिजननीके साथ छिड़ा है। प्रकृतिमे एक बहुत पुराना ज्ञान मौजूद है। जिस समय कोई बच्चेको कपड़ा पहनाया जाता है उस समय प्रकृतिका वही ज्ञान उस बच्चेके रोनेके भीतरसे प्रतिवाद करने लगता है। हम सब उस प्रकृतिजननीके ही तो पुत्र हैं।

चाहे जैसे हो, सभ्यताके साथ थोड़ेसे अलगावकी जरूरत है। बच्चोको कमसे कम सात वर्षकी अवस्थातक सभ्यताके इलाकेसे जुदा रखना ही चाहिए। ये सात वर्ष हमने बहुत ही कम करके कहे हैं। इस अवस्थातक बच्चोंको न सज्जा ( साज शृंगार ) की ज़रूरत है और न लज्जाकी। इस समय तक बर्बरता या जगलीपनकी शिक्षा ही बहुत आवश्यक शिक्षा है–यह प्रत्येक बच्चेको मिलना ही चाहिए। प्रकृति देवीको यह शिक्षा बे-रोक टोक देने दो। इस समय भी यदि बच्चे पृथिवी माताकी गोदमें गिरकर धूल मिट्टीसे अपने शरीरको न रँगेगे, तो उन बेचारोंको यह सौभाग्य और कब प्राप्त होगा? वे यदि इस उमरमें भी झाड़ोंपर चढकर फल न तोड़ सके, तो हतभागे सभ्यताकी लोकलज्जामे उलझकर झाड़ पेड़ो और फल फूलोंसे जीवन भर भी हार्दिक सख्य न जोड़ सकेंगे। इस समय वायु, आकाश, मैदान, वृक्ष, पत्र, फूल आदिकी ओर उनके शरीर और मनका जो एक स्वाभाविक खिंचाव हुआ करता है–सब ही स्थानोंसे उनके पास जो निमंत्रण आया करता है, उसके बीच यदि कपड़े लत्तोंकी, द्वार दीवालोंकी

रुकावट डाल दी जाय तो बच्चोका सारा उद्यम रुक जाय और सड़ने लगे। क्योंकि जो उत्साह खुला हुआ क्षेत्र पाकर स्वास्थ्यकर होता है, वही बद्ध होकर दूषित हो जाता है।

ज्यों ही बच्चेको कपड़े पहनाये जाते है त्यों ही उसे कपडोंके विषयमें सावधान रखना पड़ता है--समझा देना पड़ता है कि कपड़े मैले न होने पावें। बच्चेका भी कुछ मूल्य है या नहीं, यह बात तो हम अकसर भूल जाते हैं, परन्तु दर्जीका हिसाव मुश्किलसे भूलते है। यह कपडा फट गया, यह मैला हो गया, उस दिन इतने दाम देकर इस सुन्दर अँगरखेको बनवाया था, अभागा न जाने कहाँसे इसमे स्याहीके दाग लगा लाया, इस तरह बीसों बातें कहकर बच्चेको खूब चपतें लगाई जाती हैं और कान ऐंठे जाते है। इस तरहकी शास्ति या दंडसे उसे सिखाया जाता है कि शिशुजीवनके सारे खेलों और सारे आनन्दोंकी अपेक्षा कपडोंकी कितनी अधिक खातिर करनी चाहिए-खेल कूद और आनन्दसे कपड़ोंका मूल्य कितना अधिक है। हमारी समझमें नहीं आता कि जिन कपड़ोंकी बच्चोंको कुछ भी आवश्यकता नहीं, उन कपडोंके लिए बेचारे इस तरह उत्तरदाता क्यों बनाये जाते है? और ईश्वरने जिन बेचारोंके लिए बाहरसे अनेक अबाध सुखोंका आयोजन कर रक्खा है और भीतर मनमें अव्याहत सुखोंके भोगनेका सामर्थ्य दिया है, उनके जीवनारम्भके सरल आनन्दपूर्ण क्षेत्रको न कुछ-अतिशय अकिंचित्कर पोशाककी ममतासे इस तरह व्यर्थ ही विघ्नसङ्कुल बनानेकी क्या ज़रूरत है? क्या यह मनुष्य सब ही जगह अपनी क्षुद्रबुद्धि और तुच्छ प्रवृत्तिका शासन फैलाकर कहीं भी स्वाभाविक सुखशान्तिके लिए स्थान न रहने देगा? यह एक बड़ी भारी ज़बर्दस्तीकी युक्ति है कि जो हमें अच्छा लगता है वह

चाहे जिस तरह हो दूसरोंको भी अच्छा लगना चाहिए। मालूम होता है कि हमने इस ज़बर्दस्तीकी युक्तिसे चारो ओर केवल दु:ख विस्तार करनेकी ही ठान ली है।

जो हो, प्रकृतिके द्वारा जो कुछ किया जाता है वह हमारे द्वारा किसी भी तरह नहीं हो सकता। इस लिए इस प्रकारका हट नहीं करके कि 'मनुष्यकी सारी भलाइयाँ केवल हम बुद्धिमान लोग ही करेंगे' हमें प्रकृतिदेवीके लिए भी थोड़ासा मार्ग छोड़ देना उचित है। प्रारम्भमें ही ऐसा करनेसे अर्थात् बालकोंको प्रकृतिके स्वाधीन राज्यमें विचरण करने देनेसे सभ्यताके साथ कोई विरोध खड़ा नहीं होता और दीवाल भी पक्की हो जाती है। ऐसा न समझ लेना चाहिए कि इस प्राकृतिक शिक्षासे केवल बच्चोंको ही लाभ होता है। नहीं, इससे हमारा भी उपकार होता है। हम अपने ही हाथोंसे सब कुछ आच्छन्न कर डालते हैं और धीरे धीरे उसासे अपने अभ्यासको इतना विकृत बना लेते हैं कि फिर स्वाभाविकको किसी प्रकार भी सहज दृष्टिसे नहीं देख सकते। हम यदि मनुष्यके सुन्दर शरीरको निर्मल बाल्यावस्थासे ही नग्न देखनेका निरन्तर अभ्यास न रक्खेंगे तो हमारी भी वही दशा होगी जो विलायतके लोगोंकी हो गई है। उनके मनमें शरीरके सम्बन्धमें एक विकृत् संस्कार जड़ पकड़ गया है और वास्तवमें वह संस्कार ही वर्वर और लज्जाके योग्य है; बच्चोंको नग्न रखना वर्वरता या लज्जाका विषय नहीं है।

हम मानते हैं कि सभ्य समाजमें कपड़ेलत्तोकी और जूते मोजोंकी भी आवश्यकता है और इसीसे इनकी सृष्टि हुई है-- किन्तु यह याद रखना चाहिए कि इन सब कृत्रिम आश्रयो या उपकरणोंको अपना स्वामी बना डालना और उनके कारण आपको कुण्ठित या संकुचित कर रखना

कभी अच्छा नहीं हो सकता। इस विपरीत व्यापारसे कभी भलाई नहीं हो सकती। कमसे कम भारतवर्षका जल वायु तो ऐसा अच्छा है कि हमें इन सब उपकरणोंके चिर-दास बननेकी कोई जरूरत नहीं है। पहले भी कभी हम इनके दास नहीं थे; हम आवश्यकता पड़नेपर कभी इनको काममें भी लाते थे और कभी इन्हें खोल कर भी रख देते थे। हम जानते थे कि वेश भूषा (कपड़े लत्ते पहनना, साज शृंगार करना) एक नैमित्तिक वस्तु है—इससे अधिक इसमें और कोई महत्त्व नहीं है कि यह कभी कभी हमारे प्रयोजनको साध देता है, अर्थात् हमें शीतादिके कष्टसे बचा देता है। बस, इसका हम पर इतना ही स्वामित्व था। इसी कारण हम खुला शरीर रखनेमें लज्जित नहीं होते थे और दूसरोंका भी खुला शरीर देखकर अप्रसन्न न होते थे। इस विषयमें विधाताके प्रसादसे यूरोप निवासियोंकी अपेक्षा हमें विशेष सुविधा थी। हमने आवश्यकतानुसार लज्जाकी रक्षा भी की है और अनावश्यक अतिलज्जाके द्वारा अपनेको भारग्रस्त होनेसे भी बचाया है।

यह बात स्मरण रखना चाहिए कि अतिलज्जा लज्जाको नष्ट कर देती है। कारण, अतिलज्जा ही वास्तवमें लज्जाजनक है। इसके सिवा जब मनुष्य 'अति' का बन्धन बिलकुल ही छोड देता है अर्थात् प्रत्येक बातमें जियादती करने लगता है तब उसे और किसी तरहका विचार नहीं रहता। यह हम मानते है कि हमारे देशकी स्त्रियाँ अधिक कपड़ा नहीं पहनती हैं किन्तु वे (विलायती मेमोंके समान) जान बूझ-कर सचेष्ट भावसे छाती और पीठके आवरणका बारह आना हिस्सा खुला रखके पुरुषोंके सामने कभी नहीं जा सकती। अवश्य ही हम लज्जा नहीं करते है, परन्तु साथ ही लज्जापर इस तरहका आघात भी नहीं करते है।

इस प्रबन्धमें लज्जातत्त्वकी मीमांसा करना हमारा उद्देश्य नहीं है, इस लिए इन बातोंको जाने दीजिए। हमने अभी तक जो कुछ कहा है उसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि मनुष्यकी सभ्यताको कृत्रिमकी सहायता लेनी ही पडती है। इस लिए इस ओर हमें सर्वदा ही दृष्टि रखनी चाहिए कि कहीं अभ्यासदोषसे यह 'कृत्रिम' हमारा स्वामी न बन बैठे और हम अपनी गढी या तैयार की हुई सामग्रीकी अपेक्षा अपने मस्तकको सर्वदा ही ऊँचा रख सके। हमारे रुपये जब हमको ही खरीद बैठे, हमारी भाषा जब हमारे ही भावोंकी नाकमे नकेल डालकर उन्हे घुमा मारे, हमारा साज-शृंगार जब हमारे अंगोको ही अनावश्यक करनेके लिए जोर लगावे, और हमारे 'नित्य' जब 'नैमित्तिको' के सामने अपराधियोंके समान कुठित हो रहें तब इस सभ्यताके सत्यानाशी अंकुशको ज़रा भी न मानकर हमे यह बात कहनी ही होगी कि यह ठीक नहीं हो रहा है। भारतवासियोंका खुला शरीर जरा भी लज्जाका कारण नहीं है; जिन सभ्यजनोंके नेत्रोंमे यह खटकता है उनके नेत्र ही स्वच्छ नहीं है—उनमें विकार हो गया है।

इस समय कपडों, जूतो और मोजोका जैसा सम्बन्ध शरीरके साथ चढ़ गया है उसी तरह पुस्तकोंका सम्बन्ध हमारे मनके साथ बढ़ता जा रहा है। अब हम लोग इस बातको भूलते जा रहे है कि पुस्तक पढ़ना शिक्षाका केवल एक सुविधाजनक सहारा भर है और पुस्तक पढ़नेको ही शिक्षा या शिक्षाका एक मात्र उपाय समझने लगे हैं। इस विषयमें हमारे इस संस्कारको हटाना बहुत ही कठिन हो गया है।

यह ठीक है कि आजकल शिक्षासम्बन्धी जो उल्टी गंगा बह रही है उसके कारण हमें बचपनहीसे पुस्तकें रटना पड़ती हैं; परन्तु

वास्तवमें पुस्तकोंमेंसे ज्ञानसञ्चय करना हमारे मनका स्वाभाविक धर्म नहीं है। पदार्थको प्रत्यक्ष देख सुनकर, हिला डुलाकर, परीक्षा करके ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और यही हमारे स्वभावका विधान है। दूसरोंका जाना हुआ या परीक्षा किया हुआ ज्ञान भी यदि हम उनके मुँहसे सुनते हैं (न कि पुस्तकोंमेंसे पढते है) तो हमारा मन उसे सहज ही स्वीकार कर लेता है। क्योंकि मुँहकी बात केवल 'बात' ही नहीं है, वह 'मुँहकी बात' है। उसके साथ प्राण है, मुख और नेत्रोंकी भावभगी है, कण्ठका तीव्र मन्द स्वर है और हाथोंके इशारे है। इन सबके द्वारा जो भापा कानोंसे सुनी जाती है वह सङ्गीत और आकारमें परिणत होकर नेत्र और कान दोनोंकी ज्ञेय या ग्रहणसामग्री बन जाती है। केवल यही नहीं, यदि हमको मालूम हो जाय कि कोई मनुष्य अपने मनकी सामग्री हमें प्रसन्न और ताजा मनसे दे रहा है—वह सिर्फ़ एक पुस्तक ही नहीं पढता जा रहा है, तो मनके साथ मनका एक प्रकारसे प्रत्यक्ष मिलन हो जाता है और इससे ज्ञानके बीच रसका सचार होने लगता है।

किन्तु दुर्भाग्यवश, हमारे मास्टर पुस्तक पढनेके केवल एक उपलक्ष्य है और हम पुस्तक पढनेके केवल एक उपसर्ग। अर्थात् हम जो पुस्तकें पढ़ते हैं उनमें मास्टर केवल थोड़ीसी सहायता देते है और पुस्तक पढ़नेमें हमारा अन्तःकरण केवल उतना ही काम करता है जितना उपसर्ग किसी शब्दके साथ मिलकर। इसका फल यह हुआ है कि जिस तरह हमारा शरीर कृत्रिम पदार्थोंकी ओटमे पड़कर पृथ्वीके साक्षात् संयोगसे वंचित हो बैठा है, और वञ्चित होकर इतना अभ्यस्त हो गया है कि उस संयोगको हम आज क्लेशकर और लज्जाकर समझने लगे है, उसी तरह हमारा मन, जगतके साथ

प्रत्यक्ष संयोग होनेसे जो स्वाद आता है उसकी शक्तिको एक तरहसे खो बैठा है। अर्थात् हमे सब पदार्थोंको पुस्तकके द्वारा जाननेका एक अतिशय अस्वाभाविक अभ्यास पड़ गया हैं। जो पदार्थ हमारे बिलकुल ही पास है उसे भी यदि हम जानना चाहते है तो पुस्तकके मुहँकी ओर ताकते है। एक नबाबसाहबके विषयमें सुनते है कि वे एक वार जूता पहना देनेके लिए नौकरके आनेकी राह देखने लगे और इतनेमे दुश्मनके हाथों कैद हो गये। पुस्तककी विद्याके फेरमे पड़कर हमारी मानासिक नबाबी भी इसी तरह बहुत ज़ियादा बढ़ गई है। तुच्छसे तुच्छ विषयके लिए भी यदि पुस्तक नहीं होती है तो हमारे मनको कोई आश्रय नहीं मिलता। और वडे भारी आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस विकृत सस्कारके दोषसे हममें जो यह नबाबी आ गई है उसे हम लज्जाकर नहीं किन्तु उलटी गौरवजनक समझते है—पुस्तकोंके द्वारा जानी हुई वातोंसे ही हम आपको पण्डित शिरोमणि मानकर गर्व करते है। इसका अर्थ यह है कि हम जगतको मनसे नहीं किन्तु पुस्तकोंसे टटोलते हैं।

इस बातको हम मानते है कि मनुष्यके ज्ञान और भावोंको सञ्चित कर रखनेके लिए पुस्तक जैसी सुभीतेकी चीज़ और कोई नहीं है। पुस्तकोकी कृपासे ही आज हम मनुष्यजातिके हज़ारों वर्ष पहलेके ज्ञान और भावोंको हृदयस्थ कर सकते है। किन्तु यदि हम इस सुभीतेके द्वारा अपने मनकी स्वाभाविक शक्तिको बिलकुल ही ढॅक डालें तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमारी बुद्धि 'बाबू' बन जायगी। इस 'बाबू' नामक जीवसे पाठक अवश्य ही परिचित होगें। जो जीव नौकर चाकर, माल असबाब, चीज़ वस्तुके सुभीतेके अधीन रहता है उसे 'बाबू' कहते है। बाबू लोग यह नहीं समझते कि अपनी शक्ति या

चेष्टाका प्रयोग करनेमें जो कष्ट और जो कठिनाई भोगनी पड़ती है उसी-से ही हमे वास्तविक सुख होता है और उसीसे, हम जो कुछ प्राप्त करते हैं, वह कीमती हो जाता है। पुस्तकपाठी बाबूपनेमें भी, वह आनन्द और वह सार्थकता नहीं रहती जो ज्ञानको स्वय अपनी चे-ष्टासे प्राप्त करनेमें या कठिन परिश्रमसे सत्यकी खोज करनेमें है। पुस्तकोंपर ही सारा दारोमदार रखनेसे धीरे धीरे मनकी स्वाधीन शक्ति नष्ट हो जाती है और उस शक्तिके सचालन करनेमें जो सुख है वह भी नहीं रहता, बल्कि यदि कभी उसको सचालन करनेकी आवश्यकता होती है तो उलटा कष्ट होता है।

इस तरह जब हमारा मन बचपनसे ही पुस्तक पढ़नेके आवरणसे ढॅक जाता है तब हम मनुष्योंके साथ सहज भावसे मिलने जुड़नेकी शक्तिको खो बैठते हैं। जो दशा हमारे कपडोंसे ढँक हुए शरीरकी हुई है—वह उघड़ा होनेमें सकोच करने लगा है वही दशा हमारे पुस्तकावृत मनकी भी हो गई है—वह भी बाहर नहीं आना चाहता। इस बातको हम प्रतिदिन ही देखते हैं कि सर्व साधारणका सहज भावसे आदर सत्कार करना, उनके साथ आत्मभावसे मिल जुलकर बातचीत करना आजकलके शिक्षितोंके लिए दिनपर दिन कठिन होता जाता है। वे पुस्तकके लोगोंको पहचानते हैं परन्तु पृथिवीके लोगोको नहीं पहचानते;—उनके लिए पुस्तकके लोग तो मनोहर हैं परन्तु पृथिवीके लोग श्रान्तिकर है। वे बड़ी बड़ी सभाओंमें व्याख्यान दे सकते हैं परन्तु सर्वसाधारणके साथ बातचीत नहीं कर सकते। बड़ी बड़ी पुस्तकोंकी आलोचना तो कर सकते है परन्तु उनके मुँहसे सहज बोलचाल—साधारण बातचीत भी अच्छी तरह बाहर नहीं नि-कलना चाहती। इन सब बातोसे कहना पडता है कि दुर्भाग्यवश ये

लोग पण्डित तो हो गये है किन्तु सच्चे मनुष्यत्वको खो बैठे है। यदि मनुष्योंके साथ मनुष्यभावसे हमारी गतिविधि या मेलजोल होता रहे, तो घरद्वारकी वार्ता, सुखदुःखकी जानकारी, वालबच्चोंकी खबर, प्रतिदिनकी अलोचना आदि सब बातें हमारे लिए बहुत ही सहज और सुखकर माळूम हों। परन्तु हमारी दशा इससे उलटी है। हमारे लिए ये सब बाते काठिन और कष्टकर है। पुस्तकोके मनुष्य गढ़ी–गढ़ाई बाते ही बोल सकते हैं और इसलिए वे जिन सब बातोमें हँसते है वे सचमुच ही हास्यरसात्मक होती हैं और जिन बातोमें रोते हैं वे अतिशय करुण होती हैं। किन्तु जो वास्तविक मनुष्य है उनका विशेष झुकाव रक्तमांसमय प्रत्यक्ष मनुष्योकी ओर होता है और इसीलिए उनकी बातें, उनका हँसना–रोना पहले नम्बरका नहीं होता। और यह ठीक भी है। वास्तवमे उनका, वे स्वभावतः जो हैं उसकी अपेक्षा अधिक होनेका आयोजन न करना ही अच्छा है। मनुष्य यदि पुस्तक बननेकी चेष्टा करेगा, तो इससे मनुष्यका स्वाद नष्ट हो जायगा–उसमे मनुष्यत्व न रहेगा।

चाणक्य पण्डित कह गये हैं कि जो विद्याविहीन है वे "सभा-मध्ये न शोभन्ते" अर्थात् सभाके बीच शोभा नहीं पाते। किन्तु सभा तो सदा नहीं रहती- समय पूरा हो जानेपर सभापतिको धन्यवाद देकर उसे तो विसर्जन करना ही पड़ती है। कठिनाई यह है कि हमारे देशके आजकलके विद्वान् सभाके बाहर "न शोभन्ते" शोभा नहीं देते।—वे पुस्तकके मनुष्य है, इसीसे वास्तविक मनुष्योंमें उनकी कोई शोभा प्रतिष्ठा नही। (अपूर्ण।)



# पुस्तक-परिचय ।

१. प्राचीन भारतवासियोंकी विदेशयात्रा और वैदेशिक व्यापार ।—लेखक, प० उदयनारायण वाजपेयी । प्रकाशक हिन्दी-ग्रन्थप्रकाशकमंडली, औरैया (इटावा) । पृष्ठ संख्या ७२ । मूल्य आठ आना । यह पुस्तक बड़े ही महत्त्वकी है । इसमें दश अध्याय हैं:— १ विदेशयात्रा ( संस्कृतग्रन्थोक्त प्रमाण ), २ विदेशयात्रा ( विदेशी-ग्रन्थोक्त प्रमाण), ३ प्राचीन भारतवासियोंके एशिया और मिश्रमें उप-निवेश, ४ भारतवर्षीय बौद्धोका अमेरिकामें धर्मप्रचार, ५ पश्चिम एशियामें भारतवासियोका राज्य, ७ भारत और फिनिशिया देशका व्यापार, ١٧ भारत और उसके निकटवर्ती पश्चिमी देशोंका व्यापार, ८ भारत और मिश्रका व्यापार, ९ भारत और रोमका व्यापार, १० भारत और अन्यान्य देशोंका व्यापार । इनके पढ़नेसे अच्छी तरह विश्वास हो जाता है कि भारतवासी प्राचीन समयमें एक संकीर्ण परिधिके भीतर रहनेवाले कूपमण्डूक न थे; वे दूरसे दूर तकके देशों और द्वीपोंमें जाते थे, दूर दूर जाकर बसते थे, राज्य स्थापित करते थे, अपने धर्मोंका और सभ्यताका प्रचार करते थे और इन सब कार्योंसे वे आपको सर्वशिरोमणि बनाये थे । इस प्रकारकी पुस्तकोंकी इस समय बड़ी आवश्यकता है । हमारा उक्त प्राचीन गौरव हममें यथेष्ट उत्साह और कार्यतत्परताकी वृद्धि करता है । पुस्तककी भाषा मार्जित और शुद्ध है । मूल्य बहुत जियादह है । मण्डलीको इस बात पर ध्यान देना चाहिए । एक बात और भी है, वह यह कि जिस बंगला मूल पुस्तकका यह संक्षिप्त और कुछ परिवर्तित अनुवाद है उसके लेखकका नामोल्लेख भी इसमें नहीं किया गया है । बंगला पुस्तकका नाम है 'भारतवासी दिगेर समुद्रयात्रा औ वाणिज्यविस्तार' ।

२. शिवाजीका आत्मदमन। लेखक प० काशीनाथ शर्मा। प्रकाशक, पं० खुन्नूलाल रावत, फर्रुखावाद। पृष्ठसंख्या ६६। मूल्य ≈)॥ आना। यह 'सुभे कल्याण' नामक मराठी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। इसमें वीरकेसरी शिवाजीके इन्द्रियनिग्रह सच्चरित्र और औदार्यका एक उपन्यास रूपमें प्रभावशाली चित्र खींचा गया है। इस प्रकारके ऐतिहासिक और शिक्षाप्रद उपन्यास हिन्दीमें बहुत थोड़े है। यद्यपि इसकी भाषा जितनी चाहिए उतनी अच्छी नहीं लिखी गई; उसमें मराठीपन बहुत अधिक रह गया है, तो भी भाव और शिक्षाके लिहाजसे इसकी गणना अच्छी पुस्तकोंमें करनी चाहिए। अनुवाद जिस भाषासे किया जाय, यदि अनुवादक उसका केवल भाव समझकर अपने शब्दोंमे उसे प्रकाशित करें--शब्दशः अनुवाद न करें, तो वे इस प्रकारके भाषादोषोंसे बच सकते है।

३. स्वर्गमाला—बनारससे इस नामकी एक ग्रन्थमाला अभी कुछ ही महीनोंसे प्रकाशित होने लगी है। इसके लेखक और प्रकाशक बाबू महावीरप्रसादजी गहमरी हैं। एक वर्षमें डवल क्राउन १६ पेजी साइजके १००० पृष्ठ निकलेंगे और उनका मूल्य सिर्फ़ दो रुपया होगा। अब तक इसके तीन खण्ड प्रकाशित हुए है और उनमें 'स्वर्गके रत्न' नामकी पुस्तक निकल रही है। संभवतः चौथे खण्डमें यह पुस्तक समाप्त हो जायगी। बडी ही अच्छी पुस्तक है। इसमें लगभग १०० उपदेश हैं और प्रत्येक उपदेश विस्तारके साथ तरह तरहके दृष्टान्तोंसे समझाया गया है। भाषा भी सरल और सबकी समझमें आने योग्य है। इसका प्रत्येक उपदेश सचमुच ही स्वर्गीय रत्न है। ग्रन्थकर्त्ताके बड़े ही ऊँचे उदार और धर्ममय भाव है। प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायका पुरुष इनसे लाभ उठा सकता है। इस समय भार-

तवर्ष पाश्चात्य सभ्यताकी नकल करके अपने आदर्शसे गिरता जाता है। उसका सहज सादा और सुखद जीवन, विलास वैभव और बाहरी आडम्बरोंसे दुरूह, पंकिल और क्लेशमय बनता जाता है। ऐसे समयमें इस प्रकारके उपदेशोंकी बहुत बड़ी जरूरत है। प्रकाशक महाशय हिन्दी साहित्यके एक बहुत आवश्यक भागकी पूर्ति करनेके लिए उद्यत हुए हैं। हमे उनका उपकार मानना चाहिए और ग्रन्थमा-लाके ग्राहक बनकर उनके उत्साहको बढ़ाना चाहिए। ग्रन्थमालामें आगे स्वर्गका खजाना, स्वर्गकी कुंजी, स्वर्गका विमान, आदि और इसी तरहकी कई पुस्तकें निकलनेवाली हैं। अपने जैन भाइयोंसे हम खास तौरसे सिफारिश करते हैं कि वे इस मालाको मँगाकर अवश्य ही पढ़ें।

४. शुश्रूषा—लेखक, पं० श्रीगिरिधरशर्मा, झालरापाटन। प्रकाशक, एस० पी० ब्रदर्स एण्ड कम्पनी, झालरापाटण। पृष्ठसंख्या २८२। मूल्य १) रु०। इन्दौर के सुप्रसिद्ध अनुभवी डाक्टर तॉवके मराठी ग्रन्थका यह हिन्दी अनुवाद है। रोगियोंको आरोग्य करनेके लिए जितनी आवश्यकता अच्छे डाक्टरोंकी चिकित्साकी है उतनी ही बल्कि उससे भी अधिक आवश्यकता रोगीकी सेवा या शुश्रूषाकी है। शुश्रूषा किस तरह करना चाहिए इसका ज्ञान न होनेसे हजारो रोगी औषधोपचार करते हुए भी जीवन खो बैठते है। यदि औषधिका भी प्रबन्ध न हो और रोगीकी अच्छी शुश्रूषा होती रहे, तो इससे उसके प्राण बच सकते हैं। इससे शुश्रूषाका महत्त्व मालूम होता है। साधारण लोग भी शुश्रूषा सम्बन्धी बातोंको समझ जावें, इसके लिए यह पुस्तक लिखी गई है। रोगीकी सेवा करनेका प्रसंग कभी न कभी सभी लोगोंपर आ जाता है, इसलिए

प्रत्येक गृहस्थके यहाँ ऐसी पुस्तकका रहना आवश्यक है। पुस्तकका प्रूफ़ अच्छी तरहसे नहीं देखा गया इस लिए भाषासम्बन्धिनी अशुद्धियाँ बहुत रह गई है। कागज भी हलका लगाया गया है। परन्तु पुस्तककी उपयोगिता देखते हुए ये दोष सर्वथा क्षम्य है। पं० श्री गिरधरशर्माको पुस्तकप्रणयनमें प्रवृत्त देखकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है। आशा है कि आपकी कलमसे हिन्दी साहित्यमें और भी अनेक ग्रन्थोंकी वृद्धि होगी।

नवजीवन बुकडिपो, बनारससे हमें निम्नलिखित चार पुस्तके प्राप्त हुई है—

५–६. **धर्मशिक्षा** प्रथम भाग और द्वितीय भाग—मूल्य चार आना और छह आना। कविराज पं० केशवदेव शास्त्री काशीके एक जोशीले विद्वान् है। हिन्दुओंमें नवीन जीवन डालनेके लिए आप बहुत प्रयत्न कर रहे है। वैदिक धर्मपर आपकी विशेष आस्था है। वैदिक सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके लिए इस समय आप अमेरिकामे घूम रहे हैं। ये दोनों पुस्तकें आपहीकी लिखी हुई है। दयानन्द हाईस्कूल काशीके विद्यार्थियोंकी ये पाठ्य पुस्तकें है। पहले भागमे मनुजीके बतलाये हुए धर्मके दशलक्षणो (धृति, क्षमा, दमन, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध) की व्याख्या है और वह बहुत अच्छे ढंगसे अनेक उदाहरण देते हुए की है। हमारी समझमे धर्मके उक्त लक्षण ऐसे है कि इनसे सब ही लोग लाभ उठा सकते हैं। दूसरे भागमें सदाचार निर्माणके मैत्री, करुणा, मुदता (प्रमोद) और उपेक्षा (माध्यस्थ) इन चार साधनोका विस्तारपूर्वक व्याख्यान है। जैनधर्ममें ये ही चार साधन चार भावनाओंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनसे विद्यार्थियोंके चरित्र पर सचमुच ही अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

**७. उपदेशमाला प्रथम भाग**—यह पुस्तक भी उक्त शास्त्रीजी-की ही लिखी हुई है। मूल्य चार आना। इसमें सत्य, आत्मविश्वास, उद्यम, जीवनसाफल्य, पुरुषार्थ, मधुर भाषण, शील, आदि विषयोंपर अच्छे अच्छे उपदेश है और साथ ही प्रत्येक विषयके कण्ठ करने योग्य सस्कृत श्लोक भी है।

**८. महाराष्ट्रोदय**—लेखक, पं० रामप्रसाद त्रिपाठी, बी. ए.। मूल्य डेढ़ आना। इस छोटेसे २३ पेजके निबन्धमें—महाराष्ट्र राज्यके उत्थानका, शिवाजी महाराजके चरितका और उनकी कार्यकुशलता वीरता आदिका वर्णन है। पढने योग्य है।

**९. धर्मवीर गॉधी**—लेखक, श्रीयुत सम्पूर्णानन्द बी. एस सी.। प्रकाशक, ग्रन्थप्रकाशक समिति, काशी। पृष्ठसख्या ९०। मूल्य चार आने। पाठकोंको दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासियोंकी लज्जा रखनेवाले और भारतका मुख उज्ज्वल करनेवाले कर्मवीर गाधीका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं। इस पुस्तकमें उक्त महात्माका ही आदर्श चरित लिखा गया है। प्रत्येक भारतवासीको यह चारित पढना चाहिए और जानना चाहिए कि देशसेवा करनेके लिए कैसे दृढ विश्वास, अध्यवसाय और पवित्र भावोंकी आवश्यकता है। इस पुस्तकसे जो कुछ लाभ होगा उसे समिति दक्षिण आफ्रिकाप्रवासियोंकी सहायतामें अर्पण करना चाहती है।

**१०. अनुभवानन्द**—लेखक, श्रीयुत शीतलप्रशादजी ब्रह्मचारी और प्रकाशक, जैनमित्र कार्यालय बम्बई। पृष्ट सख्या १२८। मूल्य आठ आने। इस पुस्तकका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसके सब लेख दो तीन वर्ष पहले जैनमित्रमे निकल चुके है। इसमें आध्यात्मिक विचार रूपकके रूपमें प्रगट किये गये है।

जैनसाहित्यमे अपने ढँगकी यह एक अच्छी पुस्तक है। इसकी समालोचना करनेके हम अधिकारी नही; परन्तु यह कह सकते हैं कि जैसी सरल और सुगम भाषामें यह लिखी जानी चाहिए था वैसीमे नहीं लिखी गई। वाक्यरचना और शब्द प्रयोगोंमें भी असावधानी हुई है। अनुभव और आनन्दकी एक स्वतंत्र लेख द्वारा विस्तृत व्याख्या कर दी जाती तो इसके पाठकोंको बहुत लाभ होता।

**११. नवनीत-प्रकाशक, ग्रन्थप्रकाशक समिति, काशी। वार्षिक मूल्य** दो रुपया। यह भी हिन्दीका एक मासिक पत्र है। इसके अबतक ७ अंक निकल चुके हैं। ७ वॉ अंक हमारे सामने है। यह रामनवमीका अंक है, इस लिए इसमे अधिकाश लेख और कवितायें श्रीरामके सम्बन्धमें हैं। लेख प्रायः सभी अच्छे और पढने योग्य है। इसके कई लेखक दाक्षिणत्य हैं और वे अच्छी हिन्दी लिख सकते है। 'युधिष्ठिरकी कालगणना' नामक लेखमें विष्णुपुराणके प्रमाणसे कृष्ण और युधिष्ठिरका समय निश्चित किया गया है। श्रीकृष्णजी इस संसारमें १२५ वर्ष रहे। कलिसंवत् १२००के लगभग महाभारतके युद्धके ३६ वर्ष बाद उनका तिरोधान हुआ। भारतके बाद १००० वर्ष तक जरासन्धके वंशमें, १३८ वर्ष प्रद्योत अमात्यके वंशमें, ३६२ वर्ष शिशुनागवंशमे, और १०० वर्ष नवनन्दोंके वंशमे भारतका राज्य रहा। इसके बाद मौर्य चन्द्रगुप्त राजा हुआ। चन्द्रगुप्त ईसाके ३१५ वर्ष पहले हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि आजसे १९१३+३१५+१००×१००० +३८+३६२−३६=३७९२ वर्ष पहले श्रीकृष्णका देहान्त हुआ था। एक लेखमें यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि रामायणसे महाभारत पीछेका ग्रन्थ है। परन्तु इस लेखकी केवल उत्थानिका ही इस अंकमें है। ऐसे लेख जहॉ तक हो अधूरे प्रकाशित न किये

जावे तो अच्छा हो। रामचरितसे क्या क्या शिक्षायें मिल सकती हैं और रामचरितमें क्या महत्त्व है यह कई लेखोमे समझाया गया है। हम आशा करते हैं कि हिन्दीप्रेमी इस पत्रका आदर करेंगे।

१२. **आरोग्यसिन्धु**—सम्पादक, राधावल्लभ वैद्यराज और प्रकाशक पं० व्रजवल्लभ मिश्र, अलीगढ। वार्षिक मूल्य १॥)। यह खुशीकी वात है कि हिन्दीमें अब वैद्यकसम्बन्धी भी कई पत्र निकलने लगे हैं। इसके अव तक ६-७ अंक निकल चुके हैं। चौथा पाँचवाँ सयुक्त अक हमारे पास समालोचनाके लिए आया है। इसमें क्षयरोग, रसायन ओषधियोंसे आयुवृद्धि, आयुर्वेदका ऐतिहासिक महत्त्व, वेदोमें औषधि-प्रार्थना, आयुर्वेदमें भूतविद्या आदि कई उपयोगी लेख हैं। जो लोग वैद्यकसम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं इस पत्रको उन्हे आश्रय देना चाहिए। पत्रकी भाषामे कुछ सशोधनकी आवश्यकता है।

१३. **मनोरंजनका विशेष अङ्क**—सम्पादक और प्रकाशक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, आरा। मूल्य १)। यह बड़ी ही प्रसन्नताकी वात है कि हिन्दीका मासिक साहित्य दिनो दिन उन्नति कर रहा है। इस विषयमें वह मराठी और गुजरातीका भी नम्बर ले रहा है। इस समय हिन्दीमे कई अच्छे मासिक पत्र निकल रहे है। आराका मनोरंजन भी उनमेंसे एक है। इसने अव दूसरे वर्षमें पैर रक्खा है और बड़े उत्साहसे अपना यह विशेष अंक प्रकाशित किया है। इस अंकमें ६-७ चित्र और ३५ लेख तथा कवितायें हैं। हिन्दीके नामी नामी लेखको और कवियोकी रचनासे यह विभूषित है। कवरपेज कई रगोंमे सचित्र छपा है। खर्च खूब किया गया है। हिन्दी प्रेमियोंको इसे अपनाना चाहिए।

१४. जैनहितेच्छु अंक १, २—प्रकाशक, शकराभाई मोतीलाल शाह, सारंगपुर, अहमदाबाद। यह गुजराती भाषाका मासिक पत्र है। हिन्दीके भी एक दो लेख इसमें रहते हैं। नये वर्षसे इसकी पृष्ठसंख्या लगभग दूनी कर दी गई है। मूल्य मय उपहारकी पुस्तकके दो रुपया वार्षिक है। इसके मुख्य लेखक श्रीयुत वाडीलालजी बड़े ही उदार और मार्मिक लेखक है। इस अंकके प्रत्येक पृष्ठसे उनकी उदारता, समदृष्टिता और मार्मिकता प्रगट होती है। जैनधर्मके तीनों सम्प्रदायोंकी भलाई, उन्नति और प्रगतिका इसमें सदेशा है। इसका 'जूनुं अने नवुं' नामका पहला लेख बड़ा ही हृदयद्रावक है। प्रासंगिक नोट बड़ी ही निष्पक्ष दृष्टिसे लिखे गये हैं। इसके 'जैन बनवा थी उभी थती मुश्केलीओ' शीर्षक लेखका अनुवाद हम पिछले अंकमें प्रकाशित कर चुके है। जो सज्जन गुजराती समझ सकते हैं उन्हें इस पत्रके अवश्य ही ग्राहक होना चाहिए। क्या ही अच्छा हो, यदि इस पत्रका एक हिन्दी संस्करण भी निकलने लगे।

१५. जैनांतील पोटजाति—दक्षिण महाराष्ट्र जैनसभाकी ओरसे एक ट्रेक्ट-माला प्रकाशित होती है। उसका यह ५ वॉ ट्रेक्ट है। इसके लेखक हैं प्रसिद्ध जैनकवि दत्तात्रय भीमाजी रणदिवे। इसमें सुधारक और रूढिभक्त ऐसे दो जैन बन्धुओंका मराठी पद्यरूपमें वार्तालाप है और उसमें यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की गई है कि जैनोंमें सैकड़ों अन्तर्जातियॉ हैं और उनमें पारस्परिक रोटीबेटी-व्यवहार नहीं होता है। इससे जैनसमाजकी बहुत हानि हो रही है। यह भेद एकता, समता, पारस्परिक सहानुभूति, परदुःखकातरता, वात्सल्य आदि गुणोंका घातक है। इससे व्यर्थ अभिमान, घृणा, द्वेष आदि दुर्गुणोंकी सृष्टि होती है। यह भेदभाव पहले नहीं था।

प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पिछले अशान्तिप्रद और कष्टकर समयमें इसकी उत्पत्ति हुई है। इत्यादि। रचना प्रभावशालिनी है। जोशमें आकर कवि महाशय कहीं कहीं बहुत आगे बढ़ गये हैं। इस तरहके समाजसुधार सम्बन्धी ट्रैक्टोंकी हिन्दीमें भी बहुत जरूरत है।

नीचे लिखी पुस्तकें भी प्राप्त हो चुकी हैं:—

१ माधवी और २ श्रीदेवी—लेखक, रूपकिशोर जैन। प्रकाशक, फ्रेंड एंड कम्पनी, मथुरा। ३ विद्योन्नति संवाद और ४ पद्यकुसुमावली (मराठी)—प्रकाशक, हीराचन्द मलूकचन्द काका, शोलापुर। ५ प्रार्थनाविधि—प्रकाशक, कविराज पं० केशवदेवशास्त्री, काशी। ६ हस्तिनापुर तीर्थकी रिपोर्ट। ७ चतुर्विध दानशाला शोलापुरकी रिपोर्ट। ८ जैन पाठशाला मुड़वाराकी रिपोर्ट। ९ अभिनन्दन पाठशाला ललितपुरकी रिपोर्ट। १० श्रीसामायिक सूत्र।

---

## तेरापंथियोंका सौभाग्य और गुरुओंकी दुर्दशा।

पाठक महाशय, मैं दिगम्बर जैनधर्मका अनुयायी हूँ और आम्नाय मेरी तेरापंथी है। आप जानते है कि तेरापंथियोंमें इस समय गुरुपरम्परा नहीं है। महावीर भगवानने जिस प्रकारके साधुओं या गुरुओंको पूज्य बतलाया है उस प्रकारके गुरु इस कालमें नहीं हैं, इस कारण तेरापंथी किसीको अपना गुरु नहीं मानते। जिस समय मेरे विचार बहुत ही अपरिपक्व थे, उस समय मैं यह जानकर बहुत ही दुखी होता था कि हम लोगोंमें गुरुओंका अभाव है और इस कारण हमसे लोग 'निगुरिया' कहते हैं। मैं समझता था कि हमारा धर्म बहुत ही श्रेष्ठ

है—उसके सिद्धान्त बहुत ही उच्चश्रेणीके है, परन्तु गुरुओंके अभावसे उनका प्रचार नहीं हो सकता है। गृहस्थ लोग जैनधर्मका थोड़ा बहुत प्रचार बढ़ा सकते हैं परन्तु जिसको सच्चा या पूरा प्रचार कहते हैं वह बिना गुरुओंके नहीं हो सकता। इसके बाद जब मैं कुछ अधिक समझने लगा;—जैनधर्मके दूसरे संप्रदायोंका हाल समाचारपत्रोंके द्वारा जानने लगा, तब मैं गुरुओंकी आवश्यकताको और भी अधिक अनुभव करने लगा। अब मुझे धार्मिक कार्योंके समान सामाजिक कार्योंके लिए भी गुरु आवश्यक जान पडे। इस समय मुझे लेख लिखनेका शौक होगया था—दो चार छोटे मोटे लेख मैं प्रकाशित भी करा चुका था। मेरा साहस बढ़ गया था, इसलिए मैंने इस विषयमें भी एक लेख लिख डाला और एक जैनपत्रमें उसको प्रकाशित भी करा दिया। उसमे सबसे अधिक जोर इस बातपर दिया था कि जैसे बने तैसे गुरुपरम्पराको फिरसे जारी करना चाहिए। हमारी जो धार्मिक और सामाजिक अधोगति हुई है उसका कारण गुरुओंका ही अभाव है। गुरुओंका शासन न होनेसे हमारे आचारविचार उच्छृंखल होगये हैं, धर्मके उपदेशोंसे हम वञ्चित रहते है और सामाजिक कामोंमें निडर होकर मनमाना वर्ताव करते है। हमारी पंचायतियाँ अन्तःसारशून्य हो गई हैं। उनमें न्याय नहीं होता, क्योंकि स्वयं न्याय करनेवाले ही अन्यायाचरण करते हैं। इसके कुछ दिनों बाद मुझे मालूम हुआ कि दक्षिण तथा गुजरातमें भट्टारक लोग हैं और वे दिगम्बर सम्प्रदायके गुरु समझे जाते है। मै जहाँका रहनेवाला हूँ, वहाँ केवल एक तेरापंथ आम्नायके ही माननेवाले हैं, इसलिए उस समय मेरा भट्टारकोंसे अपरिचित होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। भट्टारकोंके माहात्म्यकी कुछ कल्पित और सच्ची किंवदन्तियाँ मैने उसी समय सुनीं। फिर क्या था,

मुझे भट्टारकोंपर श्रद्धा होने लगी। यद्यपि मै यह जानता था कि परिग्रहके धारण करनेवाले साधु दिगम्बर सम्प्रदायके गुरु नहीं हो सकते हैं; परन्तु गुरुओंकी आवश्यकता मुझे इतनी अधिक प्रतीत होती थी उनके बिना मैं अपने धर्म और समाजकी इतनी अधिक हानि समझ रहा था कि भट्टारकोंके अस्तित्वकी अवहेलना मुझसे न हो सकी। मैंने अपने दिगम्बरानुरक्त मनको इस युक्तिसे सन्तुष्ट किया कि भट्टारक हमारे गुरु अवश्य हैं परन्तु वे निर्ग्रन्थाचार्य नहीं किन्तु गृहस्थाचार्य है और एक प्रकारके गृहस्थ होकर भी वे हमारे गुरुओंके अभावको थोड़ा बहुत पूर्ण कर सकते हैं। इस विश्वाससे मैं भट्टारकश्रद्धा बढ़ाने और उसके प्रचार करनेका प्रयत्न करने लगा।

इसी समय मुझे दो चार श्वेताम्बर साधुओंके कार्योंका पता लगा। उनके प्रयत्नसे तथा उपदेशसे अनेक धनी श्रावकोंने विद्याप्रचार, पुस्तक-प्रचार आदिकी कई सस्थायें खोली थी और उनमें लाखों रुपया खर्च किया था। यह उस समयकी बात है जब कि दिगम्बरसमाज बिलकुल निश्चेष्ट था। महाविद्यालयादि एक दो छोटी छोटी सस्थाओंको छोड़कर उसकी और कोई संस्था नहीं थी। ऐसी अवस्थामें गुरुओंके अभावको अतिशय दुःखमय अनुभव करना मेरे लिए बिलकुल स्वाभाविक था। मै निरन्तर इसी विचारमें निमग्न रहने लगा। कई बार मेरी इच्छा हुई कि भट्टारकोंके विषयमें कुछ लिखनेका प्रयत्न करूँ; परन्तु विचारसहिष्णुताकी एक तिनकेके भी बराबर कदर न करनेवाले कट्टर तेरापंथियोंके डरके मारे मुझे साहस न हुआ। अपने विचारोंको अपने ही मनमें मसोसकर मैं ससारकी प्रगतिको चुपचाप देखने लगा।

तबसे अब तक कई वर्ष बीत गये। इस बीचमें मुझे कई भट्टारकोंसे, कई श्वेताम्बर साधुओसे, कई स्थानकवासी मुनियोंसे, कई क्षु-

ल्लक ऐलकोंसे, कई गुसाईंयोंसे, और कई वैष्णव, रामानुजी आदि साधुओंसे मिलनेका तथा परिचय प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। विचार सदा एकसे नहीं रहते, उनमें कुछ न कुछ परिवर्तन निरन्तर ही हुआ करता है। इस लिए यह नहीं कहा जा सकता कि मैं अपने वर्तमान विचारोंपर आगे भी स्थिर रहूँगा; परन्तु इस समय उक्त सब साधुओंको देखकर मेरे जो विचार वने हैं उनका प्रकट कर देना मै आवश्यक समझता हूँ और उनसे कमसे कम उन लोगोंको लाभ पहुँचनेकी आशा करता हूँ जो कि मेरे ही जैसे अपरिणतबुद्धि हैं।

पाठक, अब मुझे गुरुओंकी उतनी अधिक आवश्यकता नहीं मालूम होती जितनी कि पहले मालूम होती थी। मुझे इस बातसे अब दुःख नहीं होता वल्कि प्रसन्नता होती है कि हमारे यहाँ गुरु नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदायके एक बड़े भारी हिस्सेका मै यह बड़ा भारी सौभाग्य समझता हूँ कि वह गुरुओंके दुःशासनकी पीड़ासे द्रोपदीके समान दुःख और लज्जासे म्रियमाण होनेके लिए लाचार नहीं हुआ है। क्यों कि इस समय इनके नाम बड़े और दर्शन छोटे हैं। साधु, मुनि, यति, भट्टारक, महात्मा आदि नामोंको ये वदनाम कर रहे हैं। यह इन्हीं महात्माओंके चरित्रोंका प्रभाव है जो विदेशी लोग हमारे भारतके धर्मोंको घोर कुसंस्काराच्छन्न और गिरा हुआ समझते हैं और उनपर तरह तरहकी वाग्वाणवर्षा किया करते हैं। वे समझते हैं कि वर्तमान साधु सन्यासी ही भारत धर्मोंके प्रतिपादित साधु है। यहाँके धर्मोंमें साधुओंके चरित्रकी परिभाषा यही है।

भारतका साधुसम्प्रदाय नीचताकी चरम सीमापर आपहुँचा है। इससे अधिक इसकी और क्या दुर्दशा होगी कि आज यहाँके जितने भिखमँगे हैं वे प्रायः अपनेको साधु ही वतलाते हैं। अर्थात् साधुका

अर्थ अब भिखमंगा हो गया है और इस समय दरिद्र भारतवासियोंके सिरपर इस प्रकारके ५२ लाख साधुओंके पालनपोषणका असह्य भार पड रहा है।

हाय! जिन साधुओं और स्वार्थत्यागियोंकी कृपासे भारतवर्ष सदाचारकी मूर्ति, नीतिमत्ताका उदाहरण, विद्याका भण्डार, धार्मिक भावोंका आदर्श, धनी, मानी, वीर और जगद्गुरु समझा जाता था, उन्हींके भारसे अब यह इतना पीडित है कि देखकर दया आती है। इनेगिने थोडेसे महात्माओंको छोडकर जितने साधु नामधारी हैं वे सब इसकी जर्जर देहको और भी जर्जरित कर रहे हैं। कोई हमें धर्मका भयकर रूप दिखलाकर जडकाष्ठवत् बनकर पडे रहनेका उपदेश रहा है, कोई अंधश्रद्धाके गहरे गढेमें ढकेल रहा है, कोई कुसंस्कारोंकी पट्टीसे हमारी आँखें बन्द कर रहा है, कोई आपको ईश्वरका अवतार बतलाकर हमसे अपना सर्वस्व अर्पण करा रहा है, कोई तरह तरहके ढोंगोंसे अपनी दैवीशक्तियोंका परिचय देता हुआ हमारा धन लूट रहा है, कोई व्यर्थ कार्योंमें हमारे करोड़ों रुपया बरबाद करा रहा है, कोई गृहस्थोंको धर्मशास्त्रोंके पढ़नेके अधिकारसे वंचित कर रहा है, कोई अपनी प्रतिष्ठाके लिए हमारे समाजोंको कलहक्षेत्र बना रहा है, कोई गाँजा, भाँग, तमाखूको योगका साधक बतला रहा है और कोई अपने पतित चरित्रसे दूसरोंको पतित करनेका मार्ग साफ़ कर रहा है। शिक्षित समाजका अधिकाश तो इनकी चुगलमें नहीं फँसता है परन्तु हमारे अशिक्षित भाइयोंको तो ये रसातलमें पहुँचा रहे है। ऐसी दशामें मै सोचता हूँ कि यदि तेरापथी लोग गुरुरहित हैं, तो इसको उनके बडे भारी पुण्यका ही उदय समझना चाहिए।

इस विषयमें तो तेरापथी ही क्यों एक तरहसे समग्र जैन धर्मानुयायी ही भाग्यशाली हैं कि उनके यहाँ उक्त ५२ लाखकी श्रेणीवाले

साधु उर्फ भिखमंगोंकी गति नहीं है—इस श्रेणीके साधुओंका भार उनके सिरपर नहीं है। अभी तक जैनधर्मके 'साधु' नामकी बहुत कुछ प्रतिष्ठा बनी हुई है।

किन्तु जैनधर्मके साधुओंका जो अतिशय उच्च आदर्श है, उससे तो हमारे वर्तमान साधु भी कुछ कम पतित नहीं हुए हैं—इस खयालसे तो उन्हे औरोंसे भी अधिक गिरा हुआ कहना पड़ता है। जैनसिद्धान्तके अनुसार साधु, मुनि या यति वह कहला सकता है जिसने सांसारिक विषयवासनाओंसे सर्वथा मुँह मोड़ लिया है, किसी भी प्रकारका परिग्रह जिसके पास नहीं है, संसारके कोलाहलसे ऊब कर जो निर्जन स्थानोंमें रहकर मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंको बढ़ाता है, संसारके लोगोंसे जिसका केवल इतना ही सम्बन्ध है कि उनके कल्याणकी वह इच्छा रखता है और अवसर मिलनेपर उन्हें धर्मामृतका पान कराता है; सारी इन्द्रियाँ जिसकी दासी हैं, धनमान प्रतिष्ठाको जो तुच्छ समझता है, बुराई करनेवालोंका भी जो कल्याण चाहता है, करुणा और क्षमाका जो अवतार है, किसी भी धर्म, मत या सम्प्रदायसे जिसे द्वेष नहीं, जो सत्यका परम उपासक है, हठ या आग्रह जिसके पास नहीं और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी एकतासे जो मोक्ष मार्ग मानता है। देखिए, यह कितना ऊँचा आदर्श है और फिर अपने साधु महात्माओंकी ओर भी एक नजर डालिए कि वे इस आदर्शसे कितने नीचे गिरे हुए हैं।

पहले भट्टारकोंको ही लीजिए। उनके पास लाखोंकी दौलत है, गाडी, घोडा, पालकी, नोकर, चाकर, आदि राजसी ठाटबाट हैं, जो भोगोपभोगकी सामग्रियाँ गृहस्थोंको भी दुर्लभ हैं वे उनके सामने हर वक्त उपस्थित है। दयामया इतनी है कि श्रावकोंके द्वारपर धरना

देकर रुपया अदा करते हैं। ज्ञान इतना है कि स्वयं ही आपको कुन्दकुन्द महर्षिके प्रतिरूप समझते हैं। श्रद्धान इतना दृढ है कि हमारी पादपूजा किये विना श्रावकोंका कल्याण ही नहीं हो सकता और चारित्र--चारित्रके विषयमें तो कुछ न कहना ही अच्छा है। यह दशा होनेपर भी ये समझते हैं कि श्रावकोंपर शासन करनेका हमको स्वाभाविक स्वत्व है--हम भगवान्के यहाँसे इनके साथ मनमाना वर्ताव करनेका पट्टा ही लिखा कर ले आये हैं।

अब जरा श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंकी ओर भी एक दृष्टि डाल जाइए। इनमें यति महाशय तो इतने अधिक गिर गये हैं कि उनपरसे स्वयं श्वेताम्बरी श्रावकोंकी ही श्रद्धा हट गई है। सुनते हैं कि अधिकांश यति लोग साधारण श्रावकोंके समान परिग्रह रखते और रोजगार आदि करते हैं। वैद्यक, ज्योतिष, मन्त्र, यंत्र, तंत्रादि इनके प्रधान व्यवसाय हैं। दूसरे प्रकारके संवेगी आदि साधुओंमें बहुतसे सज्जन विद्वान् और धर्मोन्नति करनेवाले हैं और उनका आचरण भी प्रशंसनीय है। परन्तु औरोंके विषयमें यह बात नहीं है; वे अपने पदसे बहुत ही नीचे गिरे हुए हैं।*

---

* श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायमें मुनि आर्यिकाओंकी संख्या बहुत अधिक है—प्रतिवर्ष ही अनेक नये साधु और आर्यिकायें बनती हैं। इन नये दीक्षितोंमें अधिक लोग ऐसे ही होते हैं जिनकी उमर बहुत कम होती है और इसका फल यह होता है कि युवावस्थामें जब उनकी इन्द्रियोंका वेग बढता है तब वर्तमान देशकालकी परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बन रही हैं कि वे आपको नहीं सँभाल सकते और बहुत ही नीचे गिर जाते हैं। अपरिपक्वावस्थाका उनका क्षणिक वैराग्य और संयम इस समय उनकी रक्षा नहीं कर सकता। दीक्षाकी इस प्रणालीको संशोधन करनेकी बहुत जरूरत है, परन्तु अपने शिष्यपरिवारको बढ़ानेकी धुनमें लगे हुए साधु इस प्रकारके संशोधनका घोर विरोध करते हैं और बहुतसे अन्धश्रद्धालु श्रावक भी उनकी हाँमें हाँ मिला रहे हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदायके कुछ साधुओंके विषयमें मेरे अभिप्राय बहुत ऊँचे थे-मैं उन्हें बहुत ही श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता था; परन्तु दो तीन वर्षसे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जो एक तुमुल संग्राम मच रहा है और जिसका नेतृत्व इन साधु महाराजाओंके ही हाथमें है--उसका भीतरी हाल सुनकर मेरे हृदयपर बड़ी गहरी चोट लगी है और इसी लिए मेरा यह विचार बना है कि तेरापंथी लोग इस विषयमें बड़े ही भाग्यशाली हैं। पं० लालन और शिवजी भाईके सम्बन्धको लेकर इन महात्माओंके जो लेख निकले थे और अभी हालमें अहमदाबादके एडवोकेट और भावनगरके जैन शासनमें जो कषायविषसे बुझे हुए वाग्बाणोंकी वर्षा हो रही है उन्हें पढ़कर हृदयमें बड़ी ही ग्लानि उत्पन्न होती है। क्या ये ही हमारे मैत्री--प्रमोद--कारुण्य--माध्यस्थ--भावनाओंका चिन्तवन करनेवाले, समिति और गुप्तियोंके पालन करनेवाले, सांसारिक भोगों और मान बड़ाईकी इच्छा न रखनेवाले मुनिराज हैं, जिनके घृणित चरित्र सुनकर कानोंमें उँगली देनी पड़ती हैं, कटु और निन्द्यवचन सुनकर लज्जासे नीचा सिर कर लेना पडता है और एक दूसरेको नीचा दिखानेकी कोशिशमें लगे देखकर दयासे द्रवित होना पड़ता है। एक महाशय लोभी पण्डितोंसे ऊँची पदवी प्राप्त करनेकी कोशिश कर रहे हैं। दूसरे यद्यपि स्वयं इसी युक्तिसे पदवी लेकर जगद्गुरु बन बैठे हैं परन्तु पहलेकी कोशिशका भंडा फोड़ कर रहे हैं। तीसरे अपनी कीर्त्तिका शङ्खरव करनेके लिए शिष्योंद्वारा तरह तरहके प्रयत्न कर रहे हैं। चौथे गौराङ्गों द्वारा अपना गुणगान कराके आसमानपर चढ़ जा रहे हैं। पाँचवें एक स्वाधीन विचारके सम्पादकको जेलकी हवा खिलानेके शुक्ल ध्यानमे मस्त हैं। छठे अपने विरुद्धमें कुछ कहनेवालोंपर कलम--कुठार चला रहे है और साथ ही नरकमें जानेकी

धमकी दे रहे हैं। सातवें रुपयोंके दो चार गुलामोंको फुसलाकर उनसे जैनधर्मकी प्रशसा कराके आपको कृतकृत्य मान रहे है और आठवें दिगम्बर स्थानकवासी आदि सम्प्रदायोंको बुरा भला कह कर कलहका बीज बो रहे है। इस तरह कितने गिनाये जावं, एकसे एक बढकर काम कर रहे हैं और अपने मुनि साधु आदि नामोंको अन्वर्थ सिद्ध कर रहे है। अब पाठक सोच सकते हैं कि जैनधर्मके ऊँचे आदर्शसे हमारे साधु कितने नीचे आ पड़े हैं।

तेरापंथी दिगम्बरी भाइयोंके कन्धोंपर साधुओंका यह कष्टप्रद जूआँ नहीं है, इसलिए मेरे समान उन्हें भी प्रसन्न होना चाहिए था; परन्तु देखता हूँ कि उनका ऐसा ख़याल नहीं है और इसलिए वे एक दूसरी तरहके जूएँको कन्धोपर धरनेका प्रारंभ कर चुके हैं। कई प्रतिष्ठा करानेवाले और कई अपनी प्रतिष्ठा बढानेवाले पंडितोंने तो उनकी नकेल बहुत दिनोंसे अपने हाथमें ले ही रक्खी है और अब कई क्षुल्लक ऐलक ब्रह्मचारी आदि नामधारी महात्मा उनपर शासन करनेके लिए तैयार हो रहे है। तेरापथी भाइयो, क्षुल्लक, ऐलक, ब्रह्मचारी बुरे नहीं--इनकी इस समय बहुत आवश्यकता है; परन्तु सावधान! केवल नामसे ही मोहित होकर इन्हें अपने सिर न चढा लेना; नहीं तो पीछे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जायगा।

यहाँ पर यह कह देना मैं बहुत आवश्यक समझता हूँ कि वर्तमान साधुओंसे मेरी जो अरुचि है वह इसलिए नहीं है कि मैं साधु-सम्प्रदायको ही बुरा समझता हूँ। नहीं, मै धर्म, समाज और देशके कल्याणके लिए साधुसंघका होना बहुत ही आवश्यक समझता हूँ। मेरी समझमें जिस समाजमें ऐसे लोगोंका अस्तित्व नहीं है कि जिनका जीवन स्वय उनके लिए नहीं है--दूसरोंके पारमार्थिक और ऐहिक

कल्याणके लिए है, वह समाज कभी उन्नत और सुखी नहीं हो सकता और जो जो समाज अब तक ऊँचे चढे हैं वे सब ऐसे ही स्वार्थ-त्यागी महात्माओंकी कृपासे चढ़े हैं। इस लिए इसप्रकारके लोगोंकी परम्परा बढानेकी बहुत आवश्यकता है। परन्तु यदि ऐसे लोग न हों, तो उनके स्थानमें अपूज्योंको पूज्योंके पद पर बिठा देना और उनके चरणों पर अपनी स्वाधीनताको भी चढा देना, इसे मैं बुद्धिमानोंका कार्य नहीं समझता। इससे तो यही अच्छा है कि हम विना साधुओंके ही रहें और इसी लिए मैंने तेरापंथियोंको भाग्यशाली बतलाया है। नीतिकारने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि ' वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभः।' अर्थात् शाला सूनी पड़ी रहे सो अच्छा, परन्तु उसमें दुष्ट बैलका रहना अच्छा नहीं।

बहुतसे लोगोंका ख़याल है कि यह समय ही कुछ ऐसा निकृष्ट है कि इसमें उत्तम साधुओं और त्यागियोंके उत्पन्न होनेकी आशा नहीं; उत्कृष्ट साधुओंका आचार भी इस समय नहीं पल सकता। इस लिए उनके अभावमें निम्नश्रेणीके साधुओंकी भी पूजा करना बुरा नहीं। परन्तु मेरी समझमें यह विचार ठीक नहीं। आदर्श सदा ऊँचा ही रखना चाहिए--नीचे आदर्शको सामने रखकर कोई ऊँचा नहीं हो सकता, यह हमें सदा स्मरण रखना चाहिए। और इस समय उत्कृष्ट साधुओंका आचार नहीं पल सकता है, इसका मतलब यह नहीं है कि आजकल क्षमा, दया आदि गुणोंके धारण करनेवाले, निस्पृह, मन्दकषाय, सहनशील, दृढ ब्रह्मचारी, परोपकारी, विद्वान्, धर्मप्रचारक साधु भी नहीं हो सकते हैं। अनगारोंमें तो क्या सागार गृहस्थोंमें भी इस प्रकारके महात्मा हो सकते हैं और दूसरे समाजोंमे अब भी है। यदि इस समय प्रातिकूलता है तो वह यह कि साधुओंकी जो भोजनपानकी

उत्कृष्ट विधि है, नाग्न्यादि कठिन परीषह है, कठिन तप आदि हैं, वे वर्तमानमे शास्त्रोक्त मार्गसे पालनेमें बहुत कठिनाई होती है और परिणामोंकी उच्चता पहले जैसी नहीं हो सकती है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि आजकल साधु हो ही नहीं सकते। यदि नग्नमुद्रा धारण कर सकनेवाले नहीं हो सकते, तो खण्डवस्त्र धारण करनेवाले ग्यारह प्रतिमाधारी, उनसे भी कम नीचेकी प्रतिमाओंका धारण करनेवाले, गृहत्यागी, ब्रह्मचारी आदि ही सही। ये भी तो एक तरहके साधु है—इनसे भी तो हमारा बहुत कल्याण हो सकता है--इनमें भी तो उपर्युक्त पूज्य गुण हो सकते है। भले ही आप इन्हें निर्ग्रन्थ गुरु मत मानो, पर उत्कृष्ट श्रावक भी तो हमारे यहाँ पूज्य हैं। ये यदि हमें उपदेश दें—हमें मार्ग बतलावें, तो इन्हें भी तो गुरु कहनेमें कुछ हानि नहीं है। फिर केवल स्वांगधारियोंको सिरपर चढानेकी क्या ज़रूरत है?

लेख बहुत बड़ा हो गया है, इसलिए अब मैं केवल इतना ही और कहकर इसे समाप्त करूँगा कि हमारे साधुमार्गकी जो दुर्दशा हुई है, उसके प्रधान कारण हम गृहस्थ लोग ही हैं। इस बातको हमें न भूलना चाहिए कि जिस तरह गृहस्थोंका सुधारना विगाडना साधुओंके हाथ है उसी तरह साधुओंका सुधारना बिगाड़ना भी गृहस्थोंके हाथ है। दोनोंके जुदा जुदा अधिकार है। अपने अपने अधिकारोंको दोनोंको ही काममें लाना चाहिए। गृहस्थका यह अधिकार है कि वह पात्रदान करे, पात्रसेवा करे और पात्रभक्ति करे। यदि इसे हम काममें लाते रहते, तो आज हमारे साधु हमें इतने भारी न होते। अन्धश्रद्धाके वश होकर हमने अपनी बुद्धिको ताकमें रख दी और इनके केवल बाहरी वेषमें भूल कर इनके दोषोंकी उपेक्षा करके हमने जो अपात्रपूजाका

पाप किया, उसीका फल आज हमारे सामने है। यदि अब भी हम न चेते, तो इस अपात्रपूजाके और भी बुरे बुरे फल देखनेके लिए हमें तयार रहना चाहिए।

—तेरापन्थी।

---

# जैनी क्या सबसे जुदा रहेंगे?

"हे वृद्ध! हे चिन्तातुर! हे उदासीन! तुम उठो, राजनीतिक आन्दोलनमें शामिल होओ या दिव्य सेजपर पडे पड़े अपनी जवानीकी बड़ाई बखान बखान कर पुरानी हड्डियोंको पटको, देखो तो उससे तुह्मारी लज्जा दूर होती है या नहीं।"

—रवीन्द्रनाथ।

यह बड़े ही सन्तोषकी बात है कि जैन समाज उन्नतिके मार्गपर कदम बढ़ाने लगा है; शिक्षाप्रचार, समाजसुधार, धर्मविस्तार आदि उन्नतिके कार्योंमें वह लग चुका है। परन्तु जब हम देखते हैं कि उसकी चाल सबसे निराली है; वह आपहीको अपने पथका पथिक समझ रहा है दूसरोंका अस्तित्व ही मानो उसकी दृष्टिमे नहीं है, तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि हिन्दु, मुसलमान, पारसी, सिख, ईसाई आदि सारे भारतवासियोंसे जैनी क्या जुदा ही रहेंगे?

उनके सभा सुसाइटियोंके जल्सोंमें, समाचारपत्रोंके लेखोंमें, नेताओं और उपदेशकोंके व्याख्यानोमें, पाठशालाओं विद्यालयोंकी पाठ्य पुस्तकोंमें, धनवानोंके दानकार्योंमे, समाजसेवकोके कामोंमे इस तरह जहाँ देखिए वहीं ऐसा मालूम होता है कि जैन समाजने अपनी एक संकीर्ण परिधि बना रक्खी है; उससे वाहर मानो उसके लिए कुछ कर्तव्य ही नहीं है। देशकी प्रगतिसे वह सर्वथा अज्ञान है और देश राष्ट्र

या राष्ट्रीयतासे मानो उनका कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। यही सब देखकर पूछनेकी इच्छा होती है कि जैनी क्या सबसे जुदा रहेंगे?

भारतवर्ष एक बहुत बड़ा देश है। यहाँ सैकड़ों धर्मों पन्थों और मतोंके माननेवाले रहते हैं। एक समय था जब इन धर्मानुयायियोंके परस्पर लड़ते झगडते रहनेपर भी समूचे देशको कुछ हानि लाभ न उठाना पडता था। क्योंकि उस समयके भारतका गठन ही कुछ और ही प्रकारका था। देशकी रक्षा या हानिलाभसे उस समयकी साधारण प्रजाका कोई सम्बन्ध नहीं था; शासक या राजा लोगों पर ही इसका दायित्व था। इसी कारण उस समय यह एक सर्व साधारण कहावत थी कि "कोउ नृप होइ हमें का हानी, चेरी छोड़ न होउब रानी।" और लोग अपनी या अपने समूहकी ही बढ़तीकी ओर दृष्टि रखते थे। परन्तु वह समय अब नहीं रहा। इस समय भारत पराधीन है। एक विदेशी जाति इसका शासन कर रही है और वह उन जातियोंमें से एक है जो किसी एक राजाके एकहत्थी शासनको बहुत बुरा समझती है और उसमें सर्व साधारणकी सम्मतिकी आवश्यकता स्वीकार करती है। वह स्वयं इस बातको 'डंकेकी चोट' प्रचार करती है कि हम भारतका शासन भारतवासियोंकी सम्मतिसे करेंगे। गरज यह कि इस समयकी परिस्थितिने यह बात बहुत ही आवश्यक कर दी है कि यहाँकी सर्व साधारण प्रजा भी देशकी भलाई बुराईका विचार करे और आपको उसकी उत्तरदात्री समझे। और यह है भी ठीक। क्योंकि जब तक शासकोंको हमारे सुखदुखोंका ज्ञान न होगा, हमारी आवश्यकताओंको और हिताहितको वे न समझेंगे तब तक उनका शासन हमारे लिए कभी अच्छा नहीं हो सकता। हमारे शासक विदेशी हैं, वे हमारे सामाजिक धार्मिक

रहस्योंसे अपरिचित हैं। इस लिए उनके शासनचक्रको सुव्यस्थित पद्धतिसे चलानेके लिए यहाँकी सर्वसाधारण प्रजाके हाथोंकी भी आवश्यकता है।

ऐसी अवस्थामें यहाँकी साधारण जनताके लिए यह आवश्यक है कि वह आपसमे मेलजोल रक्खे, एक दुसरेके सुखदु:खोंको अपना सुख दुख समझे, परस्पर सहायता करना सीखे और समूहके हितके लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंको भूल जावे। परन्तु ये सब बातें तब हो सकती है जब कि हम अपने अपने पारमार्थिक धर्मोंके समान देशभक्ति या राष्ट्रप्रेम नामक एक और नवीन धर्मकी उपासनामें दत्तचित्त हों और जिस तरह एक शरीरमें अनेक अंग होते हैं और अनेक अंगोंके समूहको शरीर कहते हैं उसी तरह हम समझें कि हमारे जुदा जुदा धर्म राष्ट्रप्रेम या देशभक्तिरूप धर्मके जुदा जुदा अंग हैं। यह नवीन धर्म ऐसा नहीं है कि इसके लिए प्रजाको अपने जुदा जुदा धर्म छोड़ देने पड़ें या अपने धर्मविश्वासमें कछ शिथिल हो जाना पड़े। नहीं, यह धर्म इतना उदार है कि सब ही धर्मोंके अनुयायी इसकी उपासना कर सकते हैं।

आजकल कुछ लोगोंने इस धर्मको बदनाम कर रक्खा है। और इस कारण जहाँ सुना कि अमुक पुरुष देशभक्त है कि लोग विश्वास कर लेते हैं कि वह राजद्रोही है। परन्तु यह कहना बड़ी भारी भूल है। वास्तविक विचार किया जाय तो राजभक्त वही हो सकता है जो देशभक्त हो। अथवा यों कहिए कि देशभक्तिका ही दूसरा नाम राजभक्ति है। क्योंकि जब तक हम देशसे प्रेम नहीं करते हैं और उस देशप्रेमके कारण अपने शासकोंको सुशासक नहीं बना सकते हैं तब तक राजभक्त कभी नहीं सकते। इस लिए इस बातकी बड़ी भारी जरूरत है कि प्रत्येक भारतवासी देशभक्त बननेका प्रयत्न करे।

यों तो देशभक्तिकी भारतवर्षकी सब ही जातियों और समाजोंमें कमी है; परन्तु जैनसमाज इससे बिलकुल ही खाली है--वह जानता ही नहीं कि देशभक्ति किसे कहते हैं। बल्कि अपनी झूठी राजभक्ति प्रकट करनेकी धुनमें देशभक्तिको वह एक तरहका पागलपन समझता है। जैन समाजमें एक तो कोई नेता ही नहीं हैं और जो नेता कहलानेका दम भरते हैं--शिक्षा प्रचारादि कामोंमें जिनका थोड़ा बहुत हाथ है, वे इतने संकीर्ण हृदयके है--उनके विचारोंका क्षेत्र इतना संकुचित है कि उसके भीतर इस देशभक्तिरूप उदार धर्मको स्थान ही नहीं मिल सकता है। यही कारण है कि एक सम्पन्न साक्षर और प्रतिष्ठित समाज होनेपर भी राष्ट्रीयताकी दृष्टिसे जैनसमाज किसी गिनतीमें नहीं।

देशकी भिन्न भिन्न जातियोंमें तथा सम्प्रदायोंमें इस समय देशभक्ति और राष्ट्रीयताके भाव बढ़ रहे है--लोग समझने लगे है कि अपने अपने धर्मों और विचारोंकी रक्षा करते हुए इस सार्वजनिक धर्मकी-या राष्ट्रीयताकी उपासना करना भी हमारा कर्तव्य है और यह समझकर हजारों लोग कमर कसकर कार्यक्षेत्रमें भी उतर पड़े हैं। अभी अभी देखते देखते भारतमाताके हजारों सूपूत अपनी अपनी संकीर्ण परिधियोंका उल्लंघन करके स्वार्थसे मुख मोड़कर देशकी या भारतवासी मात्रकी सेवा करनेमें तत्पर हो गये है। प्रत्येक धर्म या सम्प्रदायके माननेवालेको, प्रत्येक ऊँच या नीच कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्यको और प्रत्येक अमीर या गरीबको वे अपना भाई समझते है, उसके दुःख दूर करनेका प्रयत्न करते हैं उसको ऊँचा उठानेके लिए शिक्षा आदिका प्रबन्ध करते हैं और भारतवासी मात्रके अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिए कष्टोंकी परवा न करके निरन्तर आन्दोलन करनेमें दत्तचित्त रहते

है। यह सब करके भी वे अपने अपने धर्मोंको नहीं भूले है—राष्ट्रीय भावोंकी रक्षा करते हुए अपने धर्म या सम्प्रदायोंकी उन्नतिमें भी वे सब तरहसे दत्तचित्त रहते हैं। देशके राष्ट्रीय अगुओंमेंसे इस तरहके वीसों सज्जनोंके नाम गिनाये जा सकते हैं।

परन्तु जैनी इस विषयमें सबसे जुदा है। देशहितके सैकड़ों कार्य-क्षेत्र हमारे सामने पड़े है परन्तु उनमेंसे एकमें भी हम अपने भाइयोंको नहीं देखते। इंडियन नेशनल काग्रेसमें, प्रादेशिक समितियोंमें, औद्योगिक कॉन्फरेंसमें, सोशल कॉन्फरेंसमें, साहित्यपरिषदोंमें, गोखलेकी भारतसेवकसामितिमें, सरकारी कौंसिलोमें और सार्वजनिक हितका आन्दोलन करनेवाली अन्यान्य संस्थाओंमें हम किसी जैनीका नाम नहीं सुनते। सार्वजनिक कल्याणकी घोषणा करनेवाले दोचार समाचारपत्र भी जैनी नहीं निकालते। ऐसे पत्रोंमें लेख भी वे नहीं लिखते। इस विषयकी कोई पुस्तक भी किसी जैनीकी कलमसे नहीं निकली। कहीं किसी जैनीको देशहितका व्याख्यान देते हुए या आन्दोलन करते हुए भी नहीं सुना। सार्वजनिक साहित्यक्षेत्रमें भी उनका दर्शन दुर्लभ है। इस समय एक भी जैनी किसी भाषाके वर्तमान साहित्यका ख्यातनामा लेखक या कवि नहीं है। शिक्षाप्रचारका काम जैनी करते हैं। वे चाहे तो अपने बच्चोंके साथ साथ दूसरोंके बच्चोंको भी ज्ञानदान कर सकते हैं, परन्तु इतनी उदारता भी उनमें नही। उनकी शिक्षासंस्थाओंके द्वार दूसरोंके लिए एक तरहसे बन्द ही हैं। सार्वजनिक शिक्षासंस्थाओंमें भी जैनी आर्थिक सहायता नहीं देते। अवश्य ही स्वर्गीय सेठ प्रेमचन्द्र रायचन्द्रने कलकत्ता यूनीवर्सिटीको और सेठ वसनजी त्रिकमजी जे. पी. ने बम्बईके साइन्स इन्सिट्यूटको दो वड़ी वड़ी रकमे देकर जैनियोंकी लज्जा रख ली है। इस तरह और कहाँ तक गिनाये जावें किसी

भी सार्वजनिक लाभके काममें जैनियोंका हाथ नहीं दिखता। और तो क्या हमारे नैतिक, धार्मिक और समाजसुधारसम्बन्धी उपदेश आदि भी केवल जैनियोंके लिए ही होते हैं। पारस्परिक सहानुभूति और सहायताबुद्धिकी तो हममें इतनी कमी है कि हम अपने घरहीमें बारहों महीने लड़ा करते हैं; हमारे श्वेताम्बरियों और दिगम्बरियोंके तीर्थ-क्षेत्रसम्बन्धी मुकद्दमे इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। गतवर्ष पालीताणाके जलप्रलयके समय जैनियोंकी सहायता करनेके लिए कई आर्यसमाजी भाई पालीताणा दौड़े गये थे; परन्तु अभी दक्षिण आफ्रिकाके भाइयोंपर जब विपत्ति आई और सारे देशके लोगोंने उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की तथा विपुल धनसे सहायता की, तब बतलाइए हमारे जैनी भाइयोंने क्या किया ? कितना धन दिया ? हमारे दयाधर्मने क्या काम किया ? जिस समय सम्मेदशिखरतीर्थपर घोर उपसर्ग उपस्थित हुआ था--उसपर सरकारी बगले बननेवाले थे उस समय हमारे कुछ भाई एक देशभक्त लीडरसे इस लिए जाकर मिले थे कि वे इस विपत्तिके समय हमें कुछ सहायता दें और आन्दोलन करके हमारे पर्वतकी रक्षा करें। उस समय उक्त देशभक्त महाशयने उत्तर दिया था कि "जैनी हमारी और हमारे देशकी क्या सहायता करते हैं जो हम उनकी सहायता करें।" यद्यपि एक देशभक्तके मुँहसे ऐसे शब्द न निकलना चाहिए थे, परन्तु इसमें उन्होंने झूठ ही क्या कहा था ? यदि जैनी बुद्धिमान् हैं तो वे इस उत्तरसे बहुत कुछ सीख सकते हैं और अपने भविष्यका मार्ग निश्चित कर सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि जैनसमाज अभी अभी जागृत हुआ है। अभी उसमें स्वयं अपनी ही आवश्यकताओंके पूर्ण करनेकी शक्ति उत्पन्न नहीं हुई है, इसलिए दूसरोंकी ओर ध्यान देनेका उसे अव-

काश नहीं। इसका कारण यदि अवकाशाभाव ही होता तो कुछ आक्षेपकी बात नहीं थी। पर यह एक बहाना भर है। वास्तवमे हममें अभी तक इस प्रकारके भाव ही उत्पन्न नहीं हुए हैं। बीचमें हमारी जो सर्वतोगामिनी सहानुभूति, दया, परार्थपरता नष्ट हो गई है—वह अभी तक जीवित ही नहीं हुई है। यदि हममें राष्ट्रीयभाव, प्रेम या देशभक्ति होती, तो भले ही हम प्रत्यक्षरूपसे सार्वजनिक सेवाके कार्य न कर सकते—अपने कामोंके मारे उनमें योग न दे सकते; परन्तु हमारे निजके ही कामोंमे वह जहाँ तहाँ प्रस्फुटित हुए बिना न रहती। और यह बात भी तो सर्वांशोंमें सत्य नहीं माछ्म होती कि हमे अपने कामोंसे अवकाश नहीं है। ऐसे बहुतसे कार्य है जिन्हें हम अपने कार्य करते हुए भी सहज ही कर सकते है। और हमारे समाजके सभी लोग तो काम नहीं करते है—यदि कुछ लोग अपनी योग्यताके अनुसार सार्वजनिक काम भी करने लगें तो अच्छी तरहसे कर सकते हैं; होना चाहिए इन कामोंसे प्रेम और सहानुभूति।

अन्तमे हम अपने भाइयोंको सचेत कर देना चाहते है कि तुम्हारी संख्या औरोकी अपेक्षा बहुत ही कम है, दार्शनिक सिद्धान्तोंके खयालसे तुम्हारा धर्म देशके सारे धर्मोंसे अतिशय भिन्नता रखता है—यहाँ तक कि जब सारा देश ईश्वरवादी है तब तुम किसी एक ईश्वरके अस्तित्वको ही स्वीकार नहीं करते। ऐसी अवस्थामें अपने अस्तित्वकी रक्षाका प्रश्न तुम्हारे सम्मुख सबसे अधिक कठिन है। इसका तुम्हें बहुत ही सावधानीसे विचार करना चाहिए। हमारी समझमें जबतक हम देशके प्रत्येक कार्यमें शामिल न होंगे, दूसरोंके समान अपनी भी शक्तियोंको बढ़ाकर देशके कार्यभारमें बराबरीसे अपने कन्धे न लगावेंगे, प्रत्येक देशवासीके सुखमें सुखी, दुखमें दुखी

न होंगे, सबकी सहानुभूति और प्रीति सम्पादन न करेंगे——संक्षेपमें जब तक हम अपना अपने परमार्थिक धर्मके समान ' राष्ट्रप्रेम' नामक एक और दूसरा धर्म न बनावेंगे तब तक अपनी रक्षा कदापि न कर सकेंगे। यदि हम अब भी न चेते–अब भी हमने भारतको अपना देश न समझा, तो याद रखिए कि इस चढ़ाबढ़ीके कठिन समयमे– ' निर्बलोंको जीते रहनेका अधिकार नहीं है ' इस सिद्धान्तको माननेवाले समयमें–हमारी वही दशा होगी जो भारतकी अन्त्यज जातियोंकी हो रही है। यदि जागना हो तो अभी जागो, नहीं तो सदाके लिए सोते रहो।

---

## समाज-सम्बोधन।

(१)

दुर्भाग्य जैनसमाज, तेरी क्या दशा यह होगई।
कुछ भी नहीं अवशेष, गुणे–गरिमा सभी तो खो गई॥
शिक्षा उठी, दीक्षा उठी, विद्याभिरुचि जाती रही।
अज्ञान दुर्व्यसनादिसे मरणोन्मुखी काया हुई।

(२)

वह सत्यता, समुदारता तुझमे नजर पडती नहीं।
दृढ़ता नहीं, क्षमता नहीं, कृतविज्ञता कुछ भी नहीं।
सब धर्मनिष्ठा उठ गई, कुछ स्वाभिमान रहा नहीं।
भुजबल नहीं, तपबल नहीं, पौरुष नहीं, साहस नहीं।

(३)

क्या पूर्वजोंका रक्त अब तेरी नसोंमें है कहीं ?
सब लुप्त होता देख गौरव जोश जो खाता नहीं।

---

१ गुणोंकी गुरुता-उत्कृष्टता। २ मरणके सन्मुख। ३ कृतज्ञता।

ठंडा हुआ उत्साह सारा, आत्म-बल जाता रहा।
उत्थानकी चर्चा नहीं, अब पतन ही भाता हहा ! !

( ४ )

पूर्वज हमारे कौन थे ? वे कृत्य क्या क्या कर गये ?
किन किन उपायोंसे कठिन भवसिन्धुको भी तर गये ?
रखते थे कितना प्रेम वे निजधर्म-देश-समाजसे ?
परहितमें क्यों संलग्न थे, मतलब न था कुछ स्वार्थसे ?

( ५ )

क्या तत्त्व खोजा था उन्होंने आत्म-जीवनके लिए ?
किस मार्गपर चलते थे वे अपनी समुन्नतिके लिए ?
इत्यादि बातोंका नहीं तव[1] व्यक्तियोंको ध्यान है।
वे मोहनिद्रामें पड़े, उनको न अपना ज्ञान है ॥

( ६ )

सर्वस्व यों खोकर हुआ तू दीन, हीन, अनाथ है !
कैसा पतन तेरा हुआ, तू रूढियोंका दास है ! !
ये[2] प्राणहारि पिशाचिनी, क्यो जालमें इनके फँसा ।
ले पिण्ड तू इनसे छुड़ा, यदि चाहता अब भी जियो[3] ।

( ७ )

जिस आत्म-बलको तू भुला बैठा उसे रख ज्ञानमें ।
क्या शक्तिशाली ऐक्य है, यह भी सदा रख ध्यानमें ।
निज पूर्वजोंका स्मरण कर कर्तव्यपर आरूढ हो ।
बन स्वावलम्बी, गुण-ग्राहक; कष्टमें न अधीर हो ॥

---

१ तेरे व्यक्तियोंको अर्थात् जैनियोंको ।

२ ये रूढियाँ प्राणोंको हरनेवाली पिशाचिनी हैं । ३ जीवित रहना । ४ एकता, इत्तफ़ाक़ ।

(८)

सद्दृष्टि-ज्ञान-चरित्रका सुप्रचार हो जगमें सदा।
यह धर्म है, उद्देश है; इससे न विचलित हो कदा॥
'युग-वीर' बन यदि स्वपरहितमें लीन तू हो जायगा।
तो याद रख, सब दुःख संकट शीघ्र ही मिट जायगा॥

समाजसेवक—

जुगलकिशोर मुख्तार।

---

# डाक्टर सतीशचन्द्रकी स्पीच।

श्रीयुत मान्यवर महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचंद्र विद्याभूषण, एम. ए., पी. एच. डी., एफ़. आई, आर. एस., सिद्धान्तमहोदधिने, २७ दिसम्बर सन् १९१३ को स्याद्वादमहाविद्यालय काशीके महोत्सवपर जो स्पीच अँगरेजीमें दी है उसका हिन्दी भावानुवाद इस प्रकार है:—

सज्जनो, मुझे इस शुभ अवसरपर सभापतिका आसन देकर आप लोगोने जो मेरा सन्मान किया है उसका हार्दिक धन्यवाद दिये बिना मै आजकी मीटिंगकी कार्रवाईको शुरू नहीं कर सकता। औरोंकी अपेक्षा मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप अनुभवी विद्वानो और जीवन-पर्यंत जैनधर्मका अभ्यास करनेवालोंके इस दीप्तिमान समूहमेंसे मुझसे कोई अच्छा और योग्य सभापति चुन सकते थे। परन्तु चूँकि आपने प्रसन्न होकर मुझे यह असाधारण मान दिया है इसलिए मुझे आपकी आज्ञाका पालन करना चाहिए और मै एक ओर आपके अनुग्रह और

---

१ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका।

दूसरी ओर आपकी सहकारितापर भरोसा रखते हुए आसन ग्रहण करता हूँ।

जैनधर्मपर कोई लम्बा चौड़ा विवेचन करनेका न यह समय है और न यह स्थान। साथ ही मैं आपको यह भी विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इस प्रसिद्ध जैनसमाजको उसके ही मत और सिद्धान्तकी कोई बात सिखलानेका साहस नहीं करता हूँ। ऐसा करना, सज्जनो, उलटे बॉस बरेली ले जानेके समान होगा। परन्तु एक ऐसे व्यक्तिके मुखसे जो, यद्यपि सम्प्रदायसे जैनी नहीं है तथापि, जैनधर्मका अभ्यासी रह चुका है, एक दो शब्दोंका निकलना कुछ अनुचित भी न होगा।

मालूम होता है कि ईसामसीहसे लगभग छह सौ वर्ष पहले इस सारे भूमंडलपर मानसिक जागृति और कर्त्तव्यपरायणता उत्पन्न हुई थी। उस समय एक नई परिपाटीका जन्म होना पाया जाता है, पूर्वीय और पश्चिमीय दोनों ही देशोंमें एक नया युग प्रवर्त्तित हुआ था।

योरुपमें, पैथेगोरस नामके प्रसिद्ध यूनानी फ़िलासोफ़रने ससार-को एकताका सिद्धान्त सिखलाया। एशियामें, चीनके कनफ्यूशस और ईरानके जोरोस्टरने इस जागृतिमें हिस्सा लिया। प्रथमने अपनी उन शिक्षाओंके द्वारा जिन्हें 'गोल्डनरूल' (Golden rule) कहते है और दूसरेने अपने उस सिद्धान्तके द्वारा जो आरमुज्ड (Armugd) और अहिरिमन (Ahiriman) अर्थात् प्रकाश और अंधकारकी शक्तियोंके विसम्वादके सम्बन्धमें है, यह कार्य किया। हिंदुस्तानमें महावीरने, जिन्हें वर्धमान भी कहते है और जो इस वर्त-मान कालमें जैनियोंके अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं, अपने आत्म-संयमके सिद्धान्तको प्रकाशित किया और बौद्धधर्मके प्रवर्त्तक बुद्धदेवने अंधकार और दुःखमें पड़े हुए जगतको ज्ञानोदीपनके संदेशसे उद्घोषित किया।

कुछ कालतक महावीर और बुद्धके सिद्धान्त और धर्म एक दूसरेके बराबर बराबर ( समानान्तर रेखाओंमें ) चलते रहे । यह भले प्रकार निर्द्धारित किया जा सकता है कि महावीरका साक्षात् शिष्य और उनकी शिक्षाओंको संग्रह करनेवाला इन्द्रभूति गौतम, बुद्धधर्मके प्रसिद्ध संस्थापक बुद्धगौतम तथा न्यायसूत्रके कर्त्ता ब्राह्मण अक्षपाद गौतमका समकालीन था । हम देखते हैं कि बौद्धोंके 'त्रिपटिक' जैसे धर्मग्रंथोंमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंका उल्लेख मिलता है और जैनियोंके धर्मग्रंथोंमें, जिन्हे 'सिद्धान्त' कहते हैं बौद्धोंके सिद्धान्तोंका विवेचन (गुणदोष-विचार ) पाया जाता है ।

सर्वसाधारणतक पहुँचने तथा अपने उच्च सिद्धान्तोंका मनुष्यसमूहमें प्रसार करनेके लिए इन दोनों महान् शिक्षकोंने, अपनी शिक्षाके द्वारस्वरूप, उस समयकी दो अत्यन्त लोकप्रिय और प्रचलित भाषाओंको पसद किया था—बुद्धने पालीभाषाको और महावीरने प्राकृत भाषाको । इस प्रतिवादके विषयमें कि पाली और प्राकृत भाषायें इतनी प्राचीन नहीं हो सकती हैं कि उनका अस्तित्व सन् ईसवीसे ६०० वर्ष पहले माना जाय, इतना कहा जा सकता है कि ये भाषायें या स्पष्टतया इनकी वे खास शकलें ( आकृतियाँ ), जिनमें महावीर और बुद्धने शिक्षा दी, उस पाली और प्राकृत ग्रंथोंकी भाषासे जो हम तक पहुँची है ज़रूर ही बहुत भिन्न थीं । और यह बात इस मामलेसे आसानीके साथ स्पष्ट की जा सकती है कि उनकी शिक्षाकी भाषायें, जो हम तक लिखित रूपसे नहीं किन्तु मौखिक रूपसे पहुँची हैं दोनों भाषाओंकें साधारण परिवर्तनोंके साथ साथ परिवर्तित होती रही हैं ।

सन् ईसवीकी पहली शताब्दीमें बौद्धधर्म दो शाखाओंमें विभक्त हो गया, जिनको 'महायान' और 'हीनयान,' अर्थात् बड़ा वाहन और

छोटा वाहन कहते हैं। जैनधर्मके भी दो बड़े टुकड़े होगये यथा 'श्वेताम्बर' सफ़ेद वस्त्र धारण करनेवाले और 'दिगम्बर' जिनका वस्त्र आकाश है।

जैनसाधु, जो सर्व प्रकारके 'बन्धनों' से मुक्त होनेके अभिप्रायसे दीक्षित होता है, अपने लिये सर्व प्रकारके विषयसुखोंको अस्वीकार करता हुआ, सिर्फ़ इतना भोजन जो जीवन धारण करनेके लिये काफ़ी हो, जिसे किसी व्यक्तिने खास उसके लिए न बनाया हो और जो धार्मिक भक्तिके साथ श्रावकों या गृहस्थोद्वारा दिया जाय, ग्रहण करता हुआ और लौकिक जन तथा स्त्री संसर्गसे अलग रहकर एक प्रशंसनीय जीवन व्यतीत करनेके द्वारा पूर्ण रीतिसे व्रत, नियम और इन्द्रियसंयमका पालन करता हुआ, जगतके सन्मुख आत्मसंयमका एक बड़ा ही उत्तम आदर्श प्रस्तुत करता है।

यद्यपि इन दोनों धर्मोंने ब्राह्मणोंके जातिभेद या अन्य विधि विधानोंके साथ कोई बड़ी भारी लड़ाई नहीं लड़ी, तथापि इनका उद्देश ऐसे आदर्श पुरुष उत्पन्न करना था जो, बौद्धशास्त्रोंमे ' भिक्षु ' और जैन शास्त्रोंमें 'यति' या 'साधु' कहलाते हैं। यह आदर्श पुरुष समस्त ही श्रेष्ठ और उत्तम गुणोंकी मूर्तिरूपसे देखा जासकता है। क्योंकि उसका शरीर उसके वंशमें है, वचनपर उसने अधिकार जमा लिया है और मनको भले प्रकार अपने आधीन कर लिया है। वह जगतको जीतनेवाला है क्योंकि उसने अपने आपको जीत लिया है। वह अपना सारा दिन अध्ययन और शिक्षणमें, सांसारिक विषयवासनाओंके समुद्रमें गोते खाते और बहते हुए मनुष्योंको सुखशांतिकी दृढ़ भूमिपर लानेके द्वारा उनका उद्धार करनेमें और भटकते हुए संसारी मुसाफ़िरोंको मोक्षका मार्ग दिखलानेमें व्यतीत करता है। यों तो ऐसे

मनुष्य प्रतिदिन ही शास्त्रस्वाध्याय और ध्यानसे अपने हृदयको पवित्र करते हैं; परन्तु महीनेके खास दिनोंमें वे परस्पर अपने पापोंकी आलोचना करनेके लिए एकत्र होते है जो उनके धर्मका एक मुख्य चिह्न है।

यह आदर्श पुरुषकी बात है। परन्तु एक गृहस्थका जीवन भी जो जैनत्वको लिये हुए है इतना अधिक निर्दोष है कि हिन्दुस्तानको उसका अभिमान होना चाहिए। गृहस्थके लिए 'अहिंसा' को अपने जीवनका आदर्श (Motto) बनाना होता है। सिर्फ़ जीवधारियोंको उनके मासके लिए वध करनेका ही उसके त्याग नहीं होता, बल्कि उसका यह कर्त्तव्य है कि वह किसी छोटे जन्तुको भी किसी प्रकारका कोई नुकसान न पहुँचावे, और उसे अपना भोजन बिलकुल निरामिष सर्वप्रकारके मांसाहारसे रहित—रखना होता है। सज्जनो, मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि मैं उनके भोजन और जीवनरीतियोंके सम्बन्धमें वहुतसे उत्तमोत्तम नियमोंका विस्तारके साथ वर्णन करूँ; मैं इतना ही कहना काफ़ी समझता हूँ कि वे खानेपीनेके सम्बन्धमें सातिशय संयमशील हैं और उनका भोजन बड़ी ही सूक्ष्मदृष्टिसे शुद्ध तथा असाधारण रीतिसे सादा होता है। ये भोले भाले और किसीको हानि न पहुँचानेवाले जैनी, यद्यपि पंद्रह लाखसे अधिक नहीं है, तथापि बहुतसी बातोंमें प्रत्येक मानवजातिके एक भूषण है, चाहे वह कैसी ही सभ्य क्यों न हो।

जैनियोंके साहित्यमें एक विशेषता है। यूनानियोंको छोडकर जिन्होंने अपने धार्मिक और लौकिक साहित्यको प्रारभसे ही एक दूसरेसे अलग रक्खा है अन्य समस्त देशोंका वही आदिम साहित्य है जो कि उनका धार्मिक साहित्य है। ब्राह्मणोंके वेद, यहूदियोंकी बाइबिल

Old Testament और बौद्धोंके 'त्रिपटिक' की यही हालत है।
जैनसाहित्य प्रारंभमें केवल धार्मिक प्रकृतिको लिए हुए था; परन्तु समयके हेरफेरसे उसने न सिर्फ धार्मिक विभागमें किन्तु दूसरे विभागोंमें भी आश्चर्यजनक उन्नति प्राप्त की। न्याय और अध्यात्मविद्याके विभागोंमें इस साहित्यने बड़े ही ऊँचे विकास और क्रमको धारण किया। सन् ईसवीकी पहली शताब्दीमें प्रसिद्ध होनेवाले **उमास्वामि**-के जोड़के अध्यात्मविद्याविशारद, या छठी शताब्दीके **सिद्धसेन दिवाकर** और आठवीं शताब्दीके **अकलंकदेवकी** बराबरके नैय्यायिक इस भारत भूमिपर अधिक नहीं हुए हैं। सिद्धसेनदिवाकरके न्यायावतार नामक ग्रंथमें कुल न्यायविद्या केवल ३२ श्लोकोंके भीतर भरी हुई है। न्यायदर्शन जिसे ब्राह्मण ऋषि गौतमने चलाया है, न्याय अध्यात्मविद्याके रूपमें असंभव होजाता यदि जैनी और बौद्ध अनुमान चौथी शताब्दीसे न्यायका यथार्थ और सत्याकृतिमें अध्ययन न करते। जिस समय मै जैनियोंके 'न्यायावतार', 'परीक्षामुख', न्यायदीपिका', आदि कुछ न्यायग्रंथोंका सम्पादन और अनुवाद कर रहा था उस समय जैनियोंकी विचारपद्धतिकी यथार्थता, सूक्ष्मता, सुनिश्चितता और सक्षिप्तताको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ था और मैंने धन्यवादके साथ इस बातको नोट किया है कि किस प्रकारसे प्राचीन न्यायपद्धतिने जैन नैय्यायिकों द्वारा क्रमशः उन्नतिलाभ कर वर्तमानरूप धारण किया है। इन जैन नैय्यायिकोंमेंसे बहुतोंने न्यायपर टीका ग्रंथोंकी भी रचना की है, और मध्यमयुगमें न्यायपद्धतिपर यह एक बडा ही बहुमूल्य काम हुआ है। जो 'मध्यमकालीन न्यायदर्शन' के नामसे प्रसिद्ध है वह सब केवल जैन और बौद्ध नैय्यायिकोका कर्तव्य है। और ब्राह्मणोंके न्यायकी आधुनिक पद्धति जिसे "नव्य न्याय" कहते है और जिसे गणेश उपाध्यायने ईस

की १४ वीं शताब्दीमें जारी किया है, वह जैन और बौद्धोंके इस मध्यम कालीन न्यायकी तलछटसे उत्पन्न हुई है। व्याकरण और कोशरचना-विभागमें शाकटायन पद्मनंदि और हेमचंद्रादिके ग्रंथ अपनी उपयोगिता और विद्वत्तापूर्ण संक्षिप्ततामें अद्वितीय है। छंदशास्त्रकी उन्नतिमें भी इनका स्थान बहुत ऊँचा है। प्राकृत भाषा अपने सम्पूर्ण मधुमय सौन्दर्यको लिये हुए जैनियोंकी रचनामें ही प्रगट की गई है; और यह बिलकुल सत्य है कि ब्राह्मण नाटकोंमें जो प्राकृत भाषाका व्यवहार किया गया है उसके मूलकारण जैनी ही हैं जिन्होंने सबसे पहले अपने शास्त्रोंमें इस भाषाका प्रयोग किया है। और ऐतिहासिक संसारमें तो जैनसाहित्य शायद जगतके लिए सबसे अधिक कामकी वस्तु है। यह इतिहास लेखकों और पुरावृत्त विशारदोंके लिए अनुसन्धानकी विपुल सामग्री प्रदान करनेवाला है जैसा कि इसने पहले प्रदान की है और अब भी प्रदान कर रहा है। जैनियोंके बहुतसे प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथ भी है जैसा कि 'कुमारपालचरित'। ये ग्रथ और वे उपाख्यान, जिन्हें भिन्न भिन्न सम्प्रदाय या 'गच्छों'के जैनियोंने उन समयोंके बाबत जिनमें कि अनेक तीर्थंकर और शिक्षक 'धर्मके आसन' या 'पट्ट' पर विराजमान थे और उनकी समकालीन घटनाओंके बाबत सुरक्षित रक्खा है, भारतीय इतिहासकी पुरानी बातोंको निश्चित करनेके लिए उसी प्रकारसे बहुत उपयोगी सिद्ध हुए है, जिस प्रकार कि यूनानका पुराना इतिहास तय्यार करनेमें वहाँके मीनार कार्यकारी हुए थे। और भी अधिक, इन समयोंकी जाँच शिला आदिपर उत्कीर्ण लेखोंकी साक्षीसे हो चुकी है और ये उनके अनुरूप पाये गये है जैसा कि मथुरासे मिला हुआ ईसाकी पहली शताब्दीका जैनशिलालेख और रुद्रदमनका जूनागढ़वाला शिलालेख जो दूसरी शताब्दीका है, इत्यादि।

यदि भारत देश ससारभरमें अपनी आध्यात्मिक और दार्शनिक उन्नतिके लिए अद्वितीय है तो इससे किसीको भी इनकार न होगा कि इसमें जैनियोंको ब्राह्मणों और बौद्धोंकी अपेक्षा कुछ कम गौरवकी प्राप्ति नहीं है।

अनुवादक—

जुगलकिशोर मुख्तार।

**नोट**—यह विद्याभूषण महाशयके व्याख्यानका पूर्व भाग है। इसके आगे उन्होंने जैनसंस्थाओं और वर्तमान जैनकार्यकर्त्ताओंकी प्रशंसा की है। वह वहुधा अतिशयोक्ति पूर्ण है, इस लिए उसका प्रकाशित करना हम उचित नहीं समझते।—सम्पादक।

---

# ऐतिहासिक लेखोंका परिचय।

( गताङ्कसे आगे। )

## ३. विषय।

इन लेखोंमें अन्य भेदोके साथ विपयकी भी भिन्नता है। अधिकाश लेख दानके विषयमें हैं। दान भी धर्मसम्वन्धी और राज्य सम्वन्धी दो प्रकारके है।

कई लेखोंमें श्रीजिनेन्द्रभगवानके मदिरोके निमित्त ग्रामोंके दानका उल्लेख है। चालुक्यवंशीय राजा अम्म द्वितीयका एक लेख यह सूचित करता है कि जिनमंदिरकी एक खैराती भोजनशालाके लिए उन्होंने एक ग्राम दान दिया था। गयामें बरावर पर्वतपर महाराज

अशोकके कई लेखोंमें आजीवक साधुओंको गुफाओंके दान देनेका उल्लेख है।

कई लेखोंमें बौद्ध साधुओंको गुफाओंके दानदेनेका उल्लेख है। महाराज स्कन्दगुप्तके एक स्तभ लेखमें विष्णु भगवानके निमित्त एक ग्राम दान देनेका उल्लेख है। राष्ट्रकूटवंशीय जैनधर्मानुयायी महाराज अमोघवर्षके एक लेखमें यह लिखा है कि उन्होंने घीके महसूलको राज्यकोशमें जमा न करके राज्यप्रबधके सुभीतेके लिए ग्रामोंके मुखियों और महाजनोंके नाम कर दिया कि वे ही राज्यकी ओरसे उस रुपयेसे उचित कार्य किया करें। पालववशीय राजा शिवस्कंन्दके एक लेखमें ब्राह्मणोंको ग्राम दान देनेका उल्लेख है। ईसवी सन् ७५४ के एक स्तभ लेखमें एक ब्राह्मणको एक ग्रामके अर्धभाग दिये जानेका उल्लेख है और इसमें विशेषता यह है कि यह बात नागरी, और कनड़ी दोनों लिपियोंमें अलग अलग लिखी हुई है। कदम्बवंशीय राजा काकुत्स्थवर्मनका एक लेख हल्सीमें है जिससे मालूम होता है कि उन्होंने अपने श्रुतिकीर्ति नामक सेनापतिको, जिसने एक अवसर पर उनके प्राण बचाये थे, कुछ भूमि दान दी। राजा प्रवरसेन द्वितीयका एक लेख यह सूचित करता है कि उन्होंने चम्मक नामक ग्रामको एक सहस्र ब्राह्मणोंको दान दिया। उनमेंसे ४९ ब्राम्हणोंके नाम इस लेखमें दिये है। इनके अतिरिक्त इन लेखोंमें और विषय भी

१ विन्सेंट स्मिथने लिखा है कि ये साधु बौद्धोंकी अपेक्षा जैनियोंसे अधिक सम्बन्ध रखते हैं। डाक्टर फ्लीटने भी इनकी जैनियोंसे समानता बतलाई है, इनको नग्न कहा है और मंक्खलि गोशालको इनका सस्थापक लिखा है। २ इस वशके कुछ राजा कदाचित् जैन थे। उन्होंने ईसाकी छठी शताब्दिमें पल्लवों और मैसूरके गगराजा पर विजय पाई और दक्षिणी महाराष्ट्र पर अपना अधिकार जमा लिया।

हैं। यह किसीको अविदित नहीं है कि महाराजा अशोक कैसे प्रभावशाली सम्राट् हो गये है। पहले वर्णन हो चुका है कि शिलाओं और स्तंभोंपर उनके अनेक लेख मिलते है जिनसे बहुतसी बातें मालूम हुई हैं। जैसे, उनकी राजधानी पाटलीपुत्र थी, उन्होंने बौद्ध धर्मका खूब प्रचार किया, उन्होंने कलिंग देशपर विजय पाई और उसे अपने आधीन कर लिया, इत्यादि। इन लेखोसे महाराजा अशोकके शासनका और कई विदेशी राजाओंका भी परिचय मिलता है। मैसूरमें महाराजा अशोकका एक शिलालेख है जिसमें उनकी धार्मिक शिक्षाओंका सार इस प्रकार लिखा है:—महाराजाधिराजकी यह आज्ञा है:—"पिता और माताकी आज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिए; एवं सर्व जीवोंका आदर करना चाहिए; सत्य अवश्य बोलना चाहिए। धर्मके ये ही सुलक्षण हैं और ये अवश्य कार्यरूपमे परिणत होने चाहिए। इसी प्रकार शिष्यको गुरुका आदर अवश्य करना चाहिए और नातेदारोंका उचित सत्कार होना चाहिए यह धर्मका प्राचीन आदर्श है—इससे आयु की वृद्धि होती है और इसके अनुसार मनुष्योंको अवश्य चलना चाहिए।" श्रवणबेलगोलाका एक लेख यह सूचित करता है कि विजयानगराधिपति हिन्दू राजा बुक्करायने श्रवणबेलगोलानिवासी जैनियों और वैष्णवोंके पारस्परिक विरोधको शान्त किया और जैनियोंको वैष्णवोंके समान स्वतंत्रता और रक्षा प्रदान की। बरौत स्तूपके एक लेखमे लिखा है कि उसके द्वारको एक शुङ्गवंशीय राजाने बनवाया। विरंचीपुरमके एक लेखसे यह मालूम होता है कि वहाँके राजाने ब्राह्मणोंके लिए विवाहका यह नियम बनाया कि वे अपने यहाँके विवाहोंमें केवल कन्यादान ही किया करे और यदि कोई ब्राह्मण अपनी पुत्रीके बदलेमें रुपया स्वीकार

करेगा तो उसको राज्यदंड मिलेगा और वह बिरादरीसे च्युत कर दिया जायगा। कई चीनीप्रवासी भारतवर्षमें यात्रा करने आये थे। क्यो कि चीनीलोग बौद्धधर्मानुयायी है और भारतवर्ष उनके पूज्यदेव शाक्यमुनि गौतमबुद्धका जन्मस्थान है। उन्होंने बौद्ध स्तूपोंपर अपने भ्रमण और कालसम्बन्धी अनेक लेख लिखवाये थे जो बड़े महत्त्वके है। गौतम बुद्धके जन्मस्थान पर महाराजा अशोकका एक लेख है जो यह सूचित करता है कि बुद्धदेवकी जन्मभूमि वही है।

कुछ लेख सर्वथा ऐतिहासिक दृष्टिसे लिखे हुए मालूम होते है। जैनधर्मानुयायी महाराजा खारवेलका हाथीगुम्फा नामक गुफापर एक लेख है जिसमें उक्त महाराजके राजत्व कालके प्रथम १३ वर्षकी घटनाओंका संक्षिप्त वर्णन है। यह लेख इतिहासके लिए बड़े महत्त्व-का है। इलाहाबादके अशोक-स्तंभ पर महाराज समुद्रगुप्तका भी एक लेख है जिससे उनके राज्यका अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया है। जूना-गढ़के दो लेखोंमें सुदर्शन नामक झीलके दो बार मरम्मत होनेका उ-ल्लेख है। मन्दार पर्वतके एक लेखमें एक तालके बननेका उल्लेख है। मैसूरमें बेलतूरके एक लेखमें एक स्त्रीके सती होनेका उल्लेख है। यहीं पर एक और लेख है जिसमें गगदेश पर चोलवशीय राजेन्द्र प्रथम-की विजयका वर्णन है। कांचीके लेखोंसे ज्ञान होता है कि चोला-राज्य अंतमें विजयनगरके राज्यमें मिल गया। अमरावती स्तूपके लेखोंसे आंध्रवंशका पता चलता है। तक्षशिलामे डॉ० मारशलको ५०० से अधिक सिक्के मिले हैं जिनसे कई राजाओंके कालनिर्णय होनेकी संभावना है।

### ४. उपयोगिता।

उपर्युक्त लेख केवल उदाहरणार्थ दिये गये है; इनकी संख्या तो हजारों पर है। यह जान कर कि उनमें क्या लिखा है यह आसानीसे

समझमें आसकता है कि उनमें कितनी ऐतिहासिक सामग्री मौजूद है। भारतवर्षमें प्राचीन इतिहासकी पुस्तकोका अभाव होनेसे इन लेखोंसे बड़ी सहायता मिली है। इतना ही नहीं किन्तु बहुत सी बाते तो हमें केवल इन्हींके द्वारा मालूम हुई है। प्राचीन इतिहासका कालक्रम अधिकत्तर इन्हींके द्वारा निर्णय हुआ है क्योंकि इनमे राजाओंके नाम और संवत् लिखे है। पुराणोमे बहुतसी अशुद्धियाँ और मतभेद होनेके अतिरिक्त कालक्रम भी नहीं है और कहीं कहीं है भी, तो उसमें बड़ी भारी अशुद्धियों रह गई है। डाक्टर फ़्लीटने ऐसी अशुद्धिका एक बड़ा अच्छा उदाहरण दिया है। वे लिखते है कि पुराणोके कर्ताओंने समकालीन वंशो और राजाओको एक दूसरेके बाद मान कर उनके कालमें बड़ी गड़बडी कर दी है। पुराणोंमें मौर्यवंशके आरंभसे यवनोंके अंत तकका मध्यवर्ती काल २५०० वर्षसे अधिक दिया है। यह मालूम है कि मौर्यवंशका आरंभ ईसवी सन्से ३२० वर्ष पूर्व हुआ। इसमे यदि पुराणोंके २५०० वर्ष जोड़ दिये जावे तो यवनोंके राज्यका अंत लगभग २२०० ईसवी सन्मे अर्थात् आजसे लगभग तीन शताब्दिके पश्चात् निकलता है। पुनः पुराणोंमे यह भी लिखा है कि यवनोंके बाद गुप्तवंशीय राजा और कई अन्य राजा हुए; यदि उपर्युक्त सन्मे इन सबका भी राजत्वकाल जोड़ दिया जाय तो वर्तमानकालसे कई शताब्दि आगे निकल जायगा!! जब तक इतिहासमें कालक्रम न हो तब तक उसे इतिहास नहीं कह सकते। इन लेखोंके द्वारा हज़ारों ही ऐतिहासिक बाते मालूम हुई है। यहॉ पर उनका वर्णन नहीं हो सकता। नीचे केवल दो उदाहरण दिये जाते हैं; एकसे एक पौराणिक त्रुटि दूर हुई है और दूसरेसे एक सर्वसाधारणमें प्रसिद्ध बात भ्रांतिजनक सिद्ध हुई है।

बौद्धपुराण महावंशमें गौतमबुद्धका निर्वाणकाल ईसासे ५४३ वर्ष पूर्व दिया है। दीपवंश पुराणमें बुद्धदेवके निर्वाण कालसे अशोकके सिंहासनारूढ़ होनेतकका समय २१८ वर्ष दिया है; इसकी पुष्टि अशोकके मैसूर और अन्य स्थानोंके लेखोंसे भी होती है। अशोकके एक लेखसे यह भी मालूम हो गया है कि वे ईसासे लगभग २७० वर्ष पहले सिंहासनारुढ़ हुए थे। अब २७० में २१८ जोड़नेसे बुद्धदेवका निर्वाण काल ईसासे ४८८ वर्ष पूर्व निश्चित होता है। इसका समर्थन और भी कई प्रबल प्रमाणों द्वारा हुआ है। अतएव महावंशमें दिया हुआ समय अशुद्ध है।

लार्ड एलिनबरा जब अफ़ग़ान-युद्ध पर गये थे, तब सुलतान महमूदके मक़बरेमेंसे सन् १८८२ ई० में किवाड़ोंकी एक जोड़ी यहाँ लाये। उन्हें किसी तरह यह मालूम हुआ कि ये किवाड़ सोमनाथ (गुजरात) के सुप्रसिद्ध मंदिरोंके हैं। लोगोंने कहा कि जब सुलतान महमूदने सोमनाथ पर आक्रमण किया था तब वह इन किवाड़ोंको अपने साथ गज़नी नगरमें ले गया था। उक्त लार्ड इन किवाड़ोंको प्राचीन और ऐसे महत्त्वकी चीज समझकर भारतवर्षमे ले आये। ये किवाड़ सर्वसाधारणको दिखानेके लिए बाजारमें घुमाकर आगरेके किलेमें रख दिये गये। किवाड़ देवदारके हैं और अब भी सर्व साधारणके अवलोक़नार्थ आग़रेके किलेमें रक्खे हुए हैं। बहुत कालतक इनके विषयमें यही बात मशहूर रही कि ये सोमनाथके किवाड़ है। परन्तु कुछ समय हुआ इन पर सुल्तान महमूदका एक लेख देखा गया और उससे यह मालूम हुआ कि ये सोमनाथके किवाड नहीं हैं।

ऐसी ही बहुतसी बाते लिखी जा सकती है। इन लेखोंसे केवल ऐतिहासिक बाते ही नहीं किन्तु भूगोलसम्बन्धी बाते भी

मालूम हुई हैं । इसी उपयोगिताके कारण इन लेखोका इतिहासमें बड़ा मान है । भारतवर्षका प्राचीन इतिहास आज कल अधिक तर इन्हींके आधारपर बनाया जा रहा है ।

यद्यपि प्राप्त लेखोकी एक बडी सख्या हो गई है तथापि अभी बहुतसें लेख गुप्त हैं । अभी भारतभूमिके गर्भमें बहुतसी सामग्री छिपी हुई है । जैसा पहले कहा जा चुका है ताम्रपत्रके लेख लोगोंके घरोंमें मिलते हैं । इनमेंसे बहुतसे सरकारने अपने कर्मचारियों द्वारा लोगोंके पाससे मँगवाकर विद्वानोंसे पढ़वाये हैं और बहुतसे अभी लोगोंके पास बाक़ी हैं । बहुतसे प्राप्त पाषाणलेख अभीतक पढ़े ही नहीं गये । अत एव अभी इस सम्बन्धमें बहुत काम शेष है । आगामी अन्वेपणोमें जैनइतिहाससम्बन्धी भी बहुतसी बातोका पता अवश्य लगेगा ।

मोतीलाल जैन, आगरा ।

---

## सत्यपरीक्षक यन्त्र ।

अब दुनियामें झूठ बोलनेवालोंकी गुज़र नहीं। सत्यको छुपा रखनेवाले अब छुप नहीं सकते। अदालतोमें, मामले—मुक़द्दमोंमें मजिस्ट्रेटो और न्यायाधीशोंको अब गवाहोंके साथ जिरह करनेकी ज़रूरत नहीं रही। फिजूल जल—जलूल बातोंमें अब अदालतोंको अपना कीमती वक्त बरबाद न करना पड़ेगा। इस आश्चर्यजनक यन्त्रके आविष्कारसे अब कोई बात छुपा रखनेका उपाय नहीं रहा,— और मिथ्यावादी बातकी बातमें पकड़ लिया जायगा।

मत समझिए कि यह कोई कोरी कल्पना है या चंडू खानेका गप्प है। सचमुच ही सचझूठके पकड़नेका यन्त्र तैयार होगया है। नि०

साइरिल वार्ट नामक एक मनस्तत्त्वज्ञ विद्वानने इस यन्त्रका आविष्कार किया है।

किसी गवाहकी ज़बानबन्दी लेते समय मजिस्ट्रेटको या वकीलको पूछना पडता है कि तुमने अमुक घटना देखी है या नहीं? परन्तु अब यह पूछनेकी ज़रूरत नहीं रही। कल्पना कीजिए कि किसी आदमीका खून होगया और उसकी लाश रास्तेमें पड़ी हुई मिली । इस मुकद्दमेंमें गवाह देनेके लिए एक आदमी लाया गया। जिस समय रास्तेमे लाश डाली गई थी उस समय वह आदमी वहाँ उपस्थित था। अब उससे यह दरयाफ़्त करना है कि उसने यह घटना अपनी आँखों देखी है। इस समयके नियमानुसार वकील साहब पूछते हैं कि— "जिस समय रास्तेपर लाश डाली गई, उस समय तुम वहाँ उपस्थित थे?" परन्तु अब इसके बदले गवाहके सामने यंत्र रख दिया जायगा और सिर्फ़ 'रास्ता' इतना शब्द कहकर यत्रमें चाबी भर दी जायगी। गवाहने यदि सचमुच ही घटना देखी होगी तो उसी समय उसके मनमे लाशकी बात आ जायगी और यदि वह सत्यवादी होगा तो तत्काल ही कह देगा 'लाश'। पर यदि वह इस बातको छुपाना चाहेगा तो 'लाश' नहीं कहेगा। इसका फल यह होगा कि वह विचार करेगा, अर्थात् उसके मनमे एक भावनाका उदय होगा। यह भावना उसके मस्तकका कार्य है; वह जब इस चिन्तामे पड़ेगा तब उसके मुख नेत्र आदिमे कुछ भावान्तर होगा। वह बातको छुपानेकी जितनी ही कोशिश करेगा, उतना ही उसके मुखके भावका परिवर्तन होगा और तब उसके सामने रक्खा हुआ यन्त्र उसके प्रत्येक परिवर्तनको अङ्कित कर लेगा । उसके हृदयमें जो आन्दोलन होगा— उस यत्रसे ज़रा भी छुपा न रह सकेगा। अन्तमे या तो वह सच

कह देगा या झूठ कह देगा, अथवा बिलकुल ही चुप रह जायगा। बस, मनस्तत्त्वज्ञ विचारक, यन्त्र देखते ही जान लेगें कि वह सच कहता है या झूठ।

मि० वार्टने इस यन्त्रके सिवा छुपी बातको जान लेनेके लिए एक और भी विलक्षण उपाय निकाला है। वे कहते है कि,—किसी व्यक्तिसे कोई बात पूछी जाय और वह यदि उसका ठीक उत्तर न देकर और बात कहे तो उसे कुछ न कुछ अवश्य सोचना पड़ेगा। सत्य बात तो प्रश्न करनेके साथ ही बाहर निकल पड़ती है परन्तु झूठ बातके कहनेमें, वह चाहे कैसा ही जबर्दस्त झूठ बोलनेवाला क्यों न हो उसे जो कुछ आयास या श्रम करना पड़ेगा उसका प्रमाण किसी तरह भी छुपा नहीं रह सकता। उसके शरीरके एक प्रत्यङ्गपर उसका प्रभाव पड़ेगा और उससे उसकी झूठ बात बातकी बातमें पकड़ ली जायगी। यह प्रत्यङ्ग मनुष्यके हाथकी हथेली है। किसी बातको छुपानेके लिए जो श्रम करना पडता है, उससे मनुष्यकी हथेली पसीज उठती है। यह अवश्य है कि किसीकी हथेली कम पसीजती है और किसीकी अधिक। यह जाननेके लिए गवाहकी दोनों हथेलियाँ एक पानीसे भरे हुए वर्तनमें डुबा देनी पड़ती है और उस जलमें टेम्परेचर या तापमान यन्त्र रख दिया जाता है। इसके बाद बात पूछने पर यदि गवाह सच कहेगा तो जलकी शीतलता या उत्तापमें कुछ भी परिवर्तन न होगा, केवल शरीरकी गर्मीसे जितना होना चाहिए उतना ही होगा, किन्तु यदि वह झूठ बोलनेकी चेष्टा करेगा तो उसकी हथेलियाँ थोड़ी बहुत अवश्य पसीज आयगीं तथा उनके प्रभावसे जलमें परिवर्तन हो जायगा और उस परिवर्तनकी साक्षी तापमान तत्काल ही दे देगा। तब न्यायधीशों और जूरियोंको सिरपच्ची न करना पड़ेगी, वे जान लेंगे कि गवाह सच कहता है या नहीं।

अभीतक इस यन्त्रका व्यवहार शुरू नहीं हुआ है। जब तक यहाँवालोंको इसके दर्शन न हों, तब तक आर्यसमाजी विद्वानोंको चाहिए कि वे किसी वेदमन्त्रको खोजकर सिद्ध करे कि हमारे वैदिक ऋषि हजारों वर्ष पहले इस यन्त्रका व्यवहार करते थे और जैन पण्डितोंको अपनी शास्त्रसभाओंमे यह कहकर ही श्रोताओंकी जिज्ञासा चरितार्थ कर देना चाहिए कि भाई, जो यह जानता है कि पुद्गलोंमे अनन्त शक्तियाँ है, उसे ऐसे आविष्कारोंसे जराभी आश्चर्य नहीं हो सकता।

---

## विविध-प्रसङ्ग।

### १ मनुष्यगणनाकी रिपोर्टमें जैनजातिकी संख्याका ह्रास।

पिछली १९११ की सेंससरिपोर्टके पृष्ठ १२६ मे जैनोके विषयमें जो कुछ लिखा है उसका साराश यह है:—“भारतके धर्मोंमेंसे जैन-धर्मके माननेवाले लोगोंकी संख्या १२॥ लाख है। संख्याके लिहाजसे जैनसमाज बहुत ही कम महत्त्वका है। भारतको छोड़कर इतर देशोंमे जैनधर्मके माननेवाले बहुत नही दिखते। राजपूताना, अजमेर और मारवाड़ प्रान्तमें इनकी सख्या २ लाख ५३ हजार और दूसरी रियास-तो तथा अन्यान्य प्रान्तोंमे ८ लाख १५ हजार है। अजमेर, मारवाड़ और बम्बई अहातेकी रियासतोंमें उनका प्रमाण शेष जनसंख्याके साथ सैकड़ा पीछे ८, राजपूतानेमें ३, बड़ोदामें २ और बम्बईमें १ पडता है। दूसरे स्थानोमें उनकी वस्ती बहुत विरल है। ये लोग अधिकतर व्यापारी है। पूर्वभारतमे प्रायः सभी जैन व्यापारके ही उद्देश्यसे जाकर बसे है। दक्षिणमें जैनोकी सख्या थोड़ी है और उनमे प्रायः खेतीसे जीविका निर्वाह करनेवाले है। सन् १८९१ से जैनोंकी सख्या धीरे

धीरे कम हो रही है। १९०१ में वह प्रति सैकड़े ५.८ कम हुई थी और अवकी मनुष्यगणनामें भी प्रति सैकड़ा ६.४ कम हो गई है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है जैन लोग हिन्दूसमाजव्यवस्थाके अनुयायी हैं। इसलिए उनका झुकाव अकसर अपनेको हिन्दू कहलानेकी ओर रहता है। अभी अभी उनमेंसे कुछ लोग आर्यसमाजमे जाकर मिल गये हैं। पंजाव, वायव्य प्रान्त और बम्बईके जैनोंका झुकाव हिन्दुओंके त्योहार तथा पर्व पालनेकी ओर विशेष है, इसलिए धीरे धीरे उनका हिन्दूधर्ममें मिल जाना संभव है। इन दश वर्षोंमें उनकी संख्या वायव्यप्रान्तमें प्रतिशत १०.५, पजाबमे ६.४ और बम्बईमें ८.६ कम हुई है। बड़ोदाराज्यके अधिकारियोंका मत है कि बड़ोदाराज्यमें जो प्रतिशत १० की कमी हुई है वह लोगोंके दूसरे देशोंको चले जानेके कारण हुई होगी। इसीप्रकार अभी हाल ही जो मनुष्यगणना की गई है उससे मालूम होता है कि कुछ लोगोंने अपनेको हिन्दू बतला दिया होगा। परन्तु यह ठीक नहीं मालूम होता। मध्यप्रान्त और बरारमे भी फिरसे मनुष्यगणना की गई है, परन्तु उससे यही कहना पड़ता है कि कुछ लोग परधर्मानुयायी बन गये है। जैसे कि आकोला जिलेके कासार और कलार जातिके जैन हिन्दुओंमें मिल गये है। मध्यभारतमे जो प्रतिशत २२ की कमी हुई है उसके विषयमें भी यह कहना ठीक नहीं कि वह भी बड़ोदाके समान लोगोंके विदेश जानेके कारण हुई होगी। हमारी समझमे उनकी यह कमी प्लेगके कारण हुई है। इसमे ज़रा भी सन्देह नहीं। क्योंकि जैन लोग शहरोंमें ही कसरतसे रहते हैं और उनकी सघन वस्तियाँ वारवार प्लेगके मुखमे पड़ जाया करती हैं।" रिपोर्टके इन मन्तव्योंपर जैनोंका विचार करना चाहिए।

---

## २. पूजाप्रिय पण्डितोंकी पदवियाँ ।

पदवियोंके विषयमें हम पिछले द्वितीय अकमें एक नोट लिख चुके हैं। उससे पाठकोंने ख़याल किया होगा कि यह पदवियोंका रोग श्रावक या गृहस्थोंमें ही प्रविष्ट हुआ है; परन्तु सहयोगी जैनहितेच्छुसे मालूम हुआ कि अब जैनसाधुओं पर भी इसने आक्रमण किया है। अभी कुछ ही दिन पहले पैथापुर नामक एक ग्राममें श्रीबुद्धिसागर नामक श्वेताम्बर साधु ' शास्त्रविशारद जैनाचार्य ' की पदवीसे विभूषित किये गये हैं। लगभग दो वर्ष पहले उक्त साधुमहाराज जब बम्बईमें थे, तब ही उन्हें यह पदवी दी जानेका प्रयत्न किया गया था; परन्तु सुनते हैं कि उस समय मुनिमहाराजने पदवी लेनेसे इंकार कर दिया था और इसका कारण यह था कि आपके सस्कृतशिक्षक प० श्यामसुन्दराचार्यने काशीके पण्डितोंसे पदवी दिलानेके लिए जो यत्न किया था, किसीने उसकी पोल खोल दी थी। परन्तु अब उसे लोग भूल गये होंगे और कमसे कम एक ग्रामके लोग तो उससे अपरिचित ही होंगे, शायद इसी विश्वाससे महाराजने इस समय उक्त पदवी ग्रहण कर ली। इसमें सन्देह नही कि काशीके ब्राह्मण पण्डित पदवियोंके देनेमें बहुत ही उदार है और भक्ति तथा पूजासे इन देवताओंको प्रसन्न करना बहुत ही साधारण बात है; परन्तु जैनधर्मके अनुयायियोंके लिए यह विषय बहुत ही विचारणीय है कि वे इन पूजाप्रिय पण्डितोंकी दी हुई पदवियोंके भारसे नीचे गिरेंगे या ऊपर उठेंगे।

इस नोटके लिख चुकनेपर हमने सुना कि काशी स्याद्वादविद्यालयके अधिष्ठाता बाबू नन्दकिशोरजीको अभी थोड़े दिन पहले जो ' विद्यावारिधि' की पदवी प्राप्त हुई है वह भी काशीके पण्डितोंकी

दी हुई है। हम नहीं सोच सकते कि एक काम करनेवाले पुरुषने इस पदवीके पानेका प्रयत्न क्या समझकर किया होगा।

---

## ३ संस्थाओंके पाप और समाचारपत्र।

समाचारपत्रोंसे जितना अधिक लाभ होता है, उतनी ही अधिक उनसे हानि भी होती है यदि उनका सम्पादन निरपेक्ष दृष्टिसे सत्यका उपासक बनकर न किया जाता हो। इस समय समाचारपत्र हमारे नेत्रों और कानोंका अधिकार धीरे धीरे छीनते जा रहे है—नेत्रों और कानोंके होते हुए भी हम समाचारपत्रोंके नेत्रो और कानोंपर विश्वास करनेके लिए वाध्य होते जा रहे है। इस लिए आवश्यक है कि हम इन नये नेत्रो और कानोंको ऐसे बनावे जिससे हमे कभी धोखा न खाना पड़े—और जबतक ऐसा न हो तबतक केवल इन्हींके अवलम्बन पर न रहें। जैनसमाजकी तीन चार संस्थाओंके विषयमें हमे अभी अभी जो समाचार मिले हैं, उनसे हम यह बात कहनेके लिए लाचार हुए हैं कि हमारे समाचारपत्र सर्व साधारणको बड़ा भारी धोखा दे रहे हैं और उक्त संस्थाओंके भीतरी मालिन्य तथा पाशविक अत्याचारोंको छुपाकर उन्हें आदर्श सस्था बतला रहे हैं। जिस समय हमने एक संस्थाके कुछ बालकोंकी चिट्ठियाँ पढ़ीं, उस समय उनके ऊपर होते हुए घृणित अत्याचारोंकी पीड़ासे हमें रो आया! हमें पहले विश्वास न था कि जैनसमाजमें ऐसे ऐसे नरपशु भी है जो संस्थाओंके संचालक बनकर छोटे छोटे अनाथ बच्चोंके साथ ऐसी नारकी लीला कर सकते हैं और इस पर भी कोई उनके पंजेसे संस्थाको छुड़ानेका साहस नहीं कर सकता है। थोड़े ही दिन पीछे जब हमने एक प्रतिष्ठित गिने जानेवाले पत्रमें इसी संस्था-

की और इसके सचालककी प्रशसाके गीत पढ़े, तव हमें माल्लूम हुआ कि समाचारपत्रोंसे हमारी हानि भी कितनी हो रही है। एक दूसरी सस्थाके आनरेरी व्यवस्थापक महाशय भी कई विद्यार्थियोंके साथ अपनी राक्षसी वासनायें तृप्त किया करते थे और अपने पृष्ठपोषकोंकी सहायतासे लोगोकी दृष्टिमे पुरुषोत्तम बन रहे थे। अभी कुछ ही दिन पहले एकाएक आपकी पैशाचिक लीला प्रगट हो गई और गहरी मार खाकर आप संस्थासे अलग हो गये। यह सब होनेपर भी आश्चर्य यह है कि समाचारपत्रोंने आप पर कलङ्कका एक भी छींटा न पड़ने दिया। एक दो संस्थाये और भी ऐसी हैं जिनके भीतर खूब ही घृणित कर्म होते है परन्तु वाहरसे वे वहुत ही उज्ज्वल और पवित्र बन रही है। कुछ महात्माओंकी उनपर इतनी गहरी कृपा है कि अभी उनका स्वरूप लोगोंपर प्रगट होनेकी आशा नहीं की जा सकती; परन्तु यह निश्चय है कि सोनेके चमकदार घड़ेमे भरा हुआ भी मैला एक न एक दिन अपनी भीतरी दुर्गन्धिसे प्रगट हुए विना न रहेगा। अपनी सस्थाओको इन पापोंसे बचानेके लिए हमें समाचारपत्रोंकी दशा सुधारना चाहिए, अपनी बुद्धि, नेत्र और कानोंको काममें लाना चाहिए और साथ साथ जहाँ सस्थायें हों वहाँके स्थानीय लोगोंका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे उनपर तीक्ष्ण दृष्टि रक्खें और उनकी भीतरी दशाओंसे सर्व साधारणको परिचित करते रहें। समाचारपत्रोंमे विश्वस्त समाचार प्रगट न होनेका एक कारण स्थानीय लोगोंकी उपेक्षा भी है।

---

### ४. संस्थाओंको योग्य संचालक नहीं मिलते।

हमारे यहाँ नई नई सस्थायें खुल रही है और खोलनेका उत्साह भी यथेष्ट दिखलाई देता है, परन्तु यह वड़ी ही चिन्ताकी बात है कि

उनके चलानेके लिए योग्य पुरुष नही मिलते। जिस संस्थाको देखिए उसीमें योग्य पुरुषोंकी कमी दिखलाई देती है। क्योंकि अभी तक उच्चशिक्षाप्राप्त अनुभवी सदाचारी और स्वार्थत्यागी पुरुषोंका ध्यान ही इस ओर नहीं गया है। हमको भय है कि यदि यही दशा और कुछ समय तक रही और उपर्युक्त अर्द्धदग्ध विषकुम्भपयोमुख चरित्रहीन महात्माओंके ही हाथमें संस्थाओंकी बागडोर बनी रही तो लोगोंके बढ़ते हुए उत्साह और औदार्यपर बड़ा भारी धक्का लगेगा और उन्नतिके मार्गमें हम फिरसे पिछल जावेंगे। क्या इस समय भी शिक्षित जनोको हमारी इन संस्थाओंपर दया न आयगी ?

---

## ५. जैनसिद्धांतभास्कर।

जैनसिद्धान्तभास्करके पहले अंकोंको और उसके कार्यकर्त्ताओंके उत्साहको देखकर हमने समझा था कि जैनसमाजमे अपने ढँगका यह एक निराला ही पत्र होगा; और ऐतिहासिक लेख प्रकाशित करके लुप्त जैन इतिहासका उद्धार करेगा; परन्तु देखते है कि हमारी यह आशा निराशामें परिणत हो रही है। त्रैमासिक होकर भी उसके वर्षों तक दर्शन नहीं होते है। लगभग ढाई वर्षमें उसकी केवल दो प्रतियाँ या तीन अंक प्रकाशित हुए हैं। चौथा अंक कब तक प्रकाशित होगा, इसका अभी तक कुछ ठिकाना नहीं है। हम आशा करते है कि जैन सिद्धान्तभवन, आराके सचालकगण इस ओर दृष्टि डालेगे और जैन-समाजके इस अभिनवपत्रको समयपर निकालनेकी चेष्टा करेंगे। इस नोटके छप चुकनेपर- जैनमित्रसे मालूम हुआ कि भास्करका चौथा अंक प्रेसमें जा चुका है। खुशीकी बात है।

---

## ६. जैनतत्त्व-प्रकाशक।

इटावाके जैनतत्त्वप्रकाशकके भी सात आठ महिनेसे दर्शन नहीं हुए है। बीचमें सुना था कि कई महिनोंका एक संयुक्त अंक निकलनेवाला

है; परन्तु उसका भी अब तक पता नहीं है। यो तो जैनसमाजमें बहुत ही कम पत्र ऐसे है जो समयपर निकलते हों। सब ही कुछ न कुछ विलम्बसे निकलते हैं; परन्तु इन नवजात पत्रोंका विलम्ब बहुत ही खटकता है। शुरूमें ये बड़ा जोश-खरोश दिखलाते हुए दर्शन देते हैं और पीछे गहरी डुबकी ले जाते है। हमारी समझमें इसका कारण अनुभवकी कमी और उत्साहकी अधिकता है। काम जब सिरपर पड़ता है, तब मालूम होता है कि वह कठिन है। पर नये जोशवाले इस बातपर विचार नहीं करते और अन्तमें नाना असुविधाओंमें पड़कर डुबकी लेनेके लिए लाचार होते हैं। अच्छा हो, यदि कर्मक्षेत्रमें पैर रखनेके पहले ही आनेवाली असुविधाओंपर थोडासा विचार कर लिया जाय। इस नोटके लिखे जानेके बाद मालूम हुआ कि तत्त्वप्रकाशक बन्द कर दिया गया।

---

## ७. द्रव्यदाता और जीवनदाता।

किसी भी आन्दोलन या प्रयत्नका फल जल्दी दृष्टिगोचर नही होता; बहुत समय तक उसकी प्रतीक्षा करनी पडती है। विशेष कर ऐसे समाज या समूहके लिए किये हुए आन्दोलनका फल तो देरसे दृष्टिगोचर होना ही चाहिए जो मृतप्राय हो रहा हो, जिसकी हिलनेचलनेकी शक्ति नष्ट हो गई हो, जो किसी भी नई बातको शकाकी दृष्टिसे देखता हो और अपनी पुरानी लकीरका फकीर बना हुआ हो। लगभग २० वर्षके लगातार आन्दोलनके बाद अभी अभी जैनसमाजके करवट बदलनेके लक्षण दिखलाई दिये हैं और अब आशा होने लगी है कि वह कुछ समयमें एक सजीव समाजके रूपमें खडा हो सकेगा। इसके पहले बहुतसे आन्दोलन करनेवालोंको कभी कभी बडी ही निराशा होती थी और वे समझते थे कि यह समाज सर्वथा ही निर्जीव हो गया है—इसमें चेतनता लानेका प्रयत्न करना निष्फल ही होगा। परन्तु सौभाग्यका विषय है कि अब हम उक्त निराशाकी सीमाको पार गये है और आशाके हरे भरे क्षेत्रको अपने सामने देख रहे हैं। अभी अभी जो हमारे यहाँ दो लाख और चार लाखके दो बडे बडे दान हुए हैं, उनके कारण निराशा हमारे हृदसे निकल ही रही थी कि बाबू सूरजभानजी वकील और बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तारके स्वार्थत्याग व्रत ग्रहण

करनेका समाचार मिला और आशा अपने दोनों हाथोंसे आश्वासन देती हुई दिखलाई दी। किसी भी समाजकी उन्नतिके लिए दो बातोंकी सबसे अधिक अवश्यकता है.—एक तो द्रव्यकी और दूसरे कार्य करनेवाले स्वार्थत्यागी मनुष्योंकी। यद्यपि हमें अपने अभीष्टकी प्राप्तिके लिए सेठ हुकमचन्दजी जैसे सैकड़ों धनिकोंकी और बाबू सूरजभानजी तथा जुगलकिशोरजी जैसे सैकडों हजारों स्वार्थत्यागियोंकी जरूरत होगी–दो चार धनिकों और त्यागियोंसे हमारा काम नहीं चल सकेगा, तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हम सफलताके मार्गपर जा रहे हैं, द्रव्यदाता और जीवनदाता दोनोंने ही हमें एक साथ दर्शन दिये है और हमारे हृदयमें एक नवीन ही उत्साह और बलका सचार कर दिया है। हमारा दृढ विश्वास होगया है कि अब जैनसमाज उठेगा, बलवान् होगा, उद्योगशील होगा और एक दिन सारे उन्नत समाजोंके मार्गका सहचर होगा। इन उदाहरणोंसे हमें जानना चाहिए कि हमारे प्रगति और उन्नतिसम्बन्धी कोई भी आन्दोलन व्यर्थ न जावेंगे–उनका अवश्य ही प्रभाव पडेगा। भले ही सफलता जल्दी न हो, पर होगी अवश्य। हमें निराश न होना चाहिए और कष्टसाध्यसे कष्टसाध्य विषयका भी आन्दोलन करनेसे न चूकना चाहिए। यह आन्दोलनका ही प्रसाद है जो आज केवल प्रतिष्ठाओंमें ही अपने धनको अंधाधुध खर्च करनेवाली जातिमें विद्यासंस्थाओंके लिए भी लाखों रुपया देनेवाले उदार पुरुष दिखलाई देने लगे हैं और जीवनभर रुपया ढालनेकी मशीन बने रहनेवाले लोगोंमें भी जाति और धर्मसेवाके लिए जीवन उत्सर्ग करनेवालोंके दर्शन होने लगे हैं।

---

## ८. महाराष्ट्र जैनसभाके वार्षिकोत्सवमें धींगाधींगी।

महासभाके जल्सोंमें और इस ओरकी प्रान्तिकसभाओंके जल्सोंमें कई बार धींगाधींगीकी नौबत आ चुकी है; परन्तु दक्षिण प्रान्तकी सभायें इससे साफ़ बची हुई थीं। इससे हम सोचते थे कि दक्षिणके जैनी भाई बहुत ही शान्त और विचारशील है; चुपचाप अपना काम किये जा रहे है। किन्तु अभी ता० १०–११–१२ अप्रैलको दक्षिणमहाराष्ट्र जैनसभाका जो अधिवेशन हुआ उसकी रिपोर्टसे माल्म हुआ कि दक्षिणी भाई हम सबका भी नम्बर ले गये। कुछ महात्माओंने

इस मौक़ेपर यहाँ तक सिर उठाया कि एक दिन सभाका काम बन्द रखना पड़ा, सभामंडप उखाडके फेंक देना पड़ा और अन्तमें पुलिस तककी सहायता लेनी पड़ी, तब कहीं जाकर शान्ति हुई और सभाके अधिवेशन किये जा सके! पाठकोंको माळूम होगा कि श्रीयुक्त अण्णापा बाबाजी लट्ठे एम. ए. महाराष्ट्रसभाके प्रधान स्तम्भ हैं। उक्त सभाने अब तक जो कुछ सफलता प्राप्त की है उसमें आपका हाथ सबसे अधिक रहा है। कोल्हापुर बोर्डिंगके इस समय आप सेक्रेटरी है। आप एक स्वाधीन प्रकृतिके मनुष्य हैं, इसलिए कुछ लोगोंकी आँखोंमें आप शुरूसे ही खटक रहे हैं। ये लोग नहीं चाहते कि लट्ठे महाशय बोर्डिंगके सेक्रेटरी रहें। इसके लिए वे लगातार कई वर्षोंसे प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु सफलता नहीं होती। कई बार सभामें पेश करके भी उन्हें इस विषयमें निराश होना पड़ा है; क्योंकि सभाका बहुमत लट्ठे महाशयके ही पक्षमें होता था। इससे वे बहुत ही चिढ़ गये थे और जैसे बने तैसे अपना मनोरथ सिद्ध करनेका मौका देख रहे थे। इसी समय सभाका वार्षिक अधिवेशन हुआ और उक्त मंडलीने जिसमें कि पंडित कल्लापा भरमापा निटवे और श्रीयुत बापू अण्णा पाटील मुख्य हैं—लगभग २०० गुंडोंको एकत्र करके बोर्डिंगको अपने हस्तगत करनेका और लट्ठे सा० को बोर्डिंगसे बलपूर्वक अलग करनेका प्रयत्न किया। जब ये लोग प्रत्यक्ष रूपसे बखेड़ा करनेके लिए तैयार हो गये, तब अधिवेशनके सभापति श्रीयुक्त जयकुमारजी चवरे, बी. ए., एल एल. बी. और दूसरे मुखियोंने इस झगड़ेको आपसमें ही मिटा डालनेका शक्तिभर प्रयत्न किया। कहा कि आप लोग सभामे यह प्रस्ताव पेश करें कि लट्ठे सा० बोर्डिंगके सैकेटरी न रक्खे जावे और सभा इसका जो फैसला करे उसे सबको मानना

चाहिए। परन्तु इसमें जरा भी सफलता न हुई। क्योंकि उक्त मण्डली जो कुछ करना चाहती थी वह सब अन्यायपूर्वक। उसने साफ़ कह दिया था कि सभाके बहुमतको हम कुछ नहीं समझते। यदि तुम लड्डेको बोर्डिंगसे अलग न करोगे तो हम सभामें दंगा करेंगे और लड्डेको घरसे निकालकर बाहर कर देंगे। इसी मौकेपर मंडलीकी ओरसे एक विज्ञापन प्रकाशित किया गया था। उसमे लिखा था कि "लड्डेने अपनी भतीजीका व्याह शास्त्रविरुद्ध, रूढ़िविरुद्ध और सभाके प्रस्तावके विरुद्ध किया, इस लिए उन्हे सभाके कामसे अलग कर देना चाहिए।" इसपर लड्डे सा० ने कहा कि "चतुर्थ और पंचम जातिमें परस्पर विवाहसम्बन्ध होना चाहिए। इसे मैं अच्छा समझता हूँ। इसी लिए मैंने अपनी भतीजीका विवाह चतुर्थ जातिके लड़केके साथ किया है और आगे भी मैं ऐसे विवाह करूँगा। सभा चाहे तो इस विषयमें अपनी प्रसन्नता या नाराजी प्रकट कर सकती है। इस कारणसे अथवा और किसी कारणसे यदि सभाको मेरी आवश्यकता न हो, तो मै बोर्डिंगका ही क्यों सभाकी सभासदीका भी सम्बन्ध तोड़ देनेके लिये तैयार हूँ।" लड्डेने अपना यह विचार सभाके समक्ष भी प्रकट कर दिया। परन्तु सभाको यह मालूम हो चुका था कि इस बखेड़ेका कारण चतुर्थ-पंचम विवाह नहीं किन्तु दश बारहवर्षका पुराना वैर है और इस लिए विपक्षीगण लड्डे सा० को अलग करके उनकी जगह अपने एक मुखियाको—न कि सभाके चुनावके अनुसार किसी दूसरे योग्य पुरुषको—बिठाना चाहते हैं, इसलिए उसे लाचार होकर इस ओर दुर्लक्ष्य करना पड़ा और अन्तमें पुलिसके द्वारा शान्ति करानी पड़ी। इसके बाद सभाका कार्य कुशलतापूर्वक समाप्त हुआ। सभाने अबकी बार एक नया पाठ सीखा और ऐसे बखेड़ोसे बचनेके लिए उसने अपनी नियमावलीका

वहुत कुछ संशोधन और परिवर्तन किया । इस वृत्तान्तसे इस वाक्यकी वास्तविक सार्थकता माळूम होती है कि "उन्नतिका मार्ग विरोधके दाँतोंमेंसे होकर है ।" जब हम आगे बढे है, तब इस प्रकारके विघ्न और कष्ट आवेंगे ही । विघ्नोसे घवड़ाना नहीं चाहिए । इस प्रकारके विरोधोंको हमे बुरा भी न समझना चाहिए । क्योंकि इनसे हमारी जीवनी शक्तिका पता लगता है और काम करनेकी शक्तिको उत्तेजन मिलता है ।

---

## ९. अनन्त जीवन या दीर्घायुष्यकी प्राप्ति ।

मथुराके पंचम वैद्य-सम्मेलनमे श्रीयुक्त वैद्य भोगीलाल त्रीकमलालका इस विषयपर एक पाण्डित्यपूर्ण लेख पढ़ा गया था । इस लेखमे वैद्यजीने कई विलक्षण और विचारणीय बातें कहीं है । आप कहते है कि मनुष्योंके लिए मृत्यु स्वाभाविक नहीं है । वैज्ञानिक विद्वानोंका मत है कि यह अभी तक किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सका है कि मृत्यु स्वाभाविक है । ऐसा एक भी कारण शरीरविज्ञान शास्त्र नही वतला सकता, जिससे प्रकृतिके और स्वास्थ्यके नियमोंका अच्छी तरह पालन करनेपर भी मनुष्यको मृत्युके अधीन होना ही पडे । विविध शारीरिक क्रियाओंके ऊपर योग्य उपायोंके द्वारा कमसे कम इतना अधिकार तो मनुष्य अवश्य प्राप्त कर सकता है कि जिससे अपने शरीरको दीर्घ काल तक जीवित रख सके । मनुष्यका शरीर ऐसे यन्त्रके समान नही है जिसका निरन्तर घर्षण होते रहनेसे क्षय हो जाता है । क्योंकि वह निरन्तर ही अपने आपको नवीन वनाता रहता है । हमे प्रतिदिन नया शरीर मिलता रहता है । प्रतिदिन ही हमारी जन्मतिथि है । क्योंकि हमारे शरीरकी क्षय और नवीकरणकी क्रिया कभी नहीं रुकती । अर्थात् मलविसर्जन और नवीकरणकी क्रियाओंमें सामञ्जस्य रखनेसे शरीरका सर्वथा

क्षय होना रोका जा सकता है। आयुके क्षय करनेवाले कारणोंको हम नहीं जानते अथवा जाननेपर भी उन्मत्तइन्द्रियोंके अधीन होकर उनकी परवा नहीं करते, इसी लिए हम अमरत्वकी प्राप्ति नहीं कर सकते। इस देशमें पहले ऐसे अनेक महात्मा हो गये हैं जिन्होने मृत्युपर विजय प्राप्त की थी। दीर्घायु प्राप्त करनेवालोंके तो सैकड़ो दृष्टान्त अब भी मिलते है। इसके बाद वैद्यजीने १०० वर्षसे लेकर २०७ वर्ष तककी आयुवाले देशी और विदेशी १५ स्त्री पुरुषोंके विश्वसनीय उदाहरण देकर दीर्घायुष्यकी आवश्यकता बतलाते हुए उसकी प्राप्तिके उपाय वर्णन किये है। वे उपाय सक्षेपमें ये हैं:—
१ ब्रह्मचर्य—दीर्घायुष्यसे इसका बहुत बड़ा सम्बन्ध है। अष्टांग ब्रह्मचर्य (दर्शन, स्पर्शन, भाषण, विपयकथा, चिन्तन और क्रीडा आदि) जितना ही अधिक कालतक पाला जायगा, जीवन उतना ही अधिक चिरस्थायी होगा। यदि जीवनपर्यंत ब्रह्मचर्य पालन न किया जासके, तो कमसे कम विवाहित जीवन धारण करके इन्द्रियनिग्रहका अभ्यास अवश्य करते रहना चाहिए। सुश्रुतके मतसे ४० वर्षकी अवस्थातक समस्त धातुओंकी पुष्टि होती रहती है तथा ४८ वर्षमें सांगोपाग शरीरकी समस्त धातुयें सम्पूर्णताको प्राप्त हो जाती है। प्राणीविज्ञानशास्त्रने सिद्ध किया है कि दूध पीनेवाले (mammalia) प्राणियोंकी शरीररचनाका क्रम पूर्ण होनेमें जितना समय व्यतीत होता है उससे पाँचगुणी उनकी आयु होती है। इस नियमके अनुसार जो ४८ वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करेगा और आरोग्यशास्त्रके नियमोंके अनुकूल चलेगा, वह अवश्य ही २४० वर्षकी आयु प्राप्त कर सकेगा। इसी तरह ४० वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करनेवाला २०० वर्ष तक और २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालनेवाला १२५ वर्षकी

अवस्था तक जीवित रह सकता है। छान्दोग्य उपनिषत्‌में कहा है कि ४८ वर्षकी अवस्था तक ब्रह्मचर्य पालन करनेवाला पवित्रात्मा ४०० वर्ष तक जी सकता है। २ **मानसिक विश्वास**—सदा यह विश्वास रक्खो कि हम बहुत काल तक जीते रहेंगे। एक ऐसे काल्पनिक चित्रको अपने हृदयमें सदा ही अंकित किये रहो कि जो शतवर्षायुष्क, स्वस्थ और सुन्दर हो। इससे न्यून जीवनकी इच्छा कभी मत करो। अपनी शक्तिपर विश्वास रक्खो। ३ **उत्तमस्वभाव**- अपनी आदतोंको ऐसी बनाओ जिससे तुम्हारी मानसिक स्थिति सदैव आनन्दमय, उत्साहयुक्त, दृढ, साहसपूर्ण, उच्चभावनामय रहे और जीवनमें नये अणु पैदा होनेसे जीवनी शक्ति बढा करे। जीवनक्रियाकी अन्तरायस्वरूप बुरी आदतोंको छोड़ दो। ४ **एकाग्रता**—प्रत्येक अच्छे विषयमें मनको एकाग्र करनेका अभ्यास करो। किसी भी कार्यको लापरवाहीसे या आफत टालनेके ढंगसे मत करो। ५ **व्यायाम**—शक्तिके अनुसार नियमित रूपसे व्यायाम या कसरत किया करो जिससे शरीर यौवनपूर्ण और सुदृढ बना रहे। ६ **निश्चित उद्देश्य**—अपने जीवनका एक निश्चित उद्देश्य रक्खो। लक्ष्यहीन मन बिना पतवारके जहाज़ समान है। ७ **श्वासोच्छ्वास क्रिया**—श्वास लेनेकी शक्तिको अच्छी तरहसे बढाओ। खूब स्वच्छ और ताजी हवाका सेवन करो। जिस कमरेमें हवाका यथेच्छ विहार न होता हो, उसमें कभी मत सोओ। ८ **घूमना फिरना**—निरन्तर दूर दूर तक घूमनेको जाओ। उस समय अच्छी तरहसे श्वास प्रश्वास लो, शरीरको ढीला रक्खो और प्राकृतिक सौन्दर्यका अवलोकन करो जिससे नवीन उत्साह और उमंग पैदा होती रहे। ९ **स्नान**—शारीरिक और श्वासोच्छासक व्यायामके बाद प्रतिदिन ठंडे जलसे स्नान करो। सप्ताहमें दो

चार सोनेके पहले उष्ण जलसे स्नान करो और कभी कभी सारे शरीरको सूर्य किरणोंका स्नान भी कराया करो। १० भोजन—जल्दी पचनेवाला और शरीरको पुष्ट करनेवाला भोजन दो बार ग्रहण करो। भोजनको अच्छी तरह चबा कर गलेके नीचे उतारो। मांस, काफी, चाह आदिको हाथसे भी मत छुओ। भोजनके साथ पानी या प्रवाही पदार्थ मत पियो। भोजनके बीचमे बहुत धीरे धीरे थोड़ा पानी पीना चाहिए। इससे वृद्धावस्था लानेवाले कारण दूर होते है और युवावस्था तथा सौन्दर्य प्राप्त होता है। मिताहारी बनो। सच्ची भूख लगने पर भोजन करो। यदि मिल सके तो प्रतिदिन एक सेव अवश्य खाओ। इस फलमें जीवनके नवीन तत्त्व उत्पन्न करनेका विशेष गुण है। ११ निद्रा—७–८ घंटेकी निद्रा लो और शरीरको शिथिल करके आराम करो। चुस्त कपड़े कभी मत पहनो। सादे और स्वच्छ कपडे पहनो। १२ फुटकर बातें—अत्यावश्यक और अल्पावश्यक कामोंका बोझा अपने सिर पर मत लो। काम करनेकी पद्धति सीखो। जोखिमोंका ख़याल रखके चलो। शरीरमें जो नाश और नवीकरणकी क्रिया चला करती है उसे अच्छी तरह समझनेका प्रयत्न करते रहो। इस सिद्धान्त पर विश्वास रक्खो कि अपने जीवन और शरीरमें परिवर्तन करनेके लिए हम स्वयं शक्तिवान् है। बूढ़े होनेके विचारोंको कभी पास मत आने दो। जवानीके सशक्त विचार स्थिर रक्खो। दीर्घजीवनकी भावनाको दृढ बनाते रहो। सदैव प्रसन्न और आनन्दित रहो। धीरे बोलनेका अभ्यास करो। क्रोध, अभिमान, भय, लोभ, स्वार्थपरता, ठगाई, विश्वासघात, दुर्व्यसन, दुराचार, निन्दा, चुगली आदि दुर्गुणोंको छोड़ दो। सहनशीलता, उदारता, परोपकार, दया, प्रेम आदि गुणोंको अपनाओ। दीर्घजीवन, आरोग्य और सौन्दर्यके विषयमें

अपने मनोबलको दृढ करो जिससे अनन्त जीवन, महान् पराक्रम और प्रभाव आदिसे तुम्हारी मित्रता हो।

---

## ७ जैन पत्रोंकी आर्थिक अवस्था।

जैनसमाजको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि उसके साप्ताहिक पाक्षिक या मासिक किसी भी पत्रकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है। ऐसा एक भी पत्र नहीं है जो मुनाफेके लिए निकाला जाता हो अथवा जिसने कुछ मुनाफ़ा उठाया हो। आप चाहे जिस पत्रका वार्षिक हिसाब मँगाकर देख लीजिए वह बराबर घाटेमे ही उतरता हुआ मिलेगा। इसी घाटेके कारण अनेक पत्र बन्द हो जाते है और आगे उनसे जो लाभ होता उससे समाजको वञ्चित रहता पड़ता है। जो पत्र उनके संचालकोके साहस अध्यवसाय और प्रयत्नसे घाटा सहकर भी किसी तरह चल रहे है उनकी अवस्थामें भी जितनी उन्नति होना चाहिए उतनी नहीं होती। हो भी नहीं सकती। क्योंकि अच्छे उपयागी लेखोंके लिखने और सग्रह करनेके लिए, पत्रका आंकार सौन्दर्य बढानेके लिए, चित्रादि प्रकाशित करनेके लिए, समयपर प्रकाशित करनेके लिए और उत्तम व्यवस्था रखनेके लिए रुपयोंकी जरूरत होती है और यथेष्ट रुपया तब हो जब ग्राहकोंकी संख्या अधिक हो। परन्तु ग्राहक मिलते नहीं और ऐसी दशामें ये पत्र किसी तरह रोते झींकते हुए चलाये जाते हैं। न उनमें ताजे और विश्वस्त समाचार रहते हैं, न उच्चश्रेणीके प्रगतिकारक लेख रहते है, न मनोरंजनके साथ साथ शिक्षाकी सामग्री रहती है, न धर्म और समाजकी अवस्थाकी गभीर आलोचना रहती है और न साहित्यकी चर्चा होती है। फल इसका यह हुआ है कि समाजमे ज्ञानकी वृद्धि और नये विचारोंकी बाढ़ बन्द हो रही है। उत्तेजन और कार्यक्षेत्रके अभावसे न तो लेखक

ही तैयार होते हैं और न अच्छे विचारोंका विस्तार तथा ज्ञानकी अभिरुचि बढती है । वर्तमान समयमें समाचारपत्र और मासिकपत्र उन्नतिके सबसे बड़े साधन हैं। इस बातको सब ही स्वीकार करते है। इस लिए इनकी दशा सुधारना मानो अपनी ही दशा सुधारना है। हमारी कुछ परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि यदि हम इस बातको समयपर छोड़ दें—यह सोच लें कि धीरे धीरे ग्राहकसंख्या बढ़ेगी और उससे पत्रोंकी दशा अच्छी हो जायगी, तो ठीक न होगा। ग्राहकसंख्या थोड़ी बहुत अवश्य बढ़ती रहेगी, परन्तु वह इतनी नहीं बढ़ सकती जितनी कि दूसरोंके पत्रोंकी बढ़ सकती है। क्योंकि एक तो हमारी सख्या बहुत ही थोड़ी है और फिर उसमें भी कई सम्प्रदाय कई पंथ और कई भाषायें हैं। ऐसी अवस्थामें जबतक कोई खास प्रयत्न न किया जाय, तबतक हमारे पत्रोंकी दशा अच्छी नहीं हो सकती। या तो धनिक इन पत्रोंको इतनी सहायता दे देवें जिससे केवल ग्राहकोंके भरोसेपर इन्हें न रहना पड़े या धनिकोंकी सस्थाओंके ओरसे ही दो चार अच्छे पत्र निकाले जावे जिन्हें धनकी विशेष चिन्ता न रहे। यदि धनिकोंका लक्ष्य इस ओर न हो अथवा उनकी अधीनतामें विचारस्वाधीनताके नष्ट होनेकी संभावना हो, तो शिक्षित और मध्यम श्रेणीके लोगोंको ही इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे लोग यदि प्रतिवर्ष दो दो चार चार रुपया ही पत्रोंकी सहायताके लिए दे दिया करें अथवा दश दश पॉच पाँच ग्राहक ही बना दिया करें तो पत्रोंकी स्थिति बहुत कुछ सुधर सकती है । इसके सिवा यदि सम्पादक लोक साम्प्रदायिक झगडोंमें विशेषतासे न पड़े और लोगोंमे विचारसहिष्णुता बढाई जावे, तो भी ग्राहकसंख्या बढ सकती है । क्योंकि ऐसा होनेसे प्रत्येक जैनपत्रको तीनों सम्प्रदायके लोग पढ़ सकेंगे।

---

# " कर भला होगा भला।"

## (१)

आज हम अपने पाठकोंको उस समयकी एक आख्यायिका सुनावेंगे जब भारतवर्ष उन्नतिके शिखरपर चढा हुआ स्वर्गीय सुखोंका अनुभव करता था; वह सब प्रकारसे स्वाधीन, सुखी, सदाचारी और शान्त था, धनी मानी उद्योगी और ज्ञानी था और इसके साथ ही दूसरे देशोंको क्षमा, दया, परोपकार आदि सद्गुणोंकी शिक्षा देता था। उस समय यहाँके व्यापारी दूरदूरके देशों और द्वीपोंमें जाया करते थे और हजारों विदेशी व्यापारी भारतके मुख्य मुख्य शहरोंमें दिखलाई देते थे। आजकालके कलकत्ता और बम्बई जैसे समृद्धशाली नगर भी उस समय अनेक थे और विपुल व्यापार होनेके कारण उनमे खूब चहलपहल रहती थी। छोंटे नगरो, कसबों और गाँवोंकी अवस्था बहुत ही अच्छी थी। प्रजाका जीवन बहुत ही सुखशान्तिसें व्यतीत होता था।

बौद्धधर्मका वह मध्याह्नकाल था। जहाँ तहाँ बुद्धदेवकी शिक्षाका पवित्र, शान्त और दयामय संगीत सुन पड़ता था। बड़े बड़े राजा महाराजा और धनी बौद्धधर्मके प्रचारमें दत्तचित्त थे। हजारों बौद्ध श्रमण जहाँ तहाँ विहार करते हुए दिखलाई देते थे।

बनारसकी ओर जानेवाले सडक पर एक घोडा गाड़ी जा रही है। घोड़ा बहुत तेजीसे जा रहा है। गाड़ीपर सिर्फ़ दो आदमी है। एक गाडीका स्वामी और दूसरा नौकर। स्वामीके वेशभूषासे माल्र्म होता है कि वह कोई धनिक व्यापारी है। उसकी मुखचेष्टा बतली रही है कि उसे नियत स्थान पर जल्दी पहुँचना है।

अभी अभी एक अच्छी वर्षा हो गई है, इससे ठडी हवा चलने लगी है। बादलोंके हट जानेसे धूप निकल आई है और उससे दिन बहुत ही सुन्दर माळूम होता है। वृक्षोके पत्ते पानीसे धुल गये है और हवाके झोके लगनेसे आनन्दमें थिरक रहे है। प्रकृतिदेवीने एक अपूर्व ही शोभा धारण की है।

आगे ऊँची चढ़ाई आजानेसे जब घोड़ोने अपनी चाल धीमी कर दी, तब धनिकने देखा कि सड़ककी पटली परसे एक वौद्ध श्रमण नीचेकी ओर दृष्टि किये हुए जा रहा है। उसकी मुखमुद्रापर शान्तिता, पवित्रता और गभीरता झलक रही है। उसे देखते ही सेठके हृदयमे पूज्यभाव उत्पन्न हुआ। वह विचार करने लगा—अहा! चेष्टासे ही माळूम होता है कि यह कोई महात्मा है—पवित्रताकी मूर्ति है और धर्मका अवतार है। सज्जनोंके समागमको विद्वानोंने पारस-मणिकी उपमा दी है। जिस तरह पारसके संयोगसे लोहा सुवर्ण हो जाता है, उसी तरह सज्जनोके समागमसे भाग्यहीन भी सौभाग्यशाली हो जाता है। यदि यह साधु भी वनारसको जाता हो और मेरे साथ गाड़ीमे बैठना स्वीकार कर ले, तो वहुत अच्छा हो। अवश्य ही इसके समागमसे मुझे लाभ होगा। यह सोचकर सेठने श्रमण महात्माको प्रणाम किया और गाड़ीपर बैठ जानेके लिए अनुरोध किया। श्रमणको काशी ही जाना था, इसलिए वे गाड़ीमें वैठ गये और बोले;—आपने मेरे साथ बड़ा भारी उपकार किया। इसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मै वहुत समयसे पैदल चल रहा हूँ, इसलिए वहुत ही थक गया हूँ। यह तो आप जानते ही है कि श्रमण लोगोंके पास कोई ऐसी वस्तु नहीं रहती जिसे देकर मैं आपके इस ऋणसे उऋणसे हो सकूँ। तो भी मैं परमगुरु महात्मा बुद्धदेवके उपदेशरूप अक्षय कोशसे जो कुछ संग्रह

कर सका हूँ उसमें से आप जो चाहेंगे वही देकर आपके बोझसे हलका हो सकूँगा।

सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। उसका समय बड़े आनन्दसे कटने लगा। श्रमणके सुबोधरूप रत्नोंको वह बड़ी ही रुचिसे हृदयमें धारण करने लगा। गाडी बराबर चली जा रही थी। लगभग एक घंटेके बाद वह एक ऐसे ढालूस्थानमें पहुँचकर खडी हो गई कि जहाँ एक गाड़ी पडी थी और जिसके कारण मार्ग बंद हो रहा था।

यह गाड़ी 'देवल' नामक किसान की थी। वह उसमें चावल लादकर बनारस जा रहा था और दिन निकलनेके पहले ही वहाँ पहुँचना चाहता था। धुरीकी कील निकल जानेसे गाड़ीका एक पहिया निकलकर गिर पडा था। देवल अकेला था। इसलिए प्रयत्न करनेपर भी वह अपनी गाडीको सुधारकर ठीक न कर सकता था।

जब सेठने देखा कि किसानकी गाड़ीको रास्ता परसे हटाये बिना मेरा आगे बढ़ना कठिन है, तब उसे बड़ा क्रोध आया। उसने अपने नौकरसे कहा कि गाड़ीपरसे चावलोंके थैले उठाकर नीचे फेंक दे और उसे एक ओर करके अपनी गाडी आगे बढ़ा।

किसानने दीनताके साथ कहा—"सेठजी, मै एक गरीब किसान हूँ। पानी पड जानेसे सड़क पर कीचड हो रहा है। थैले यदि नीचे पडेंगे, तो चावल ख़राब हो जावेंगे। आप जरा ठहर जावें, मैं अपनी गाड़ी अभी ठीक किये लेता हूँ और उसे इस ढालू जगहसे कुछ दूर आगे ले जाकर आपको रास्ता दिये देता हूँ।" परन्तु उसकी प्रार्थना पर सेठने कुछ भी ध्यान न दिया। वह अपने नौकरसे कडक कर बोला—क्या देख रहा है? मेरी आज्ञाका शीघ्र पालन कर और गाड़ीको आगे बढ़ा! नौकरने तत्काल ही आज्ञाका पालन किया।

उसने चावलके थैले फेककर किसानकी गाड़ीको एक तरफ़ धकेल दिया और अपनी गाड़ी आगे बढ़ा दी।

हाय ! इस संसारमें गरीबका सहायक कोई नहीं। अपने थोड़ेसे लाभके पीछे दूसरोंका सर्वस्व नष्ट कर देनेवाले धनोन्मत्तोंकी उस समय भी कमी न थी। गरीबोंके रक्षकके बदले भक्षक बननेवाले अमीरोंसे यह संसार कभी खाली नहीं रहा और शायद आगे भी न रहेगा। इतना अवश्य है कि उस समय बौद्ध धर्मके श्रमणोंका दयामय हस्त गरीबोंकी सहायताके लिए सदा सन्नद्ध रहता था। वे धार्मिक विवादोंसे जुदा रहकर निरन्तर मनुष्यमात्रके सामान्य हितकी चिन्तामें रहते थे। वे अपने मन वचन और शरीरका उपयोग मुख्यतः परोपकारके ही कामोंमें करते थे।

ज्यो ही सेठकी गाड़ी आगे चलनेको हुई त्यों ही श्रमण नारद उस परसे कूद पड़े और बोले:—"सेठजी, माफ़ कीजिए, अब मैं आपके साथ नहीं चल सकता। आपने विवेकबुद्धिसे मुझे एक घंटे तक गाड़ीमें बिठाया, इससे मेरी थकावट दूर हो गई। मैं आपके साथ और भी चलता; परन्तु वह किसान जिसकी कि गाड़ीको उलटा करके आप आगे बढ़ते है आपका बहुत ही निकटका सम्बन्धी है। मैं इसे आपके ही पूर्वजोंका अवतार समझता हूँ। इस लिए आपने मेरे साथ जो उपकार किया है उसका ऋण मैं आपके इस निकट बन्धुकी सहायता करके चुकाऊँगा। इसको जो लाभ होगा, वह एक तरहसे आपका ही लाभ है। इस किसानके भाग्यके साथ आपकी भलाईका बहुत गहरा सम्बन्ध है। आपने इसे कष्ट पहुँचाया है, मैं समझता हूँ कि इससे आपकी बहुत बड़ी हानि हुई है और इसलिए मेरा कर्तव्य है कि आपको इस हानिसे बचानेके लिए—आपका भला करनेके लिए मैं अपनी शक्तिभर इसकी सहायता करूँ।"

सेठने श्रमणकी इस मार्मिक उक्तिपर कुछ ध्यान न दिया। उसने सोचा कि श्रमण सीमासे अधिक भला है, इसी लिए इसकी भलाई करनेके लिए तत्पर होता है। इसके बाद उसकी गाड़ी आगे चल दी।

(२)

श्रमण नारद किसानको नमस्कार करके उसकी गाड़ीके ठीक करानेमें और भीगे हुए चावलोंको जुदा करके शेष चावलोंके एकडे करनेमें सहायता देने लगे। दोनोंके परिश्रमसे काम बहुत शीघ्रतासे होने लगा। किसान सोचने लगा कि सचमुच ही यह श्रमण कोई बड़ा परोपकारी महात्मा है। क्या आश्चर्य है, जो मेरे भाग्यसे कोई अदृश्य देव ही श्रमणके वेषमें मेरी सहायताके लिए आया हो। मेरा काम इतनी जल्दी हो रहा है कि मुझे स्वय ही आश्चर्य मालूम होता है। उसने डरते डरते पूछा--श्रमण महाराज, जहातक मुझे याद है मै जानता हूँ कि इस सेठकी मैंने कभी कोई बुराई नही की, कोई इसे हानि भी नहीं पहुँचाई, तब आज इसने मुझपर यह अन्याय क्यो किया ? इसका कारण क्या होगा ?

श्रमण--भाई, इस समय जो कुछ तू भोग रहा है, सो सब तेरे किये हुए पूर्व कर्मोंका फल है। पहले जो बोया था उसे ही अब लुन रहा है।

किसान---कर्म क्या ?

श्रमण---मोटी नजरसे देखा जाय तो मनुष्यके काम ही उसके कर्म है। वे ( मनुष्यके कर्म ) उसके इस जन्मके और पहले जन्मोंके किये हुए कामोंकी एक माला है। इस मालाके 'मनका' रूप जो विविध प्रकारके कर्म हैं, उनमे वर्तमानके कामोंसे और विचारोंसे फेरफार भी बहुत कुछ हो जाता है। हम सबने पहले जो भले बुरे

कर्म किये है उनका फल हम इस समय चख रहे है और अब जो कर रहे है उनके फल आगे भोगना पड़ेंगे।

किसान—आपने जैसा कहा वैसा ही होगा। परन्तु ऐसे घमंडी और दुष्ट मनुष्य हम सरीखे ग़रीबोंको जो इस तरह बिना कुछ लिये दिये ही तग किया करते है, इसके लिए हमें क्या करना चाहिए?

श्रमण—भाई, मेरी समझमें तो तेरे विचार भी लगभग उसी सेठ ही सरीखे है। जिस कर्मसे आज वह जौहरी और तू किसान हुआ है, यद्यपि ऊपरसे उस कर्ममे बहुत भिन्नता माल्रम पड़ती है परन्तु भीतरी दृष्टिसे देखा जाय तो वह उतनी नही है। जहाँ तक मुझे मनुष्यके मानसिक विचारोंकी जॉच है उसके अनुसार मैं कह सकता हूँ कि आज यदि तू भी उस जौहरीकी जगह होता तथा तेरे पास भी उसके नौकरके जैसा बलवान् नौकर होता और जिस तरह तेरी गाड़ीसे उसका रास्ता रुक रहा था उसी तरह यदि उसकी गाड़ी तेरा रास्ता रोकती, तो तू भी उसका नम्बर लिये बिना न रहता। उसके चावलों का सत्यानाश हो जायगा, इसकी तुझे भी कुछ परवा न होती और इस बातको भी तू भूल जाता कि मैं किसीका बुरा करूँगा तो मेरा भी बुरा होगा।

किसान—महाराज, आप सच कहते है। मेरी चेल, तो मै उससे कुछ कम न रहूँ। परन्तु आप तो अकारण बन्धु है; बिना स्वार्थके आपने मेरी सहायता की, मेरे मालको बिगडनेसे बचाया और मेरा काम शीघ्रतासे पूरा करके मुझे रास्ते लगा दिया। यह देखकर मेरा जी चाहता है कि मैं भी अपने जातिभाइयोके साथ अच्छा वर्ताव करूँ और अपनी शक्तिके अनुसार उनकी भलाई करनेमें तत्पर रहूँ।

किसानकी गाड़ी दुरुस्त होकर आगे चलने लगी। वह थोड़ी ही दूर आगे बढ़ी थी कि एकाएक उसके बैल चमक उठे। किसान

चिल्लाकर बोला—अरे बाप! सामने वह सॉप सरीखा क्या पडा है? श्रमणने ध्यानसे देखा तो उन्हें एक बसनी जैसी चीज नज़र आई। वे पहले गाड़ीपरसे कूद पड़े और देखते है तो एक मुहरोंसे भरी हुई बसनी (लम्बी थैली) पडी है! उन्हे विश्वास हो गया कि यह बसनी और किसीकी नहीं, उसी सेठकी है। उन्होंने थैली उठा ली और उसे किसानके हाथमें देकर कहा कि जब तुम बनारसमें पहुँच जाओ तब उस सेठका पता लगाकर उसे यह बसनी दे देना। उसका नाम पाण्डु जौहरी और उसके नौकरका नाम महादत्त है। ऐसा करनेसे उसको अपने इस अन्याय कर्मका पश्चात्ताप होगा जो उसने तुम्हारे साथ अभी किया था। इसके साथ ही तुम यह भी कहना कि तुमने मेरे साथ जो कुछ किया है वह सब मैं क्षमा करता हूँ और चाहता हूँ कि तुम्हारे व्यापारमे खूब सफलता प्राप्त हो। मैं यह सब तुमसे इस लिए कहता हूँ कि तुम्हारा भाग्य उसके भाग्यकी बढ़तीपर निर्भर है—उसे ज्यों ज्यो व्यापारमें सफलता प्राप्त होगी त्यों त्यों तुम्हारा भी भाग्य खुलेगा।

इसके बाद परोपकारकी मूर्ति और दीर्घदृष्टि श्रमण महाशय यह सोचते हुए वहॉसे चल दिये कि यदि जौहरी मेरे पास आयगा तो मै उसकी भलाई करनेके लिए शक्ति भर प्रयत्न करूँगा— उपदेश देकर उसे वास्तविक मनुष्य बना दूँगा।

(३)

बनारसमें मल्लिक नामका एक व्यापारी था। वह पाण्डु जौहरीका आढ़तिया था। जिस समय पाण्डु उससे जाकर मिला, उस समय वह रो पडा और बोला—मित्र मै एक बड़े भारी सकटमें आ पड़ा हूँ। अब आशा नहीं कि मै तुम्हारे साथ व्यापार कर सकूँ। मैंने राजाके खानेके लिए बढिया चावल देनेका बायदा किया था। उसके पूरा

करनेका दिन कल है। मुझे कल सबेरे चावल देना ही चाहिए। परन्तु क्या करूँ चावलका मेरे पास एक दाना भी नही—किसी और जगहसे भी मिलनेकी आशा नहीं। क्योंकि यहाँ मेरा प्रतिपक्षी एक ज़बर्दस्त व्यापारी है। उसको किसी तरहसे यह मालूम हो गया है कि मैने राजाके कोठारीके साथ इस तरहका वायदेका व्यापार किया है। इससे उसने यहाँ सारी बस्तीमें जितना चावल था वह सबका सब मुँहमागा दाम देकर ख़रीद लिया है। कोठारीको उसने कुछ न कुछ घूँस(रिश्वत) भी ज़रूर दी होगी, इस लिए कल मेरी कुशल नहीं—मेरी इज्जत नही बच सकती। यदि विधाता ही मेरी सहायता करे और कहींसे एक गाड़ी अच्छे चावल मेरे पास पहुँचा दे, तो शायद मै बच जाऊँ, नहीं तो मेरा मरना हो जायगा। मल्लिक यह कह ही रहा था कि इतनेमें पाण्डुको अपनी मुहरोंकी बसनीकी याद आई। वह घबड़ाकर उठा और उसकी खोज करने लगा। सन्दूकमे, गाड़ीमें, कपड़े लत्तोंमें उसने बहुत ढूँढ़ खोज की परन्तु बसनीका पता न लगा। उसे सन्देह हुआ कि मेरे नौकर महादत्तने ही बसनी उड़ा ली है। बस फिर क्या था, उसने महादत्तको पुलिसके हवाले कर दिया। यमदूतके समान पुलिसने चोरी स्वीकार करानेके लिए महादत्तको मार मारना शुरू की। असह्य मारके पड़नेसे वह बिलबिला उठा और रोता हुआ कहने लगा—मैं निरपराधी हूँ, मैने बसनी नहीं चुराई। मुझे माफ़ करो, मुझसे यह मार नहीं सही जाती। हाय! हाय! मै मरा, गरीब पर दया करो। मैंने बसनी नहीं ली है; परन्तु मेरे किसी पूर्व पापका उदय हुआ है जिससे मुझपर यह विपत्ति आई है। मैंने अपने सेठके कहनेसे उस बेचारे किसानको रास्तेमें हैरान किया था, अवश्य ही मुझे यह उसी पापका फल मिल रहा है। भाई किसान, मैंने तुझे बिनाकारण

सताया था—मुझे माफ़ कर। सचमुच ही मैं उसी अन्यायके फलसे सताया जा रहा हूँ।

महादत्तके इस पश्चात्तापपर पुलिसने जरा भी ध्यान न दिया; वह वरावर मार मारती रही। इतने ही में 'देवल' वहाँ आ पहुँचा और उसने सबको आश्चर्यमें डालते हुए वह मुहरोंकी वसनी पाण्डु जौहरीके आगे रख दी। इसके बाद उसने उसे क्षमा किया और उसकी मंगल कामना की।

महादत्त छोड़ दिया गया। उसे अपने सेठपर बड़ा ही क्रोध आया। वह उसके पास एक क्षण भी न ठहरा और न जाने कहों-को चल दिया।

उधर मल्लिकको खबर लगी कि देवलके पास एक गाड़ी अच्छे चावल हैं। इस लिए उसने उसी समय उसके पास पहुँचकर मुँहमाँगा दाम देकर वे चावल खरीद लिये और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार राजा-के यहाँ भेज दिये। जितना मूल्य मिलनेकी देवलको स्वप्नमें भी आशा न थी, उतने मूल्यमें चावल बेचकर वह अपने गाँवको रवाना हो गया।

पाण्डु भी अपने आढ़तियेकी विपत्ति टली देखकर और अपनी खोई हुई बसनी पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा कि वह किसान यहाँ न आता, तो न मल्लिकका ही उद्धार होता और न मैं ही अपनी खोई हुई रकम पा सकता। वह किसान बडा ही ईमानदार और भला आदमी निकला। जिसको मैंने सताया उसीने मेरे साथ ऐसी सज्जनताका व्यवहार किया। पर एक साधारण अपढ़ किसानमें इतनी सज्जनता और उदारता कहाँसे आई? उस श्रमण महा-त्माका ही यह प्रसाद समझना चाहिए। लोहेको सोना बनानेका प्रभाव पारसको छोड़कर और किस वस्तुमें हो सकता है? यह सब सोचकर

पाण्डुको श्रमण नारदसे मिलनेकी प्रबल उत्कंठा हुई। वह तत्काल ही उठा और बौद्धविहार या बौद्ध साधुओंके मठका पता लगाता हुआ उक्त श्रमण महात्मासे जा मिला।

कुशलप्रश्न हो चुकनेके बाद श्रमण नारदने कहा—"सेठजी, आपकी अभी इतनी शक्ति नहीं है कि कर्मरचनाको अच्छी तरहसे समझ सकें। यह बड़ा ही गहन और गंभीर विषय है। साधारण लोग इसका मर्म नहीं जान सकते। आगे जब आपकी इस ओर रुचि होगी और उससे जब उत्कण्ठा बढ़ेगी तब इसे आप सहज ही समझ लेंगे। तो भी इस समय आप मेरी यह छोटीसी बात ध्यानमें रख लें कि जिस समय आप दूसरोंको दुःख देनेके लिए तैयार हो उस समय अपने हृदयसे यह अवश्य पूँछ लें कि ऐसा ही दुःख यदि कोई मुझे भी दे, तो मुझे वह अच्छा लगेगा या नहीं? यदि इस प्रश्नका उत्तर यह मिले कि, नहीं मैं ऐसा दुःख कदापि सहन न कर सकूँगा, तो दुःख देनेकी इच्छा होनेपर भी आप उसे दबा दें। और जिस तरह कोई आपकी सेवा करता है तो वह आपको अच्छी लगती है उसी तरह आपकी सेवा भी दूसरोंके लिए रुचिकर होगी, यह विश्वास करके आप दूसरोंकी सेवा करनेके अवसरको कभी हाथसे न जाने दें। इस बातपर विश्वास रखिए कि हम आज जो सुकृतके बीज बोवेंगे, कालान्तरमें उनसे अच्छे फल अवश्य ही मिलेंगे।

पाण्डु—महाराज, मुझे कुछ और भी विस्तारसे समझानेकी कृपा कीजिए जिससे मैं आपके उपदेशके अनुसार वर्ताव करनेके लिए समर्थ हो सकूँ।

श्रमण—अच्छा तो सुनो मैं आपको कर्मभेदकी चाबी देता हूँ। मेरे और तुम्हारे बीचमें एक परदा पड़ा हुआ है। उसे माया कहते हैं।

इसी कारण तुम मुझे अपनेसे जुदा और मै तुम्हे अपनेसे जुदा समझता हूँ। इस परदेके कारण मनुष्य अच्छी तरह नहीं देख सकता और पापके गढेमें जा पडता है। तुम्हारी आँखोंके आगे इसी माया-का परदा पडा है, इससे तुम नहीं देख सकते कि इन जातिभाइयों ( मनुष्य जाति ) के साथ तुम्हारा कितना निकटका सम्बन्ध है। वास्तवमें यह सम्बन्ध तुम्हारे शरीरके एक दूसरे अवयवके सम्बन्धकी अपेक्षा बहुत ही निकटका है। तुम्हारे जीवनका सम्बन्ध जैसा दूसरोंके जीवनके साथ है वैसा ही दूसरोंके जीवनका सम्बन्ध तुम्हारे जीवनके साथ है। यह सम्बन्ध बहुत ही गाढा है। ससारमें बहुत थोड़े पुरुष है जो सत्यको जानते है। इस सत्यकी प्राप्ति करना ही मनुष्य जीवनका कर्तव्य है। इसको प्राप्त करनेके लिए मै तुम्हें थोड़ेसे मत्र बतलाता हूँ। इन्हें तुम अपने हृदयमें लिख रक्खो:—

१ जो दूसरोंको दु.ख देता है वह मानो अपनेमें आपको दुःख-देनेवाले बीजोको बोता है।

२ जो दूसरोंको सुख देता है वह अपने हृदयमें आपको सुखी करनेके बीजोंको बोता है।

३ यह बड़ा ही भ्रामक विचार है कि मैं अपने जातिभाइयोंसे जुदा हूँ।

इन तीन मत्रोंकी आराधना करते रहनेसे तुम सत्यके मार्ग पर आ पहुँचोगे।

पाण्डु——महानुभाव श्रमणमहाराज, आपके वचनोंका मर्म बहुत ही गहरा है। मैं इन वचनोंको अपने हृदयमें लिख चुका। मैंने बनारस आते समय आप पर जो थोटीसी दया की थी और वह भी ऐसी कि जिसमें एक पैसाकी भी खर्च न था, उसका फल मुझे इतना बड़ा

मिला है कि मै उसे देखकर आश्चर्यमें डूब रहा हूँ। महात्मन्, मै आपके उपकारके बोझेसे दब गया हूँ। यदि मुझे वह मुहरोंकी बसनी न मिलती, तो न तो मैं यहाँ कुछ व्यापार ही कर सकता और न उस व्यापारसे जो मुझे बड़ा भारी लाभ हुआ है वह होता। आप दूरदर्शी भी कितने बड़े है। यदि आप उस किसानकी सहायता न करते और उसे इतनी जल्दी यहाँ पहुँचनेमें समर्थ न कर देते तो मेरे मित्र मल्लिक-की भी इज्जत न बचती। आपने उसे भी दुःखकूपसे गिरते हुए बचाया और मेरे नौकरकी भी रक्षा की। महाराज, जिस तरह आप 'सत्य' को देखते हैं, उसी तरह यदि सारे मनुष्य देखने लगें तो जगत् कितना सुखी हो जाय। अगणित पापके मार्ग बन्द हो जायें और पुण्यके मार्ग खुल जायँ। मैने निश्चय किया है कि मै बुद्ध भगवानके इस दयामय धर्मका प्रचार करनेके लिए अपनी कोशाम्बी नगरीमें एक विहार बनवाऊँ और उसमें आप तथा और दूसरे श्रमण महात्मा आकर लोगोंको सन्मार्ग सुझावें।

(४)

कोशाम्बीमे पाण्डु जौहरीका 'विहार' बन चुका है। उसमें सैकड़ो विद्वान् और दयामूर्ति श्रमण रहते है। थोड़े ही समयमें वह एक सुप्र-सिद्ध विहार गिना जाने लगा है। दूर दूरके धर्म–पिपासु लोग वहाँ उपदेश सुननेके लिए आया करते है।

पाण्डु जौहरी भी अब एक सुप्रसिद्ध जौहरी हो गया है। उसकी यशोगाथायें दूर दूर तक सुन पड़ती हैं।

कोशाम्बीके समीप ही एक राजाकी राजधानी थी। राजाने अपने खजांचीको आज्ञा दी कि पाण्डु जौहरीकी मार्फ़त एक अच्छा सोनेका मुकुट बनवाया जावे और उसमें बहुमूल्यसे बहुमूल्य रत्न जड़वाये जावें।

खजाँचीने तत्काल ही आज्ञाका पालन किया और पाण्डुके पास मुकुट तैयार करवानेका संदेशा भेज दिया।

मुकुट तैयार हो गया। पाण्डु उसे लेकर और उसके साथ बहुतसे जवाहरात तथा सोने चाँदी आदिके आभूषण लेकर उक्त राजधानीकी ओर चला। उसने अपनी रक्षाके लिए २०–२५ सिपाही भी साथ ले लिये। सिपाही खूब मज़बूत और बहादुर थे। इसलिए उसे आशा थी कि मैं निर्विघ्नतासे अभीष्ट स्थानपर पहुँच जाऊँगा।

जिस समय पाण्डु अपने रसालेके सहित एक जंगलको पार कर रहा था, उसी समय पासके दो पर्वतोंके बीचमेंसे ५०–६० आदमियोंकी एक अस्त्रशस्त्रोंसे सजी हुई टोली आई और उसने इसपर एक साथ आक्रमण किया। सिपाही बहुत बहादुरीके साथ लड़े परन्तु अन्तमें उन्हें हारना पडा और डकैत सारा माल लेकर चम्पत हो गये।

इस लूटसे पाण्डुका कारोबार मिट्टीमें मिल गया। उसे आशा थी कि मुकुटके साथ मेरा और भी बहुत सामान उक्त राजधानीमें कट जायगा, इसलिए उसने अपना सर्वस्व लगाकर दूसरी तरह-तरहकी चीजें तैयार कराई थीं। परन्तु वे सब हाथसे चली गईं और वह बिलकुल कंगाल हो गया।

पाण्डुके हृदयपर इसकी बड़ी चोट लगी; परन्तु वह चुपचाप यह सोचकर सब दुःख सहने लगा कि यह सब मेरे पूर्वकृत पापोंका फल है। मैंने अपनी जवानीके दिनोंमें क्या लोगोंको कुछ कम सताया था! अब यह समझना मेरे लिए कुछ कठिन नहीं कि जो बीज बोये थे उन्हींके ये फल हैं। अब पाण्डुके हृदयमें दयाका सोता बहने लगा। वह समझने लगा कि दुःख कैसे होते हैं और इससे उसकी

जीवमात्रपर दया करनेकी भावना दृढ होने लगी। उसका हृदय पूर्व कर्मोंके पश्चात्तापसे दिनपर दिन पवित्र और उज्ज्वल होने लगा।

पाण्डुको अपनी निर्धनताका जरा भी दुःख नहीं होता। यदि उसे कोई बड़ा भारी दुःख है तो वह यही कि अब वह लोगोंकी भलाई करनेमें और श्रमणोंको बुलाकर उनके द्वारा धर्मप्रचार करनेमें असमर्थ हो गया है।

(५)

कौशाम्बी नगरीके पासके उसी जङ्गलमें जहाँ पाण्डु लूटा गया था एक बौद्ध साधु जा रहा है। वह अपने विचारोंमें मस्त है। उसके पास एक कमण्डलु और एक गठरीके सिवा और कुछ नहीं है। गठरीमें बहुतसी हस्तलिखित पुस्तकें हैं। जिस कपड़ेमें वे पुस्तके बँधी है वह कीमती है। जान पड़ता है किसी श्रद्धालु उपासकने पुस्तक-विनयसे प्रेरित होकर उक्त कपड़ा दिया होगा। यह कीमती कपड़ा साधुके लिए विपत्तिका कारण बन गया। लुटेरोंने उसे दूरहीसे देखकर साधुपर आक्रमण किया। उन्होंने समझा था कि गठरीके भीतर कीमती चीजे होंगी परन्तु जब देखा कि वे उनके लिए सर्वथा निरुपयोगी पुस्तकें हैं, तब वे निराश होकर चल दिये। जाते समय अपने स्वभावके अनुसार साधुको नीचे डालकर एक एक दो दो लातें मारे बिना उनसे न रहा गया।

साधु मारकी वेदनाके मारे रातभर वहीं पड़ा रहा। दूसरे दिन सबेरे उठकर जब वह अपनी राह चलने लगा, तब उसे पासहीकी झाडीमेंसे हथियारोंकी झनझनाहट और मनुष्योंकी चीख चिल्लाहट सुनाई दी। उसने साहस करके झाड़ीके समीप जाकर देखा तो मालूम हुआ कि वे ही लुटेरे जिन्होने उसकी दुर्दशा की थी अपने ही दलके एक लुटेरेपर आक्रमण कर रहे हैं। यह लुटेरा डीलडौलमें इन सबसे बलवान् और

बहादुर माल्रूम होता था। जिस तरह शिकारी कुत्तोंसे घिरा हुआ सिंह कुपित होकर उनपर टूटता है और उनका कचूमर बनाने लगता है, उसी तरह वह उनपर भर जोर प्रहार कर रहा है। किसीको गिराकर लातोंसे कुचलता है, किसीको तलवारसे यमलोकका रास्ता दिखलाता है और किसीका पीछा करके फिर लौट आता है। यद्यपि उसकी शक्ति असाधारण थी परतु प्रतिपक्षियोंकी सख्या इतनी अधिक थी कि उनके सामने वह टिक न सका; उसकी देह वीसों घावोंसे जर्जर होगई और अन्तमें वह मरणोन्मुख होकर धराशायी हो गया। उसके गिरते ही दूसर लुटेरे वहाँसे चल दिये और थोड़ीही दरमे एक सघन झाडीके भीतर अदृश्य हो गये।

इस लड़ाईमें दश वारह लुटेरे काम आचुके थे। श्रमणने पास जाकर एक एकको अच्छी तरह देखा तो मालूम हुआ कि उस वहादुर लुटेरेके सिवा और सबके प्राण पखेरू उड़ गये है। साधुका हृदय भर आया। इस निरर्थक नरहत्यासे उसे बड़ा दुःख हुआ। अब वह इस बातकी चेष्टा करने लगा कि यह मुमूर्ष किसी तरह बच जाय। पास ही एक पानीका झरना बह रहा था। उसमेंसे कमंडलु भर ताजा पानी लाकर उसने एक चुल्लू पानी उसकी ऑखोंपर छिड़का। लुटेरेने ऑखें खोल दीं और इस तरह बड़बड़ाना शुरू किया,—वे कृतघ्नी कुत्ते कहॉ चले गये जिन्हें मैंने सैकड़ो वार अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर बचाया था। यदि मैं न होता तो न जाने कब किस शिकारीके हाथसे उन कमजोर कुत्तोकी जानें चली गई होतीं। आज उन कुत्तोंको क्या वे सब बातें भूल गईं।

श्रमण—भाई, अब तू अपने उस पापमय जीवनके साथियोंको याद मत कर। इस समय तो अपनी आत्माका चिन्तवन कर और

इस अन्तकी घड़ीमें अपना सुधार कर ले। इस कमण्डलुमेंसे थोड़ासा पानी पी ले और मुझे इन घावोंका इलाज करने दे। शायद मै तेरे इस जीवनदीपकको बुझनेसे बचा सकूँ।

लुटेरेकी शक्ति क्षीण हो गई थी। उसने शक्ति भर प्रयत्न करके कहा—मैंने कल एक साधुको अपने साथियों सहित बहुत बुरी तरह मारा था। क्या तुम वही हो? और क्या तुम मेरे उस अन्यायका बदला इस समय मेरी सहायता करनेके रूपमें दोगे? यह जल तुम क्यों लाये हो? पर अब तुम्हारा यह सब प्रयत्न व्यर्थ है। मेरे भाई, इस जलसे मेरी प्यास तो शायद मिट जायगी परन्तु मेरे जीवनकी अब आशा नहीं। उन कुत्तोंने मुझे इतना घायल कर दिया है कि मैं निश्चयसे मर जाऊँगा। अरे कृतघ्नियो, मेरे सिखलाये हुए दाव पेच आज तुमने मेरे पर ही आजमाये!

श्रमण—"जैसा बोता है वैसा ही लुनता है।" यह अक्षर अक्षर सत्य है। तूने अपने साथियोंको लूट मार सिखलाई थी, इसलिए आज उसी लूट मारकी विद्याको उन्होंने तुझपर आजमायी। यदि तूने उन्हें दया सिखलाई होती तो आज वे भी तुझपर दया करते। ऊपरको फेकी हुई गेंद जिस तरह लौटकर फेंकनेवाले पर ही आती है उसी तरह दूसरोंके लिए किये हुए बुरे भले कर्म, करनेवालेके ही ऊपर आ पड़ते हैं।

लुटेरा—इसमें जरा भी असत्य नहीं। मुझे आपकी प्रत्येक बात ठीक मालूम होती है। मेरी जो दुर्गति हुई वह उचित ही हुई। परन्तु महाराज मेरे दुःखोंका अन्त अभी कहाँ आ सकता है? मैंने अगणित अन्याय और अत्याचार किये है। उन सबका फल मुझे आगे पीछे कभी न कभी अवश्य भोगना पड़ेगा। आप कृपा करके मुझे कोई ऐसा

उपाय बतलाइए जिससे इन पापोंका बोझा हलका हो जाय। इस बोझेसे मै इतना दब गया हूँ कि अब मुझसे श्वास लेते भी नहीं बनता है।

श्रमण–भाई, उपाय तो बहुत ही सुगम है। अपनी पाप प्रवृत्तियोंको जड़मूलसे उखाडकर फेंक दे, बुरी वासनाओंको छोड़ दे, प्राणी मात्रपर दया करनेका अभ्यास कर और अपने जाति भाइयोंके लिए अपने हृदयको दयाका सरोवर बना दे।

इसके बाद श्रमण लुटेरेके घावोंको जलसे धोने लगा और उनपर एक प्रकारकी हरी पत्तियोंके रसको लगाने लगा। लुटेरा कुछ समयके लिए शान्त हो गया और फिर बोला–हे दयामय, मैंने अबतक सब बुरे ही काम किये हैं, किसीका भला तो कभी किया ही नहीं, अपनी बुरी वासनाओंके जालमें मै आप ही आप फँसा और ऐसा फँसा कि अब उसमेंसे निकलना कठिन हो गया है। मेरे कर्म मुझे नरकमें ले जा रहे है। मुझे आशा नहीं कि इनके मारे मै मोक्षमार्ग पर चल सकूँ।

श्रमण–इसमें सन्देह नहीं कि जो बोया है उसे तुम्हें ही लुनना पड़ेगा। किये हुए कर्मोंका परिणाम अवश्य भोगना पडता है, उससे बचनेका कोई उपाय नहीं। तो भी साहस न छोड बैठना चाहिए। तुम्हारे हृदयमेंसे दुष्टताकी मात्रा ज्यों ज्यों कम होती जायगी त्यों त्यों शरीरसम्बन्धी आत्मबुद्धि भी कम होती जायगी और इसका फल यह होगा कि तुम्हारी विषयोंकी लालसा नष्ट होने लगेगी।

अच्छा सुनो, मै तुम्हे एक बोधप्रद कथा सुनाता हूँ। इससे तुम्हें मालूम होगा कि अपनी भलाईमें दूसरोंकी और दूसरोकी भलाईमे अपनी भलाई समाई हुई है। दूसरे शब्दोंमे, मनुष्यके कर्म उसके और दूसरोके सुखरूप वृक्षके मूल है:–

कदन्त नामका एक ज़बर्दस्त डकैत था। वह अपने दुष्टकर्मोंका पश्चात्ताप किये बिना ही मर गया, इससे नरकमें जाकर नारकी हुआ। अपने बुरे कर्मोंके असह्य कष्ट उसने अनेक कल्पपर्यन्त भोगे, परन्तु उनका अन्त नही आया। इतनेमें पृथ्वीपर बुद्धदेवका अवतार हुआ। इस पुण्य समयमें उनके प्रभावकी एक किरण नरकमें भी पहुँची। नारकियोंको आशा होगई कि अब हमारे दुःखोंका अन्त आया। इस प्रकाशको देखकर कदन्त उच्चस्वरसे कहने लगा—हे भगवन्, मुझपर दया करो, मुझपर कृपा करो, मै यहाँ इतने दु.खोंसे घिर रहा हूँ कि उनकी गणना नही हो सकती। यदि मै इनसे छूट जाऊँ तो अब सत्यमार्गपर अवश्य चलूँगा। हे भगवन् मुझे संकटसे छुडानेमें मदद करो।

प्रकृतिका नियम है कि बुरे काम नाशकी ओर जाते हैं। बुरे काम या पाप सृष्टिनियमसे विरुद्ध हैं, अस्वाभाविक है, इसलिए वे बहुत समय तक नहीं टिक सकते—उनका क्षय होता ही है। परन्तु भले काम, दीर्घजीवन और शुभ आशाकी ओर जाते हैं। क्योंकि वे स्वाभाविक हैं। अर्थात् पापकर्मोंका तो अन्त है, परंतु पुण्यकर्मोंका अन्त नहीं।

जिस तरह बाजरेके एक दानेसे उसके भुट्टेमे हज़ारों दाने लगते है और आगे परंपरासे वे और भी अगणित दानोंकी सृष्टि करते हैं, उसी तरह थोड़ासा भी भला काम हजारो भले कामोंकी बढ़वारी करता है और परम्परासे वे भले काम और भी अगणित भले कामोंके सृष्टा होते है। इस तरह भले कामोंसे जीवको जन्म जन्ममें इतनी दृढता प्राप्त होती है कि वह अनन्तवीर्य बुद्ध होकर निर्वाण पदका भागी होता है।

कदन्तका आक्रन्दन सुनकर दयासागर बुद्धदेव बोले—क्या तूने कभी किसी जीवपर थोड़ीसी भी दया की है? दया अब शीघ्र ही

तेरे पास आयगी और तुझे इन दुःखोंसे छुड़ाने शीघ्रका प्रयत्न करेगी। परन्तु जब तक तेरे मनमेंसे देहममत्व, क्रोध, मान, कपट, ईर्षा और लोभ नष्ट नहीं हो जावेंगे, तब तक तू समस्त दुःखोंसे छुटकारा नहीं पा सकेगा!

कदन्त बहुत ही क्रूरस्वभावी था, इसलिए वह यह उपदेश सुनकर चुप हो रहा। बुद्धदेव सर्वज्ञ थे। उन्हें कदन्तके पूर्व जन्मके सारे कर्म हथेली पर रक्खे हुए आँवलेके समान दिखने लगे। उन्होंने देखा कि कदन्तने एक बार थोड़ीसी दया की थी। वह एक दिन जब एक जंगलमेंसे जा रहा था, तब अपने आगेसे जाती हुई एक मकरीको देखकर उसने विचार किया था कि इस मकरी पर पैर देकर नहीं चलना चाहिए, क्योंकि यह बेचारी निरपराधिनी है। इसके बाद बुद्धदेवने कदन्तकी दशा पर तरस खाकर एक मकरीको ही जालके एक तन्तुसहित नरकमें भेजा। उसने कदन्तके पास जाकर कहा,—ले इस तन्तुको पकड़ और इसके सहारे ऊपरको चढ चल। यह कहकर मकरी अदृश्य हो गई और कदन्त बड़ी कठिनाईसे अतिशय प्रयत्न करके उस तन्तुके सहारे ऊपर चढने लगा। पहले तो वह तन्तु मज़बूत जान पड़ता था परन्तु अब वह जल्दी टूट जानेकी तैयारी करने लगा। कारण, नरकके दूसरे दुखी जीव भी कदन्तके पीछे उसी तन्तुके सहारे चढ़ने लगे थे। कदन्त बहुत घबड़ाया। उसे जान पड़ा कि यह तन्तु लम्बा होता जाता है और वजनके मारे पतला पड़ता जाता है। हाँ, यह अवश्य है कि मेरा बोझा तो किसी तरह यह सँभाल ही ले जायगा। अभी तक कदन्त ऊपरहीको देख रहा था, परन्तु अब उसने नीचेकी ओर भी एक दृष्टि डाली। जब उसने देखा कि दलके दल नारकी मेरे ही तन्तुके सहारे ऊपर चढ़े आ रहे हैं, तब उसे चिन्ता हुई कि

इन सबका बोझा यह कैसे सँभालेगा ! वह घबड़ा गया और एकाएक बोल उठा—" यह तन्तु मेरा है, इसे तुम सब लोग छोड दो।" बस, इन शब्दोंके निकलते ही तन्तु टूट गया और कदन्त फिर नरकभूमिमें जा पड़ा ! !

कदन्तका देहममत्व नहीं छूटा था—वह आपको ही अपना समझता था और सत्यके वास्तविक मार्गका उसको ज्ञान न था। अन्तःकरणके कारण जो सिद्धि प्राप्त होती है उसकी शक्तिसे वह अज्ञात था। वह देखनेमें तो जालके तन्तुओं जैसी पतली होती है परन्तु इतनी दृढ होती है कि हज़ारों मनुष्योंका भार सँभाल सकती है। इतना ही नहीं, उसमें एक विलक्षणता यह भी है कि वह ज्यों ज्यो मार्गपर अधिक चढ़ती है त्यों त्यों अपने आश्रित प्रत्येक प्राणीको अल्प परिश्रमकी कारण होती है; परन्तु ज्यों ही मनुष्यके मनमें यह विचार आता है कि वह केवल मेरी है—सत्यमार्गपर चलनेका फल केवल मुझे ही मिलना चाहिए—उसमें दूसरेका हिस्सा न होना चाहिए, त्यों ही वह अक्षय्य सुखका तन्तु टूट जाता है और मनुष्य तत्काल ही स्वार्थताके गढ़ेमें जा पड़ता है। स्वार्थता ही नरकवास है और निःस्वार्थता ही स्वर्गवास है। अपने देहमे जो 'अहंबुद्धि' या ममत्वभाव है, वही नरक है।

श्रमणकी कथा समाप्त होते ही मरणोन्मुख लुटेरा बोला—महाराज, मैं मकरीके जालके तन्तुको पकड़ूँगा और अगाध नरकके गढ़ेमेंसे अपनी ही शक्तिका प्रयोग करके बाहर निकलूँगा।

( ६ )

लुटेरा कुछ समयके लिए शान्त हो रहा और फिर अपने विचारोंको स्थिर करके बोलने लगा—" पूज्य महाराज, सुनो मैं आपके पास अपने पापोंका प्रायश्चित्त करता हूँ। मैं पहले कोशाम्बीके प्रसिद्ध

जौहरी पाण्डुके यहाँ नौकर था; मेरा नाम महादत्त था। एक बार उसने मेरे साथ अतिशय क्रूरताका वर्ताव किया, इसलिए मै उसकी नौकरी छोडकर चल दिया और लुटेरोंके दलमें मिलकर उनका सरदार बन गया। कुछ समय पीछे मैंने अपने गुप्तचरोंके द्वारा सुना कि पाण्डु इन जगलोंमेसे एक राजाके यहाँ बहुतसा धन लेकर जाने-वाला है। बस, मैंने उसपर आक्रमण किया और उसका सारा माल लूट लिया। अब आप कृपा करके उसके पास जाइए और मेरी ओरसे कहिए कि तुमने जो मुझपर अत्याचार किया था उसका वैर मैंने अन्तःकरणसे सर्वथा दूर कर दिया है और मैं अपने उस अपराधकी क्षमा माँगता हूँ जो मैंने तुमपर डाँका डालके किया था। जिस समय मैं उसके यहाँ नौकरी करता था, उस समय उसका हृदय पत्थरके समान कठोर था और इस लिए मै भी उसकी नकल करके उसीके जैसा हो गया था। वह समझता था कि जगतमें स्वार्थको ही विजय मिलता है, परन्तु मैंने सुना है कि अब वह इतना परोपकारी और परार्थतत्पर होगया है कि उसे लोग भलाई और न्यायका अवतार मानते हैं। उसने अब ऐसा अपूर्व धन सग्रह किया है कि न तो उसको कोई चुरा सकता है और न किसी तरह नष्ट कर सकता है। अभी तक मेरा हृदय बुरेसे बुरे कामोंमे एकरग एकजीव हो रहा था; परन्तु अब मैं इस अन्धकारमे नहीं रहना चाहता। मेरे विचार विलकुल बदल गये है। बुरी वासनाओंको अब मै अपने हृदयसे धोकर साफ कर रहा हूँ। मेरे मरनेमें अभी जो थोड़ीसी घड़ियाँ बाक़ी हैं, उनमें मैं अपनी शुभेच्छाओको बढाऊँगा जिससे मर जानेके बाद भी मेरे मनमें वे इच्छायें जारी रहें। तब तक आप पाण्डुसे जाकर कह दीजिए कि तुम्हारा वह कीमती मुकुट जो तुमने

राजाके लिए तैयार कराया था और तुम्हारा और भी सारा धन इस पासकी गुफामें गढ़ा हुआ है सो उसे जाकर ले जाओ। इसका पता मेरे केवल दो विश्वासी साथियोंको ही था; अब वे मर चुके हैं।

यदि एक भी न्यायमूलक काम मुझसे बन जायगा तो उससे मेरे पापोका कुछ भाग अवश्य कम होगा, मेरी मानसिक अपवित्रताका भी कुछ अंश धुल जायगा और मोक्षमार्गपर चढ़नेका कोई वास्तविक अवलम्बन मुझे मिल जायगा। इस लिए इस समय मुझे इस न्यायमूलक कार्यके द्वारा ही अपनी भलाईका प्रारंभ कर देना उचित जान पड़ता है।

इसके बाद महादत्तने उस गुफाका पता ठिकाना ठीक ठीक वतला दिया जिसमें कि पाण्डुका धन गड़ा था और कुछ समयमे उसने श्रमण महात्माकी ही गोदमें सिर रक्खे हुए अपनी जीवनलीला समाप्त कर दी।

(७)

श्रमण महात्माने कोशाम्बीमें जाकर पाण्डुसे सारा वृत्तान्त कहा और पाण्डुने तत्काल ही बहुतसे सिपाहियोंके साथ गुफामे आकर अपना सारा धन निकलवा लिया। इसके वाद उसने महादत्त और दूसरे लुटेरोके मृतक शरीरोंका सन्मानपुरःसर भूमिदाह किया। उस समय महादत्तके चबूतरेके पास खडे होकर श्रीपान्थक श्रमणने निम्नलिखित उपदेश दियाः—

" हम आप ही बुरा काम करते है और आप ही उसका फल भोगते है। इसी तरह हम आप ही उस बुरेको दूर कर सकते है और आप ही उससे शुद्ध हो सकते है। अर्थात् पवित्रता और अपवित्रता दोनो ही हमारे हाथमे हैं। दूसरा कोई भी हमें पवित्र नही कर

सकता है, हमे स्वय ही पवित्र होनेका प्रयत्न करना चाहिए। बुद्ध भगवानका भी यही उपदेश है।

" हमारे कर्म ब्रह्मा विष्णु ईश्वर अथवा और किसी देवके बनाये हुए नहीं हैं। वे सब हमारे ही किये हुए कामोंके परिपाक हैं। माताके गर्भके समान हम अपने ही कर्मरूपी गर्भस्थानमें अवतार लेते है और वे कर्म ही हमें सब ओरोंसे लपेट लेते हैं। हमारे इन कर्मोंमेंसे बुरे कर्म तो हमारे लिए शाप तुल्य होते हैं और भले कर्म आशीर्वाद तुल्य होते है। इस तरह हमारे कर्मोंके भीतर ही मोक्षप्राप्तिका बीज छुपा हुआ है। "

पाण्डु अपना सब धन कोशाम्बी ले गया और उसका बड़ी साव-धानीसे सदुपयोग करने लगा। अपना कारोबार भी अब उसने खूब बढ़ाया और उससे जो आमदनी बढी उसे वह परोपकारके कामोंमें जी खोल करके ख़र्च करने लगा।

एक दिन जब वह मरणशय्यापर पड़ा था, तब उसने अपने घरके सब पुत्रपुत्रियों और पोते पोतियोंको अपने पास बुलाकर कहाः—

मेरे प्यारे बालको, कभी किसी कामको निराश होकर नहीं छोड़ देना। यदि किसी काममें सफलता प्राप्त न हो तो उसका दोष किसी औरके सिर न डालना। अपनी असफलता और दुःखोंके कारणोंका पता अपने ही कर्मोंमें लगाना चाहिए और उनके दूर करनेका यत्न करना चाहिए। यदि तुम अभिमान या अहंकारका परदा हटा दोगे तो उन कारणोंका पता बहुत जल्दी लगा सकोगे और उनका पता लग जायगा तब उनमेंसे निकलनेका मार्ग भी तुम्हे बहुत जल्दी सूझ जायगा। दुःखके उपाय भी अपने ही हाथमें हैं। तुम्हारी आँखके आगे मायाका परदा न आजाय, इसका हमेशा ख़याल रखना और मेरे

जीवनमे जो वाक्य अक्षरशः सत्य सिद्ध हुए हैं उनका स्मरण निरन्तर करते रहना। वे वाक्य ये हैं:—

जो दूसरोंको दुःख देता है वह मानो स्वयं आपको ही दुःख देता है और जो दूसरोंकी भलाई करता है, वह अपनी ही भलाई करता है।

देहममत्वका परदा हटते ही स्वाभाविक सत्यका मार्ग प्राप्त हो जाता है।

यदि तुम मेरे इन वचनोंको स्मरण रक्खोगे और उनके अनुसार चलनेका प्रयत्न करते रहोगे तो अपनी मृत्युके समय भी तुम अच्छे कर्मोंकी छायामें रहोगे और इससे तुम्हारा जीवात्मा तुम्हारे शुभ कामोंसे अमर हो जायगा। *

---

## दानवीर सेठ हुकमचन्दजीकी संस्थायें।

इन्दोरके सुप्रसिद्ध सेठ श्रीमान् हुकमचन्दजीने अपनी चार लाखकी रकमका निम्न लिखित कार्योंमें बँटवारा करनेका निश्चय किया है:—

१०००० ) तुक्कोगंज—इन्दोरके उदासीनाश्रमके लिए।

६५००० ) स्वरूपचन्द हुकमचन्द दि० जैन महाविद्यालयकी इमारतके लिए।

२००००० ) उक्त विद्यालयके व्ययनिर्वाहके लिए।

१५००० ) कंचनबाई दि० जैन श्राविकाश्रमकी इमारतके लिए।

८५००० ) उक्त आश्रमके व्ययनिवाहके लिए। इसके साथ एक औषधालय भी रहेगा।

---

* श्रीयुक्त प० फतेहचन्द कपूरचन्द लालनकृत 'श्रमण नारद' नामक गुजराती पुस्तकके आधारसे परिवर्तित करके गल्परूपमें लिखित।

२५००० ) नसियाकी धर्मशालामें लगा दिये गये।

४००००० ) सब रकमोंका जोड़।

गत २२ अप्रेलको इस कार्यके लिए इन्दोरमें एक सभाकी गई थी और उसका सभापतित्व रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्दजीको दिया गया था। सभामें बाहरी लोगोंकी आई हुई सम्मतियाँ तथा पत्र-सम्पादकोंकी रायें सुनाई गई थीं और पीछे सर्व सम्मतिसे सेठजीने अपना निश्चय प्रकट किया था। सब लोगोंकी रायसे यह भी तय हुआ है कि उक्त सब संस्थायें एक ट्रस्ट–कमेटी और एक प्रबन्ध-कारिणी कमेटीके अधीन रहेंगी। मन्त्रीका कार्य लाला हजारीलालजी अग्रवालको सौंपा गया है।

सेठ स्वरूपचन्द हुकमचन्द विद्यालयमें संस्कृत और अँगरेजीके दो विभाग रहेंगे। विद्यालयके साथ एक बोर्डिंग भी रहेगा जिसमें लगभग १०० विद्यार्थी रह सकेंगे। संस्कृत विद्यार्थियोंको व्यवहारिक शिक्षा और अँगरेज़ीके विद्यार्थियोंको प्रतिदिन २ घण्टेकी धर्मशिक्षा आवश्यक होगी। अभी सेठजीकी ओरसे जो ‘ हुकमचन्द बोर्डिंग स्कूल ’ चल रहा था, वह इसमे शामिल कर दिया जायगा।

लाला हज़ारीलालजीकी ओरसे अभी हाल ही जो विज्ञापन प्रकाशित हुआ है, उसके आधारसे हमने उक्त विवरण दिया है। जब सर्व सम्मतिसे उक्त दानविभाग हो चुका है, तब इस विषयमें तर्क वितर्क करनेकी अथवा कुछ रद्दोबदलकी सम्मति देनेकी आवश्यकता नहीं है; किसीको अधिकार भी नहीं है। अपनी अपनी सम्मति जिन्हें देना थी वे सब पहले दे ही चुके हैं। अब हम सब का यही कर्तव्य है कि जो संस्थायें खोली जा रही हैं वे अच्छी तरहसे चले, उनसे पूरा पूरा लाभ उठाया जाय और उनके लिए योग्य संचा-

लक मिल जावें, इन सब बातोंके लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न करें, सदाचारी सुयोग्य कार्यकर्त्ता ढूँढ़ दें, सस्था-संचालन-सम्बन्धी अच्छी सूचनायें दे और यदि बन सके तो सस्थाओंके लिए स्वयं अपना जीवन अर्पण कर दे। सेठजीको भी चाहिए कि वे इस ओर पूरा पूरा ध्यान दें। क्योंकि उनका यह महान् दान तब ही फलीभूत होगा जब उक्त संस्थायें वास्तविक संस्थाओंका रूप धारण करेंगी। हमारी छोटीसी समझमे संस्थाओंके खोलनेकी अपेक्षा उनका अच्छी तरहसे चला देना बहुत ही कठिन है और जैनसमाजमें तो यह कार्य और भी अधिक कठिन है। क्योंकि उसमें सुयोग्य संचालकोंकी बहुत बड़ी कमी है। अपनी इन संस्थाओंकी देखरेखके लिए सेठजीको स्वयं भी प्रतिदिन कमसे कम दो घण्टेका समय देनेका निश्चय कर रखना चाहिए।

संस्थाओंके सम्बन्धमें नीचे लिखी सूचनाओंपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है:—

१ जैनियोंके इस समय कई संस्कृत विद्यालय हैं, इसलिए इस सस्कृत विद्यालयमें उनसे कुछ विशेषता होनी चाहिए। एक तो यह कि इसमें उच्च श्रेणीका संस्कृत साहित्य पढ़ाया जाय और वह पुरानी नहीं किन्तु नवीन शिक्षापद्धतिसे पढ़ाया जाय। अभी जिन पाठशालोंमें संस्कृतकी शिक्षा दी जाती है वहाँ पहले संस्कृतका व्याकरण और फिर संस्कृत भाषा पढ़ाई जाती है। परन्तु इस विद्यालयमें पहले संस्कृत भाषा पढ़ाई जाय और पीछे उसका व्याकरण। स्वाभाविक नियम भी यही है। मनुष्य पहले भाषा सीखता है और पीछे उसके नियम। भाषाके बन चुकने पर व्याकरण बनता है। सारी दुनियामें इसी क्रमसे शिक्षा दी जाती है; सब जगह भाषा आजाने पर ही व्याकरण सिखलाया जाता है। फिर संस्कृतके लिए ही यह अनोखा ढँग क्यों? अँगरेज़ी भी

तो हमारे लड़के पढते है। उसके स्कूलोंमे भी पहले भाषा और पीछे व्याकरण पढानेकी पद्धति है। तव संस्कृत भी इसी पद्धतिसे क्यों न पढाई जाय? जिस समय वालकोंको सस्कृतका कुछ भी ज्ञान नहीं होता है उस समय उन्हे शुष्क और क्लिष्ट व्याकरण सूत्रोंको रटना पड़ता है। इससे उनका एक तो समय बहुत जाता है, दूसरे उनका संस्कृतका ज्ञान परिपक्व नहीं होता और तीसरे इस अवस्थामें केवल स्मरण शक्तिका उपयोग होते रहनेसे उनकी कल्पनाशक्ति और विचारशक्ति क्षीण निकम्मी हो जाती है। आगे उनकी बुद्धिका विकास नहीं होने पाता है। हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि व्याकरणका पढ़ाना ही बुरा है अथवा उसका स्वल्प ज्ञान ही यथेष्ट है। हम चाहते है कि सस्कृत भाषाके समझनेकी शक्ति हो जाने पर उसका व्याकरण पढ़ाया जाय और वह सम्पूर्ण पढाया जाय। इस पद्धतिसे बहुत कम परिश्रमसे व्याकरणका अच्छा ज्ञान हो सकता है। इसके सिवा प्रारंभमें जो व्याकरण ग्रन्थ पढ़ाया जाय वह नये ढङ्गका हो—पुराने सूत्रवद्ध व्याकरण शुरूमें न पढ़ाये जावें। इस ढगके व्याकरणसे एक तो परिश्रम बहुत कम पडता है, दूसरे वे विद्यार्थी जो कि वर्ष दो वर्ष ही पढ़कर विद्यालय छोड़ देते है उनको बहुत लाभ होता है। अभी ऐसे विद्यार्थियोंकी वड़ी दुर्दशा होती है। क्योंकि पुराने व्याकरण इतने कठिन हैं कि वर्ष दो वर्षमे उनमें उनका प्रवेश ही नहीं होता है और इसलिए विद्यालय छोड़ देनेपर वे इतना ज्ञान भी साथमें नहीं ले जाते कि उससे सरल संस्कृत ग्रन्थोंका भी स्वाध्याय कर सकें—बेचारे रात दिन घोट घोट कर मगज खाली करते है पर अन्तमें कोरे रह जाते है। प्रो० विनयकुमार सरकार एम. ए. ने थोड़े दिन पहले सस्कृतशिक्षाविज्ञान नामका एक बहुत ही उत्तम

ग्रंथ बनाया है। इसके पढ़नेसे बहुत जल्दी और बहुत थोड़े परिश्रमसे संस्कृतका ज्ञान हो जाता है। यही अथवा इसी ढंगकी दूसरी पुस्तकोंके पढ़ानेका विद्यालयमे प्रबन्ध होना चाहिए।

जहाँ तक हम जानते है इस विद्यालयमें संस्कृतके विद्यार्थियोंको व्यवहारोपयोगी अँगरेजी शिक्षा देनेका तो प्रबन्ध किया ही जायगा और उसकी ज़रूरत भी है; पर साथ ही हमारी प्रार्थना ग़रीब हिन्दीके लिए भी है। इसकी ओर भी दयादृष्टि होनी चाहिए। हमारी समझमें इसके बिना न तो संस्कृतके विद्वान् देश, धर्म या समाजका कल्याण कर सकते हैं और न अँगरेज़ीके विद्वानोसे ही हमें कुछ लाभ होता है। पर न इसकी गुजर अँगरेज़ी स्कूलों और कॉलेजोमें है और न संस्कृतके विद्यालयोंमें! अँगरेजीके विद्यालयोंमे तो वह इस कारण नहीं फटकने पाती कि उनका अधिकार विदेशी या विदेशी भावापन्न अफसरोंके हाथमे है, परन्तु सस्कृतके विद्यालय हमारे हाथमें है तो भी आश्चर्य है कि उनके दरवाज़े इसके लिए बन्द हैं? यह बड़े ही दुःखका विषय है। जैनियोंकी संस्कृत पाठशालाओंने इस समय तक जितने संस्कृतज्ञ तैयार किये हैं उनमेंसे एक दोको छोडकर कोई भी इस योग्य नहीं कि अपने विचारोंको लेखों ग्रथों या व्याख्यानोंके द्वारा अच्छी हिन्दीमें प्रकाशित कर सके। जो कुछ वे पढ़े है वह एक तरहसे उनके लिए 'गूँगेका गुड़' है। संस्कृत साहित्यमें क्या महत्त्व है वे उसे दूसरोंके सम्मुख प्रकाशित नहीं करसकते और यदि करनेका प्रयत्न भी करते हैं तो उनकी संस्कृतबहुल विलक्षण 'पण्डिताऊ' भाषाको सर्व साधारण समझ नहीं सकते। तब बतलाइए, ऐसे पण्डितोंको तैयार करके जैनसमाज क्या लाभ उठायगा? इस बड़ी भारी त्रुटिको पूर्ण करनेका इस विद्यालयमें 'खास' प्रयत्न होना चाहिए। प्रत्येक

कक्षामें हिन्दीकी पढाई आवश्यक कर दी जाय और आन्तिम कक्षा तक उसका इतना ज्ञान करा दिया जाय कि विद्यार्थी हिन्दीके अच्छे जानकार और लेखक बन जावें। यदि उचित समझा जाय तो प्रारंभ-की कक्षाओंमें धर्मशास्त्र आदि एक दो विषय हिन्दीमें ही पढ़ाये जानेका प्रबन्ध किया जाय।

३. आजकलके जमानेमें केवल न्याय, व्याकरण, काव्य, और धर्मशास्त्रके ज्ञानसे काम नहीं चलसकता—केवल इन्हींके ज्ञाताओंकी विद्वानोंमें भी गणना नहीं हो सकती है। केवल इन्हीं विषयोंके जाननेवाले इस समय कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण नहीं हो सकते। शायद पूर्वकालमें भी इनके सिवा अन्यान्य विषयोंके जाननेकी जरूरत थी। श्रीसोमदेवसूरिने अपने नीतिवाक्यामृतमें कहा है कि " सा खलु विद्या विदुषा कामधेनुः, यतो भवति समस्तजगतः स्थितिपारिज्ञानम्। लोकव्यवहारज्ञो हि मूर्खोऽपि सर्वज्ञः अन्यस्तु प्राज्ञोऽप्यवज्ञायत एव। ते खलु प्रज्ञापारमिताःपुरुषाः ये कुर्वन्ति परेषा प्रतिबोधनम्। अनुपयोगिना महतापि किं जलधिजलेन। " अर्थात् " जिससे सारे जगतकी स्थितियोंका ज्ञान होता है—दुनियाकी सारी बातोंकी जानकारी होती है, वह विद्या विद्वानोंके लिए कामधेनु या इच्छित फलोंकी देनेवाली है। वह मूर्ख या बिना पढा लिखा भी सर्वज्ञ है जो लोकव्यवहारज्ञ है—दुनियाकी सारी व्यवहारोपयोगी बातोंको जानता है; परन्तु 'जो कोरा पण्डित है—उसे कोई नहीं पूँछता; उसकी सब जगह अवज्ञा होती है। जो दूसरोंको समझा सकता है—दूसरोंके अज्ञानको दूर करसकता है वही सच्चा बुद्धिमान् है किन्तु जिसकी विद्या निरुपयोगी है—किसीके काम नहीं आसकती है, वह किसी कामका नहीं। समुद्रके जलका कुछ पार नहीं, परन्तु जब वह किसीके पीनेके कामका नहीं तब उसका होना न होना बराबर है। " श्रीसो-

मदेवसूरिके उक्त वाक्योंसे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि हमें कैसे उपयोगी कार्यक्षम और सच्चे विद्वानोंकी ज़रूरत है। वे केवल न्याय व्याकरणादि रटे हुए पण्डितोंको किसी कामका नहीं बतलाते हैं। लोकव्यवहारज्ञता और दुनियाकी स्थितियोंके ज्ञानपर उन्होंने बहुत ही अधिक जोर दिया है। अत एव न्याय--व्याकरण--काव्य--धर्मशास्त्रके साथ साथ आवश्यक हैं कि विद्यार्थियोंको गणित, भूगोल, इतिहास, पदार्थविज्ञान आदि व्यवहारोपयोगी विषय भी हिन्दीमे सिखलाये जावें और वर्तमान सामाजिक धार्मिक राजनीतिक और वैज्ञानिक स्थितियोंका भी ज्ञान कराया जाय। इसके बिना पण्डित भले ही तैयार हो जावे, पर सच्चे विद्वान् न हो सकेंगे।

४. जीविकोपयोगी शिक्षा देनेके विषयमें तो कुछ अधिक कहनेकी जरूरत ही नहीं है। इसके लिए पहले कई बार लिखा जा चुका है। सब ही जानते है कि 'सर्वारम्भास्तण्डुलाप्रस्थमूला:'।

५. संभव है कि बहुतसे लोग यह कह उठें कि इतने अधिक विषय एक साथ कैसे पढाये जा सकते है? जैनसमाजके एक प्रसिद्ध पण्डितजीका तो यह सिद्धान्त है कि अधिक विषयोंकी शिक्षा देनेसे विद्यार्थी विद्वान् बन ही नहीं सकते और इसलिए वे अपनी पाठशालाके विद्यार्थियोंको सूखा न्याय और व्याकरण रटाते हैं--कहनेके लिए थोड़ा बहुत धर्मशास्त्र भी साथ लगा रक्खा है। परन्तु इस प्रकारके विचार उन्हीं लोगोंके हैं जो वर्तमान शिक्षाप्रणालीसे सर्वथा अपरिचित हैं--शिक्षाकी परिभाषा भी जो नहीं जानते और किसी तरहसे ग्रन्थ कण्ठ कर लेनेको ही विद्वत्ता समझते हैं। वास्तवमें विचार किया जाय तो किसी एक विषयको पढ़कर कोई किसी विषयका भी अच्छा मर्मज्ञ नहीं हो सकता है। एक विषयका मर्म समझनेके लिए उसके सहकारी

दूसरे विषयोंको भी जाननेकी ज़रूरत रहती है। व्याकरणका मर्मज्ञ कोई तब तक नहीं हो सकता जब तक साहित्यका ज्ञान प्राप्त न कर ले। धर्मशास्त्रोंका मर्म तबतक नही समझा जा सकता जबतक मनुष्यमे इतिहास, विज्ञान, भूगोल, समाजशास्त्र, देशकाल आदिका ज्ञान न हो। काव्यका मर्मज्ञ वह हो सकता है, जो मानसशास्त्रका ज्ञाता हो, मनुष्यसमाजके भीतरी भावोसे परिचित हो और प्रकृतिके मुक्तक्षेत्रमे जो वर्षोंतक स्वच्छन्द विचरता रहा हो। इसलिए प्रत्येक विषयमें निष्णात करनेके लिए उस विषयके सहकारी विषयोके साधारणज्ञानकी बहुत बडी आवश्यकता है । इसालिए जो ऊँचे दर्जेकी शिक्षासंस्थायें हैं उनमें मुख्य विषयोंके साथसाथ दूसरे अप्रधान विषयोका भी साधारण ज्ञान करा देनेका प्रबन्ध रहता है। बालकोंकी प्रकृति भी ऐसी ही होती है कि वे लगातार एक दो विषयोको जी लगाकर नहीं पढ सकते हैं, घण्टे दो घण्टे पढ़नेके बाद एक विषयसे उनका जी ऊब उठता है। तब आवश्यक होता है कि उन्हें कोई दूसरा विषय पढाया जाय और उसके बाद और कोई तीसरा। इस तरह विद्यार्थियोंकी योग्यताके अनुसार एक साथ कई विषय बहुत अच्छी तरहसे पढ़ाये भी सकते हैं। शिक्षाविज्ञानके ज्ञाता इस बातपर ध्यान रखकर कि विद्यार्थियोंके मस्तकपर अधिक बोझा न पड़ जाय—उन्हे अधिक परिश्रम न करना पड़े—प्रत्येक कक्षामें कई विषयोंके पढ़ानेका प्रबन्ध कर सकते हैं।

६. संस्कृत पाठशालाओंके पठनक्रममे सबसे बड़ा विवाद इस बात पर उपस्थित होता है कि जैनग्रन्थ पढाये जावें या जैनेतर विद्वानोंके बनाये हुए ग्रन्थ पढ़ाये जावें। इस विषयमें भी हम अपनी क्षुद्र सम्मति दे देना चाहते हैं। यह विवाद धर्मशास्त्रोंको लेकर नहीं होता;

इसमें सब ही सहमत हैं कि जैनसंस्थाओंमे जैनधर्मके ही ग्रन्थ पढाये जाना चाहिए। विवाद है व्याकरण, न्याय, साहित्यके ग्रन्थोंको लेकर। कुछ सज्जन यह कहते हैं कि इन तीनोकी शिक्षा केवळ जैन विद्वानोंके बनाये हुए ग्रन्थोंसे दी जाय और कुछ लोगोंका ख़याल है कि जैनेतर विद्वानोंके ग्रन्थ पढ़ाये जावें। इस पिछले ख़यालके जो लोग हैं वे प्रतिवर्ष सरकारी यूनीवर्सिटियोंकी संस्कृत परीक्षायें दिया करते हैं। पर हमारी समझमें इन दोनोके बीचका मार्ग अच्छा है। सबसे पहले हमें इस बातपर ध्यान देना चाहिए कि हमारे विद्यार्थी इन विषयोंमें अच्छे व्युत्पन्न हो जावें—अजैन विद्यालयोंके पढनेवालोंकी अपेक्षा उनका ज्ञान कम न रह जाय और इसके बाद यह विचार करना चाहिए कि हमारे जैन विद्वानोंके ग्रन्थोंकी अवज्ञा न हो-उनकी प्रसिद्धिके मार्गमें रुकावट न हो। केवल इसी ख़यालसे कि यह जैन विद्वान्का बनाया हुआ है कोई ग्रन्थ पठनक्रममें भरती कर लिया जाय और उससे विद्यार्थियोको वास्तविक बोध न हो तो यह ठीक नहीं। इसी तरह अमुक ग्रन्थ अमुक यूनीवर्सिटीमें पढाया जाता है, इस लिए हम भी पढ़ावें इस ख़यालसे कोई जैनेतर ग्रन्थ भरती कर लिया जाय और उससे अच्छा बोध न हो तथा उसी विषयका उससे अच्छा जैनग्रन्थ पड़ा रहे, तो यह भी ठीक नहीं है। ग्रन्थोंकी योग्यता, उपयोगिता आदिपर सबसे अधिक दृष्टि रखनी चाहिए, उनके रचयिताओंके विषयमें कम। व्याकरण और साहित्यका धर्मसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक व्याकरण 'पुरुषः पुरुषौ पुरुषा' ही सिद्ध करेगा, चाहे वह जैनाचार्यका बनाया हुआ हो और चाहे वैदिक बौद्ध या ईसाई विद्वान्का। देखना यह चाहिए कि सुगम और अल्पपरिश्रमसाध्य कौन है? यदि शाकटायन या जैनेन्द्र सम्पूर्ण और सुगम

विशेष ज्ञान प्राप्त करनेके लिए औरोंके काव्योंको भी पढ़ना चाहिए। हमारा तो यहाँ तक खयाल है कि हम अपने काव्योंकी खूबियाँ सर्व साधारणमें तब ही प्रकट कर सकेगे जब औरोके काव्योंको अच्छी तरह पढ़ेंगे। नाटक और अलंकारके ग्रन्थ तो हमे औरोके पढ़ना ही पड़ेंगे। क्योंकि इन विषयोंके हमारे कोई अच्छे ग्रन्थ अभीतक प्रकाशित ही नहीं हुए है।

७. उक्त सब बातोंकी व्यवस्था विद्यालयमें तब हो सकेगी जब उसमें एक अच्छे विद्वानकी नियुक्ति हो। यह विद्वान् प्राचीन और अर्वाचीन शिक्षाप्रणालीका ज्ञाता हो, शिक्षाविभागमें काम किया हुआ हो, संस्कृतका शास्त्री और अँगरेजीका ग्रेज्युएट हो। जहाँतक हम जानते है जैनियोंमें ऐसे विद्वानकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसलिए किसी अजैनको ही बुला लेना चाहिए। शायद यह बात कुछ लोग पसन्द न करें परन्तु इसे पसन्द किये बिना विद्यालय कदापि उन्नति न कर सकेगा। इस विषयमें सेठजीको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए। धर्मशिक्षामे इससे बाधा नहीं आसकती। धर्मशिक्षाका कोर्स कमेटी बना देगी और उसके लिए जैनी पण्डितोंको नियत कर देगी—उसमे उक्त अजैन विद्वान् देखरेख रक्खेगा और पढ़ानेके ढंग आदिके विषयमे सूचना करता रहेगा—इसके आगे और कुछ हस्तक्षेप नहीं करेगा। बस, इससे सब डर दूर हो जायगा।

८. विद्यालयमें वृत्तिप्राप्त छात्र चाहे कम रक्खे जावें, पर एक प्रिंसिपाल (अजैन), एक सुपरिंटेंडेंट, एक धर्मशास्त्री, एक हिन्दी अध्यापक, एक वैयाकरण और साहित्यज्ञ और एक नैयायिक, इतने कर्मचारी बहुत अच्छी योग्यताके अच्छा वेतन देकर रक्खे जावे। इनके सिवा एक दो अध्यापक और भी रहें। यह स्मरण रखना चाहिए कि अध्यापक-

गण जितने ही योग्य होंगे, विद्यालय उतना ही अच्छा और आदर्श बनेगा ।

९ ' सेठ हुकमचन्द बोर्डिंग स्कूल ' अभीतक जुदा चलता था। उसमे लगभग १२५) मासिक खर्च होता था । अब वह विद्यालयमें शामिल कर दिया जायगा; परन्तु यह मालूम न हुआ कि उक्त १२५) मासिक विद्यालय फण्डमें दिया जायगा या नहीं । हमारी समझमें सेठ-जीके नये दानसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए पहले दानकी रकम इस दो लाखके साथ अवश्य जोड़ देनी चाहिए ।

आज इतना ही लिखकर हम विश्राम लेते हैं । उदासीनाश्रम और श्राविकाश्रमके विषयमें आगे लिखा जायगा ।

---

## करो सब देशकी सेवा ।

बनो मत बन्धुओ न्यारे, प्रभूके हो सभी प्यारे,
इकट्ठे हो, करो सारे, सनातन देशकी सेवा ॥ १ ॥
हृदयकी ग्रन्थियाँ छोड़ो, स्वपरके भेदको तोड़ो,
परस्पर प्रेमको जोडो, करो सब देशकी सेवा ॥२॥
प्रगतिके संख बोज है, विवेकी वीर जागे है;
पडे क्यों नींदमें प्यारो, करो सब देशकी सेवा ॥ ३ ॥
न हो यदि धन तो तनहीसे, न हो यदि श्रम तो धनहीसे,
नहीं दोनों तो मनहीसे, करो सब देशकी सेवा ॥४
करोड़ों अन्न बिन रोते, सिसकते प्राण हैं खोते,
बहाकर प्रेमके सोते, करो सब देशकी सेवा ॥५
पडे लाखों अँधेरेमें, फिरें अज्ञान-फेरेमें,
उजारो ज्ञानके दीपक, करो सब देशकी सेवा ॥६

हज़ारों रोग दुख सहते, विना उपचारके मरते,
दयामृत इन पै वरसाके, करो सब देशकी सेवा ॥७
सुदुस्तर रूढ़ि-दलदलसे, उबारो, सत्यके बलसे,
दिखाओ धर्मके पथको, करो सब देशकी सेवा ॥८
बनो उत्साहसे ताजे, बजाओ ऐक्यके वाजे,
गिरोंको भी उठा करके, करो सब देशकी सेवा ॥९
बनो पहले स्वयं सच्चे, बनाओ और फिर अच्छे,
यही दृढ़ नीव धर करके, करो सब देशकी सेवा ॥१०
सदा जीता नहीं कोई, मरा परहित जिया सोई,
समझ अमरत्व इसको ही, करो सब देशकी सेवा ॥११
उठो, जागो, कमर कस लो, क्षणिक सुखमोहको तज दो,
कसम भगवानकी तुमको, करो सब देशकी सेवा ॥ १२
परम कर्तव्य 'जन-सेवा,' परम सद्धर्म 'जनसेवा'
समझकर भाइयो मेरे, करो सब देशकी सेवा ॥१३॥

—जैनहितेच्छु ।

---

# मीठी मीठी चुटकियाँ।

## १. कैलाशयात्रा।

ख़बर है कि जैनमित्रके सम्पादक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी कैलाशकी यात्राके लिए जानेवाले हैं। उनके पास ब्रह्मचारी लामचीदासकी मृत आत्माका आग्रहपूर्ण पत्र आया है । वे लिखते है कि सगरराजाके पुत्रोंकी खोदी हुई खाईको हमने आपके लिए पाट कर तैयार कर रक्खा है!

## २. सर्वोच्च डिटेक्टिव।

जैन समाजकी एक प्रसिद्ध धनिकसभाने पं० जवाहरलालजी साहित्य शास्त्रीको अपने डिटेक्टिव विभागके सर्वोच्च पदपर प्रतिष्ठित किया है। सुना है कि आपकी कार्यनिपुणतासे प्रसन्न होकर सभा आपको एक मेडल देने वाली है।

## ३. अनुसन्धान होना चाहिए।

आजकाल जैनगजटमें प० सेठ मेवारामजीकी तूती नहीं बोलती। उनकी यशोगाथायें भी आजकल उनके भक्तोंको सुननेके लिए नहीं मिलती। इससे लोक बहुत उद्विग्न हो रहे है। क्या कारण हं, इसका शीघ्र ही अनुसन्धान होना चाहिए।

## ४. डेप्युटेशन भेजा जाय।

इन्दौरके एक सेठ लगभग २॥ लाखका दानकर चुके, दूसरे ४ लाखकी सस्थायें खोल रहे हैं और एक तीसरे सेठ भी बहुत जल्दी लगभग २ लाख रुपया खर्च करनेवाले हैं। इन ख़बरोंसे कुछ लोगोंमें बड़ी हलचल मची है। अभी उस दिन प्रतिष्ठा करानेवाले पण्डितोंने एक सभा करके इन दानोंके विरुद्धमें एक प्रस्ताव पास किया। उसमें कहा कि ये दान शास्त्रविहित नहीं है। कलियुगी या पंचमकालीय दानोंके सिवा इन्हे और कोई नाम नहीं दिया जा सकता। आर्ष ग्रन्थोंमें इस प्रकारके दानोंका कहीं भी उल्लेख नहीं है। इनका परिणाम भी उल्टा होगा। इनकी सस्थाओंमें सब 'एकाकार' के उपासक तैयार होंगे। प्रभावनाका तरीका लोक भूलते जा रहे है। अच्छा हो यदि एक डेप्युटेशन उक्त सेठोंके यहाँ भेजा जाय और उनका ध्यान मन्दिरनिर्माणादि कार्योंकी ओर दिलाया जाय। डेप्युटेशनके मन्त्री श्रीयुत प्रतिष्ठा-प्रभाकर महाराज नियत किये गये।

### ५. कैफ़ियत तलब की गई ।

समस्त शुद्धाम्नायी भाइयोंकी ओरसे मालवा प्रान्तिक सभाके पास एक पत्र भेजा गया है और उसमें इस बातकी कैफ़ियत तलब की गई है कि मालवा प्रान्त शुद्धाम्नायका केन्द्र है, तब उसकी सभाके सभापतिके पदपर सेठ हीराचन्द नेमिचन्दजी क्यों बैठाये गये? क्या सभाको यह मालूम नहीं है कि उक्त सेठजी बीसपंथी है और जैनसमाजमें छापेका प्रचार करनेवाले प्रधान आचार्य है। यदि उन्हें सभापति बनाया भी था तो कमसे कम इन्दौरके उस पुराने काग़ज़पर तो उनसे दस्तख़त करा लेना चाहिए था जिसमे छापेके ग्रन्थोंके घरमें न रखनेकी प्रतिज्ञायें लिखी है। देखें, सभा इस पत्रका क्या उत्तर देती है।

### ६. एक और भट्टारक।

सोजित्राकी भट्टारककी गद्दीपर पं० सुन्दरलालजी बहुत जल्दी बैठनेवाले है। बिना किसीकी सम्मतिसे एक जैन स्त्री उन्हें शीघ्र ही भट्टारक बना देना चाहती है। 'दिगम्बरजैन' ने इसके विरुद्ध बहुत कुछ लिखा है और चाहा है कि लोग इस अन्यायको रोकें। बिना सबकी सम्मति लिए सुन्दरलाल जैसे महात्माओको गद्दीपर बिठा देना ठीक नही। परन्तु मेरी समझमें उसका यह खयाल ग़लत है। लोग उसकी सुनते भी कहाँ है? पिछले वर्ष मोतीलालजीके विषयमें क्या थोड़ी उछल कूद मचाई थी? पर हुआ क्या? वे भट्टारक बन बैठे और लोग उनकी पूजा भी करने लगे जब तक गुजराती भाइयोंमे प्रबल गुरुभक्तिका अस्तित्व है, तब तक वे उसकी बाते क्यों मानने लगे? और यह भी तो सोचना चाहिए कि आजकल स्त्रियोका बल कितना बढ़ा हुआ है। जब एक स्त्रीने इसके

लिए कमर कसी है, तब गुजराती पुरुषोंमें इतनी शक्ति कहाँ है जो उसमें विघ्न डाल सकें। सुना है भट्टारक मोतीचन्दजी मंत्रविद्याके जानकार हैं। इस लिए हम प० सुन्दरलालजीको सलाह देते हैं कि वे उनसे वह मंत्र जल्द सीख लेवें जिसके बलसे सैकड़ों लोगोंके विरुद्ध रहते भी वे ईडरके भट्टारक बन गये। उक्त मंत्रसे आपकी सारी मनोकामनायें सिद्ध हो जावेंगी।

## ७. श्रुतपञ्चमी आई।

हरसाल श्रुतपंचमी आती है और चली जाती है। जो सदा आती है उसकी बारबार याद दिलानेकी मालूम नहीं क्या जरूरत है। जैन-पत्र सम्पादकोंको यह एक तरहका रोग ही हो गया है कि ये वैशाख जेठ आया और लगे अपना वही पुराना राग आलपने। इन रागको सुनकर लोग और तो कुछ करते नहीं, ग्रन्थोंको झाड़झुड़कर ठीकठाक करके रख देते हैं और इस आरंभमें कुछ सूक्ष्म जीवोंको शरीरयातनासे मुक्त कर देते हैं। इससे मैं इस रागको पसन्द नहीं करता। अपने राम तो ठीक इससे उलटा कहते हैं कि भाई, इस श्रुतपंचमीके झगड़ेको छोड़ो; ये पढ़े लिखे लोग तुम्हारे गले जबर्दस्ती एक नया जरवा मढ रहे हैं। इन पुराने गले सड़े शास्त्रोंमें रक्खा ही क्या है जो इतनी मिहनत करते हो। यदि इनमें कुछ हो भी, तो उसे समझे कौन? अपने लड़के तो बारहखड़ी, पहाड़े, हिसाब, किताब आदि सीखकर ही अपने कारोबारको मजेसे सँभाल लेते हैं और रहा धर्म, सो मंगल पढ़ लेते हैं, पूजा जानते हैं, व्रत उपवास कर लेते हैं, हरियोंका त्याग तो कराना ही नहीं पड़ता है—स्वयं कर लेते हैं, फिर और क्या चाहिए? मेरी समझमें तो ये 'संसकीरत पराकरत' के शास्त्र पंडितोंको सौंप देना चाहिए, वे चाहे इनकी सुतपंचमी करें चाहे और कुछ करें। अपने

लिए तो भाखाके पदमपुरानजी ही बहुत हैं और वे अब छप गये हैं इसलिए उनके सँभालनेकी जरूरत नहीं। जिस दिन वी. पी. आया: अपनी तो उसी दिन सुतपंचमी है।

---

## विविध समाचार।

**जैनजातिका ह्रास**—दक्षिणम० जैन सभाके सभापति श्रीयुक्त जयकुमार देवीदासजी चवरे वकीलने अपने व्याख्यानमें कहा है कि भारतके दूसरे समाजोंकी जनसंख्या जब बराबर बढ़ती जाती है तब जैनसमाजकी जनसंख्या बड़ी तेजीसे घट रही है। पिछले १० वर्षोंमें हमारी संख्यामें प्रतिशत ६-४ की कमी हुई है। और जिन-जातियोंकी जनसंख्या थोड़ी है उनमें तो यह कमी प्रतिशत १५ से कम नहीं हुई है। हमारे बरार प्रान्तमे तो बहुतसी जातियाँ बिलकुल नाश होनेके सम्मुख हो रही है। बरार प्रान्तके प्रायः सब ही लोग जानते है कि वहाँकी 'कुकेकरी' नामकी एक जैनजातिका थोड़े वर्ष पहले सर्वथा ही लोप हो गया है! इस पर जैमसमाजके नेताओंको ध्यान देना चाहिए।

**जैन गुरुकुलकी स्थापना**—पालीताणाकी 'यशोविजय जैन-पाठशाला' 'श्रीमहावीरयशोवृद्धि जैन गुरुकुल' के रूपमे परिवर्तित कर दी गई। गत अक्षय्यतृतीया (वैशाख शुक्ला तृतीया) को गुरुकुलकी इमारतका मुहूर्त पालीताणाके एड मिनिस्टर मेजर एच. एस. स्ट्रोंग साहबके हाथसे खूब ठाटबाटके साथ किया गया। गुरुकुलमे इस समय ५१ विद्यार्थी है।

**नई धर्मशाला**—सम्मेदशिखर जानेवाले यात्रियोके आरामके लिए ईसरी स्टेशनपर गुंजेटीवाले सेठ धनजी रेवचन्दकी ओरसे एक धर्मशाला बन गई है। धर्मशाला स्टेशनसे बिलकुल करीब है।

**एक और उदासीनाश्रम**—इन्दौरके उदासीनाश्रमके अतिरिक्त कुण्डलपुर, जिला दमोहमें एक और आश्रम खुलनेवाला है। उसका नाम होगा ' श्री महावीर उदासीनाश्रम '। लगभग आठ हजारका चन्दा हो गया है।

**हिन्दीमें विश्वकोष**—प्राच्यविद्यामहार्णव बाबू नगेन्द्रनाथने २७ वर्ष लगातार परिश्रम करके बंगला भाषामें ' विश्वकोश ' तैयार किया है। उसमें लगभग ७ लाख रुपये खर्च हुए हैं। यह ' इन्साइक्लोपेडिया ब्रिटानिका ' के ढँगका है। अब बाबू साहबने हिन्दीमें भी इसी ढँगका ' विश्वकोष ' लिखना प्रारंभ कर दिया है। मासिकरूपसे निकलेगा। वार्षिक मूल्य चार रुपया है। इसमें भी उतना ही खर्च होगा। पर यह बंगलाका अनुवाद न होगा--उसकी केवल सहायता लेकर स्वतन्त्र लिखा जायगा। इसे पर्यायवाची शब्दोंका ही कोष न समझना चाहिए यह ज्ञानका भण्डार है। केवल अकबर शब्दही पर इसमें कई पृष्ठोंका महत्त्वपूर्ण निबन्ध है। हिन्दीका अहोभाग्य है।

**स्याद्वादपर व्याख्यान**—पूनेमें एक संस्था है। उसकी ओरसे प्रतिवर्ष वसन्त ऋतुमें बडे बड़े विद्वानोंके व्याख्यान होते हैं। इस वर्ष ता० ८ मईको शोलापुर जैनपाठशालाके अध्यापक प० वंशीधर शास्त्रीका श्रीयुक्त वासुदेव गोविन्द आपटे बी.ए. के सभापतित्वमें 'स्याद्वाद' के विषयमें व्याख्यान हुआ। सार्वजनिक संस्थाओंमें इस तरहके व्यांख्यानोंसे बहुत लाभ होनेकी संभावना है।

**द्वीपान्तरोंमें भारतीय सभ्यता**—पूर्वकालमें भारतवासियोंने भी दीपान्तरोंमें जाकर अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। अभी अभी ऐसे कई द्वीपोंका पता लगा है। जावा (यवद्वीप) में प्राचीन भारत-वासियोंके वंशज अब तक मौजूद हैं। वे यहाँ सरीखी धोती पहनते

हैं; खेती आदिके काम मुहूर्त देखकर करते है, रामायण और महाभारतकी आख्यायिकाओंपर रचे हुए नाटक खेलते हैं, और बड़के झाड़ोके नीचे उनके ग्राम्य देवोंके मन्दिर होते हैं। वहाँके मुसलमान तक हिन्दू देवोंकी पूजा करते है! वहाँ दो ज्वालामुखी पर्वत हैं उनका नाम उन्होंने अर्जुन और ब्रह्मा रख छोड़ा है। इस द्वीपके पूर्वकी ओर 'वाली' नामका द्वीप है। वहाँके तो प्राय: सबही लोग हिन्दू हैं। वर्ण-व्यवस्था तक उनमें मौजूद है।

**विदेशमें हिन्दू-मंदिर**—विदेशयात्राके लिए चाहे कितना ही प्रतिबन्ध किया जाय परन्तु वह रुकती नहीं। लोग तो जाते ही है अब उनके साथ उनके इष्टदेव भी जाने लगे हैं। नेटालके 'वेरुलम' नामक नगरमें अभी हाल ही गोपाललालका एक विशाल मन्दिर बनकर तैयार हुआ है।

**बंगलामें जैनसाहित्य**—बंगलाके मासिकपत्रोंमें अब जैनसाहित्यकी थोड़ी बहुत चर्चा होने लगी है। अभी अभी ऐसे कई लेख प्रकाशित हुए है। फाल्गुन चैत्रके 'साहित्य'में उपेन्द्रनाथ दत्त नामक किसी सज्जनने 'जैनशास्त्र' शीर्षक एक लेख लिखा है। इसमें चार अनुयोगोका संक्षिप्त स्वरूप दिया है। लेखमे भूलें बहुत हैं; एक जगह लिखा है कि "श्वेताम्बरी लोग कहते है कि जैनशास्त्र जैनसाधु और तीर्थकरोके रचे हुए है; परन्तु दिगम्बरी कहते है कि केवल महावीर तीर्थंकर ही इनके प्रणेता हैं।" पर यह भ्रम है। भूलें आगे सुधर जावेंगी—अभी चर्चा होने लगी इतना ही बहुत है।

**जैनियोंपर नरहत्याका अभियोग**—जयपुरकी जैनशिक्षा-प्रचारक समितिके सस्थापक पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. इस समय बड़ी विपत्तिमें हैं। उनके माणिकचन्द, मोतीचन्द और जयचन्द

नामक तीन शिष्योंपर और जोरावरसिंह नामक एक और युवकपर नीमेज जिला शाहबादके महन्त और उसके एक सेवककी हत्या करनेका अपराध लगाया गया है। मुकद्दमा आरामें चल रहा है। माणिकचन्द सरकारी गवाह बन गया है। उसने स्वय अपने साथियों सहित हत्या करना स्वीकार किया है। और भी कई साक्षियोंसे हत्या करना सिद्ध हुआ है। हत्या महन्तकी सम्पत्ति लेनेके लिए की गई थी। जो सम्पत्ति मिलती वह देशसेवाके काममें खर्च की जाती। परन्तु अपराधी तिजोरी न तोड़ सके और भयके मारे भाग गये। सेठीजी इस हत्यामें शामिल नहीं बतलाये जाते हैं, परन्तु पुलिसको विश्वास है कि उनकी भी इसमें साजिश है। कुछ ऐसे सुबूत भी मिले हैं जिससे अनुमान होता है कि सेठीजीने एक राजद्रोह प्रचारक समिति बना रक्खी थी और उसका सम्बन्ध दिल्लीके षड्यन्त्र करनेवालोंसे था। अपराधियोंमेंसे जयचन्द और जोरावरसिंह लापता हैं। शिवनारायण द्विवेदी जो बम्बईमें गिरिफ्तार किया गया था, उसके द्वारा पुलिसको इस सारे षडयन्त्रका पता लगा है। इस समाचारको पढ़कर हम लोगोंके आश्चर्यका कुछ ठिकाना नहीं रहा है। क्या जैनियोके द्वारा भी ऐसे घोर पातक हो सकते है?

**ग्रन्थ लिखवाइए**—आराके जैन सिद्धान्तभवनमें इस समय कई सुलेखक मौजूद हैं। भवनके सचित ग्रन्थोमेंसे यदि कोई भाई ग्रन्थ लिखवाना चाहें तो मंत्रीसे शीघ्र ही पत्रव्यवहार करें।

**मुंशीजीका देहान्त**—गत ता० ८ मईको महासभाके महामंत्री मुंशी चम्पतरायजीका देहान्त हो गया। यह बडे ही शोकका विषय है। आप कई महीनेसे बीमार थे।

———

# जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालयकी छपी हुई पुस्तकें।

---

- मोक्षमार्गप्रकाश १॥)
- शाकटायन प्रक्रियासंग्रह (संस्कृत) ३)
- प्रद्युम्नचरित्र भाषावचनिका २॥)
- बनारसीविलास (कविता) १।)
- प्रवचनसार परमागम (कविता) १)
- वृन्दावनविलास (कविता) ॥)
- धूर्ताख्यान ≡)
- नित्यनियमपूजा )
- भाषापूजासंग्रह ।)
- मनोरमा उपन्यास ।)
- ज्ञानसूर्योदय नाटक ।)
- तत्त्वार्थसूत्रकी बालबोधिनी भाषा टीका ॥)
- जैनपदसंग्रह पहला भाग ।≡)
- जैनपदसंग्रह दूसरा भाग )
- जैनपदसंग्रह चौथा भाग ॥≡)
- जैनपदसंग्रह पांचवां भाग ।≡)
- ज्ञानदर्पण )
- रत्नकरण्डश्रावकाचार सान्वयार्थ )
- द्रव्यसंग्रह अन्वय अर्थ सहित )
- भक्तामरस्तोत्र-सान्वयार्थ और भाषापद्य )
- सूक्तमुक्तावली ।≡)
- श्रुतावतारकथा ≡)
- भूधरजैनशतक ≡)॥
- क्षत्रचूडामणि काव्य ॥)
- उपमिति भवप्रपंचाकथा प्रथम प्रस्ताव ॥)
- उपमितिभवप्रपंचाकथा द्वितीय प्रस्ताव ।-)
- जैनविवाहपद्धति ≡)
- बारस अणुवेक्खा -)।
- भाषानित्यपाठसंग्रह-रेशमीजिल्दका ।) सादा ।-)
- प्राणप्रिय-काव्य =)
- क्रियामंजरी -)
- सज्जनचित्तवल्लभ =)
- सप्तव्यसन चरित्र ॥=)
- पंचेन्द्रियसंवाद -)
- जैनसिद्धान्त प्रवेशिका ≡)
- जैनबालबोधक प्रथम भाग )
- बालबोधजैनधर्म प्रथम भाग )॥
- बालबोधजैनधर्म द्वि० भाग -)
- बालबोध जैनधर्म तृ० भाग =)
- बालबोध जैनधर्म च० भाग ।-)

शीलकथा ।)
दानकथा =)
दर्शनकथा =)
निशिभोजनकथा =)
रविव्रतकथा -)
दियातले अंधेरा -)॥
सदाचारी बालक -)॥
समाधिमरण-दो तरहका -)
समाधिमरण और मृत्यु महोत्सव =)
अरहंतपासाकेवली -)॥
भक्तामर-मूल और भाषा -)
पंचमंगल -)
दर्शनपाठ -)
शिखरमाहात्म्य-भा० व० -)
निर्वाणकांड -)
सामायिक और आलोचना -)
सामायिक पाठ भा०टी० -)
कल्याणमन्दिर और एकी भावस्तोत्र )॥।
आरतीसंग्रह )॥।
छहढाला-दौलतराम कृत )॥।
छहढाला-बुधजनकृत -)
छहढाला-द्यानतराय कृत -)
इष्टछत्तीसी )॥
मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) मूल -)॥
मुनिवंश दीपिका )॥
परमार्थ जकडीसंग्रह -)॥
सामाजिकचित्र -)
विनतीसंग्रह =)
जिनेन्द्रगुणानुवाद पच्चीसी -)।
आप्तपरीक्षा-मूल पाठमात्र -)
आप्तमीमांसा ,, -)
जिनसहस्रनाम =)
द्यानतविलास ।)
चर्चाशतक ॥)
न्यायदीपिका भाषाटी०स० ॥)

## दूसरोंकी छपाई हुई पुस्तकें।

बृहद्द्रव्यसंग्रह ३)
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय १)
ज्ञानार्णव ४)
आत्मख्याति समयसार ४)
भगवती आराधनासार ४)
सर्वार्थसिद्धि भाषावचनिका ४)
विश्वलोचनकोष १।=)
धन्यकुमारचरित्र ॥)
भद्रबाहुचरित्र ॥=)
षटपाहुड १)
धर्मसंग्रहश्रावकाचार २)
धर्मरत्नोद्योत १)
स्याद्वादमंजरी ४)
त्रैवर्णिकाचार (मराठी) ३)
इन्द्रियपराजयशतक =)
अनुभवप्रकाश ।=)

| | |
|---|---|
| संशयतिमिर प्रदीप | ॥) |
| वाग्भट्टालंकार संस्कृत और भा० टी० | १) |
| परमात्म प्रकाश | ।=) |
| पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय— संक्षिप्त अर्थ | ।) |
| देवगुरु शास्त्र पूजा-सार्थ | =) |
| सुखानन्द मनोरमा नाटक | ॥) |
| अंजना सुन्दरी नाटक | ।) |
| सोमासती नाटक | )॥ |
| श्रावक वनिता बोधिनी | ।) |
| कातंत्रपंच संधि-भा० टी० | =) |
| अमरकोश मूल | ।=) |
| अमरकोश भा० टी० | १) |
| हिन्दीकी पहली पुस्तक | =)॥ |
| हिन्दीकी दूसरी पुस्तक | ।) |
| हिन्दीकी तिसरी पुस्तक | ।=) |
| हिन्दीकी तीसरी पुस्तक नाथूराम प्रेमीकृत | ।-) |
| शील और भावना | )॥ |
| वसुनन्दि श्रावकाचार भापा टीका सहित | ।) |
| स्त्रीशिक्षा प्रथम भाग | -) |
| स्त्रीशिक्षा द्वितीय भाग | =) |
| यशोधरचरित्र-प्राकृत और भाषा टीका सहित | २) |
| जैननियम पोथी | )॥ |
| सृष्टि कर्तृत्व मीमांसा | ) |
| खंडेलवाल इतिहास | =)॥ |
| पंचस्तोत्र भाषा | =) |
| पंचस्तोत्र संस्कृत | =) |
| मानिकविलास | ।) |
| द्रव्यसंग्रह-सूरजभानु कृत | ॥) |
| धर्मामृत रसायण | ) |
| लावनी रत्नमाला | ) |
| चौबोल चौबीसी | ) |
| वर्ष प्रबोध ( ज्योतिष ) | ॥) |
| आर्यमतलीला | ।=) |
| जैनसम्प्रदाय शिक्षा | २॥) |
| चौबीस तीर्थंकर पूजा मनरंगलाल कृत | ॥) |
| आराधना सार कथाकोश | २॥) |
| जिनेन्द्र गुन गायन | =) |
| जैन उपदेशी गायन | =)॥ |
| गृहस्थधर्म | १=) |
| जैनधर्मका महत्त्व | ॥) |
| अनुभवानन्द | ॥) |
| विद्वद् रत्नमाला | ॥=) |
| जिनेन्द्रमत दर्पण प्रथमभाग | ) |
| जैन जगदुत्पत्ति | )॥ |
| क्या ईश्वर जगत्कर्ता है | )॥ |
| प्रद्युम्नचरित्र ( सार ) | ।=) |
| यशोधर चरित | -) |
| नागकुमार चरित | ।=) |
| पवनदूत | ।) |
| धर्मप्रश्नोत्तर | २) |
| यात्रादर्पण | २) |
| हनुमानचरित्र | ।=) |

| | |
|---|---|
| प्रवचनसार | ३) |
| गोम्मटसार कर्मकाण्ड | २) |
| **संस्कृत ग्रन्थ ।** | |
| सुभाषित रत्नसंदोह | ॥) |
| जीवन्धर चम्पू | १) |
| नेमिनिर्वाणकाव्य | ॥=) |
| चन्द्रप्रभचरित | ॥) |
| धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य | १) |
| द्विसंधान महाकाव्य | १॥) |
| यशस्तिलकचम्पू महाकाव्य प्रथमखंड | ३॥) |
| ,, उत्तरखंड | २॥) |
| काव्यमाला सप्तमगुच्छक | १) |
| काव्यानुशासन वाग्भटकृत | ।≈) |
| काव्यानुशासन-हेमचन्द्राचार्यकृत | २) |
| अध्यात्मकल्पद्रुम | ॥) |
| जयन्तविजय | १) |
| जैननित्यपाठ संग्रह | ।=) |
| पंचस्तोत्र | ≈) |
| तिलक मंजरी | २॥) |
| प्रभावक चरित | १॥) |
| पांडव चरित | ४) |
| हीरसौभाग्य | ५॥) |
| सनातन जैनग्रन्थमाला प्रथम गुच्छक | १) |
| अलंकार चिन्तामणि | ॥) |
| पार्श्वाभ्युदय सटीक | ॥) |
| परीक्षामुख | ॥) |
| गोम्मट्टसार जीवकांड मूल | ।=) |
| जीवंधर चरित्र | १) |
| शाकटायन प्रक्रिया संग्रह | ३) |
| आप्तपरीक्षा | -) |
| आप्तमीमांसा | -) |
| मोक्षशास्त्र मूल | -)॥ |
| सहस्रनाम | ≈) |
| जैनस्तोत्र संग्रह | ।) |
| गणरत्न महोदधि | ३) |
| जिनकथा द्वाविंशति | =॥) |
| यशोधर चरित काव्य | ॥) |
| जैनेन्द्र पंचाध्यायी | ।) |
| जैनेन्द्र प्रक्रिया | ॥) |
| आप्त परीक्षा पत्र परीक्षा | १) |

# सर्वसाधारणोपयोगी पुस्तकें ।

## उपन्यास और कहानियाँ ।

| | |
|---|---|
| आदर्शदम्पती | ॥=) |
| आश्चर्यघटना (नौकाडूबी) | १) |
| कादम्बरी | ॥) |
| चन्द्रलोककी यात्रा | १) |
| ठोकपीटकर वैद्यराज | ।) |
| दुःखिनीबाला | -)॥ |

देवरानीजिठानी ॥)
देवीउपन्यास ॥।)
दोबहन ॥।)
धर्मदिवाकर १)
धोखेकी टट्टी ।=)
निःसहायहिन्दू =)
नूतनचरित्र ॥)
प्रणयिमाधव १)
पृथ्वी परिक्रमा ।=)
प्रेमप्रभाकर १)
पारस्योपन्यास १)
महाराष्ट्रजीवन-प्रभात ॥=)
माधवीकंकण ( इंडियन-प्रेसका ) ॥।)
माधवीकंकण ( वेंकटेश्वर-प्रेसका ) ॥=)
मुकुट १)
युगलांगुलीय ≡)
रमामाधव ॥)
राजपूतजीवनसंध्या ॥।)
विचित्रवधूरहस्य ॥।)
वीर मालोजी भोंसले ॥≡)
शिवाजीविजय ॥।)
शेखचिल्लीकी कहानियाँ ॥)
षोडशी १)
स्वर्णलता १॥)
समाज ( रमेशचन्द्रदत्तकृत ॥।)
सासपतोहू ॥)
हिन्दूगृहस्थ ॥=)

## नाटक ।

किंगलियर नाटक ॥=)
प्रभासमिलन नाटक ॥=)
प्रेमलीला नाटक ॥=)
महाराणा प्रतापसिंह ॥।)
वेनिसका व्यापारी ॥।)
शकुन्तलानाटक १)

## बालकोपयोगी ।

कर्त्तव्यशिक्षा १)
कहानियोंकी पुस्तक ।-)
बच्चोंका खिलौना ।-)
खेलतमासा -)
लड़कोंका खेल =)॥
प्रबोधचन्द्रिका ॥।)
बाल आरव्योपन्यास चार भागोंमें प्रत्येक भागका ॥)
बालनिबंधमाला ।=)
बालनीतिमाला ॥)
बालपंचतंत्र ॥)
बालहितोपदेश ॥)
बालविनोद पहला भाग -) दूसरा भाग -)॥ तीसरा भाग =) चौथा भाग ।=) पाचवा भाग ।≡)
बालहितोपदेश ॥)
बालहिन्दी व्याकरण ।)
बाल स्वास्थ्य रक्षा ॥)
भाषापत्रबोध -)॥
भाषाव्याकरण ≡)

हिन्दीव्याकरण ≈)
हिन्दीशिक्षावली पहला भाग -)
दूसरा भाग -)॥ तीसरा भाग =) चौथा भाग ≈)॥ पाचवा भाग ।)॥

## स्त्रियोपयोगी पुस्तकें।

आर्यललना ।)
गृहिणी भूषण ।॥)
पतिव्रता ॥)
पाकप्रकाश ≈)
बालापत्र बोधिनी ।-)
बाला बोधिनी पहला भाग -)
दूसरा भाग ≡)॥ तीसरा भाग ।) चौथा भाग ।-) पाचवा भाग ।=)
भारतीय विदुषी ।≡)
स्वामी और स्त्री ॥≡)
सीताचरित १।)
सुशीलाचरित्र १)
सौभाग्यवती ≡)॥

## कविताकी पुस्तकें।

जयद्रथ-वध ।॥)
पद्य-प्रबंध ॥≡)
रंगमें भंग ।)
हम्मीरहठ ।॥)
हिन्दी मेघदूत ।≡)

## इतिहास।

इंग्लेंडका इतिहास ॥≡)
जर्मनीका इतिहास ।≡)
जापानका इतिहास ॥)
जापानका उदय ॥)
जापान दर्पण ॥)
नैपालका इतिहास ॥)
फ्रांसका इतिहास ।≈)
राजस्थान (राजपूताने) का इतिहास प्र० भाग १०)
" " दू० भा० १०)
रूसका इतिहास ।≡)
सिंधका इतिहास ।≡)॥

## जीवन चरित।

अब्दुलरहमानखां ॥)
इतिहास गुरुखालसा ३)
उम्मेदसिंह चरित १)
औरंगजेबनामा प्र० भा० ।≡)
" द्वि० भा० ।≡)
गारफील्ड ।॥)
दशकुमार चरित ॥≡)
बुद्धका जीवन चरित ।॥)
राबिन्सनक्रूसो १।)
हिन्दीकोविदरत्नमाला १॥)

## वैद्यक।

आरोग्यविधान -)॥
परिचर्याप्रणाली ।)
सुखमार्ग ।)
क्षयरोग ।-)

## पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी कृत।

अर्थशास्त्र प्रवेशिका ।)

| | |
|---|---|
| कुमारसंभवसार(कविता) | ।) |
| कालिदासकी निरंकुशता | ।) |
| जलचिकित्सा | ।) |
| नाट्यशास्त्र | ।) |
| महाभारत ( सचित्र ) | ३) |
| रघुवंश महाकाव्य | २) |
| वेकनविचार रत्नावली | ॥) |
| शिक्षा | २॥) |
| हिन्दीभाषाकी उत्पत्ति | ।) |

## विविध विषयोंकी पुस्तकें।

| | |
|---|---|
| इन्साफसंग्रह | ।=) |
| उपदेशकुसुम | =) |
| कर्मयोग | ।=) |
| ठहरो ( उपदेशदर्पण ) | ।) |
| चन्द्रकान्त ( वेदान्त ) | २॥) |
| जानस्टुअर्ट ब्लैकी | ॥=) |
| नवजीवनविद्या | १॥) |
| नाट्यप्रबंध | ।) |
| पश्चिमीतर्क | १) |
| भारतभ्रमण ( पांचभाग ) | ६) |
| मनोविज्ञान | ॥) |
| मानसदर्पण | ।-) |
| राज्यप्रबंधशिक्षा | ॥) |
| राष्ट्रीयसन्देश | ।=) |
| व्यवहारपत्रदर्पण | ॥) |
| स्वर्गीयजीवन | ॥-) |
| स्वाधीनविचार | ।) |
| समाज ( रवीन्द्रनाथकृत) | ॥) |

## नये जैनग्रन्थ ।

**द्यानतविलास या धर्मविलास**—कविवर द्यानतरायजीकी कविताकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं । सब ही जैनी उससे परिचित हैं । उनका यह ग्रन्थ जिसमें उनकी प्राय सब ही कविताओंका संग्रह है बड़ीही मिहनत, शुद्धता और सुन्दरतासे छपाया गया है । इसमें सारे जैनसिद्धान्तका रहस्य भरा हुआ है । मूल्य सिर्फ १) रु० । ( इसमे चरचाशतक, द्रव्यसंग्रह शामिल नहीं है क्योंकि ये ग्रन्थ जुदा छप चुके हैं । )

**चर्चाशतक**—मूलपद्य और सरल हिन्दी टीका सहित । मूल्य ॥)

**न्यायदीपिका**—मूल संस्कृत और सरल हिन्दी भाषाटीका । मूल्य ॥)

**गृहस्थ धर्म**—श्रावक धर्मका खुलाशा वर्णन है । मूल्य १=)

**जैनधर्मका महत्त्व**—अजैन विद्वानों, लेखकों, व्याख्यातायों द्वारा जैन धर्मका महत्त्व दिखलाया गया है । मूल्य बारह आने ।

**अनुभवानन्द**—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी रचित अध्यात्मका मनन करने योग्य ग्रन्थ है। मूल्य आठ आने।

**विद्वद्रत्नमाला**—जिनसेन, गुणभद्राचार्य आशाधर, अमितगतिसूरि, वादिराज सूरि, महाकवि मल्लिषेण, और समन्तभद्राचार्य इतने विद्वानोंका बडी खोजसे लिखा हुवा इतिहास। मूल्य दश आने।

**जिनेन्द्रमत दर्पण** प्रथम भाग—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी रचित। मूल्य एक आना।

**जैन जगदुत्पत्ति**—सृष्टि कर्त्ता खण्डन विषयक एक लेख। मूल्य )॥

**क्या ईश्वर जगत्कर्त्ता है**—अनेक युक्तियोंद्वारा जगत्का कोई कर्त्ता नहीं है यह बतलाया है। मूल्य )॥

**उपमिति भवप्रपंचा कथा** द्वितीय प्रस्ताव—चारोगतियोंके दु:खोंका वर्णन है। मूल्य पाच आने।

**प्रद्युम्न चरित्र**—प्रद्युम्नकी कथा का संक्षेपमें वर्णन। मूल्य छह आने।

**यशोधर चरित काव्य**—एकीभाव स्तोत्रके कर्त्ता वादिराज सूरिने यशोधर महाराजका सुन्दर चरित वर्णन किया है। ग्रन्थ मूल संस्कृतमें है। मूल्य आठ आने।

**यशोधर चरित**—उपर्युक्त ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद। मूल्य चार आने

**नागकुमार चरित**—सरल हिन्दीमें नागकुमारका चरित है। मूल्य छह आने।

**पवनदूत**—मूल सस्कृत और हिन्दी अनुवाद सहित। मूल्य चार आने।

**धर्मप्रश्नोत्तर**—सकलकीर्ति आचार्य कृत मूल ग्रन्थकी यह हिन्दी भाषाटीका है। इसमें प्रश्नोत्तर रूपसे श्रावकाचारका वर्णन किया गया है। मूल्य दो रु०।

**यात्रा दर्पण**—यह अभी हालहीमे छपा है। तीर्थक्षेत्रोंके सिवा और भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानोंका वर्णन है। एक तीर्थस्थानोका नकशा भी अलग दिया गया है जिससे यात्रियोंको बड़ा सुभीता हो गया है। मूल्य दो रु०।

**हनुमान चरित्र**—हनुमानजीका सक्षिप्त चरित सरल भाषामे लिखा गया है। मूल्य छह आने।

**प्रवचन सार**—मूल संस्कृत, छाया अमृतचन्द्र सूरि और जयसेन सूरि कृत दो संस्कृत टीका और—पं० मनोहरलालजी कृत भाषाटीका सहित। मूल्य तीन रु० ।

**गोम्मटसार कर्मकाण्ड**—मूल, संस्कृत छाया और पं०मनोहरलालजीकी बनाई हुई संक्षिप्त भाषा टीकासहित । मूल्य दो रुपया ।

**सत्यार्थ यज्ञ**—दूसरा नाम मनरंगलालजी कृत चौबीस तीर्थंकर पूजा । यह विधान अभी हाल हीं में छपा है । मूल्य आठ आने ।

**यशोधर चरित**—मूल प्राकृत और भाषाटीका सहित । मूल्य २)

**आराधनासार कथा कोश**—इसमे १०८ कथायें कवितामें वर्णन की गई हैं । मूल्य ३।।)

**जिनेन्द्रगुणगायन**—इसमे नाटककी चालके हुजूरी नई तर्जके पद, भजन, दादरा, ठुमरी, गजल, रेखता इत्यादि हैं । मूल्य दो आने ।

**जैन उपदेशी गायन**—इसमें नई तर्जके नाटकादिके ५३ भजनोंका संग्रह है । मूल्य ढाई आने ।

**हितोपदेश वैद्यक**—जैनाचार्य श्रीकण्ठसूरि रचित । मुरादाबाद निवासी पं० शंकरलालजी जैन वैद्यने इसकी भाषा टीका की है । मूल्य १)

**समरादित्यसंक्षिप्त**—श्वेताम्बराचार्यकृत प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ । इसका कथाभाग और कवित्व बहुत सुन्दर है । मूल्य ढाई रुपया ।

**जैनेन्द्र पंचाध्यायी**—मूल सूत्र पाठ मात्र । मूल्य चार आने ।

**जैनेन्द्र प्रक्रिया**—पुर्वार्द्ध, आचार्य वर्य गुणनन्दि रचित व्याकरण ग्रंथ मूल्य बारह आने ।

**सनातन जैन ग्रंथमाला**—प्रथम खण्ड, आप्तपरीक्षा और पत्रपरीक्षा संस्कृत टीका सहित हैं । मूल्य एक रु०

## अन्यान्य स्थानोंकी पुस्तकें ।

**स्वर्गीय जीवन**—अमेरिकाके प्रसिद्ध अध्यात्मिक विद्वान् राल्फ वाल्डो ट्राईनकी अंग्रेजी पुस्तकका अनुवाद । अनुवादक, सुखसम्पत्तिराय भंडारी उपसम्पादक सद्धर्म प्रचारक । पवित्र, शान्त, निरोगी, और सुखमय जीवन कैसे बन

सकता है, मानसिक प्रवृत्तियोंका शरीरपर और शारीरिक प्रवृत्तियोंका मनपर क्या प्रभाव पड़ता है आदि बातोंका इसमें बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन है। प्रत्येक सुखाभिलाषी स्त्रीपुरुषको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। मूल्य ॥=)

**स्वामी और स्त्री**—इस पुस्तकमें स्वामी और स्त्रीका कैसा व्यवहार होना चाहिए इस विषयको बड़ी सरलतासे लिखा है। अपढ़ स्त्रीके साथ शिक्षित स्वामी कैसा व्यवहार करके उसे मनोनुकूल कर सकता है और शिक्षित स्त्री अपढ पति पाकर उसे कैसे मनोनुकूल कर लेती है इस विषयकी अच्छी शिक्षा दी गई है। और भी गृहस्थी सबन्धी उपदेशोंसे यह पुस्तक भरी है। मूल्य दश आना।

**गृहिणीभूषण**—इस पुस्तकमें नीचे लिखे अध्याय हैं– १ पतिके प्रति पत्नीका कर्तव्य, २ पति पत्नीका प्रेम, ३ चरित्र, ४ सतीत्व एक अनमोल रत्न है, ५ पतिसे बातचीत करना, ६ लज्जाशीलता, ७ गुप्तभेद और बातोंकी चपलता, ८ विनय और शिष्टाचार, ९ स्त्रियोंका हृदय, १० पड़ोसियोंसे व्यवहार, ११ गृहसुखके शत्रु, १२ आमदनी और खर्च, १३ वधूका कर्तव्य, १४ लड़कियोंके प्रति कर्तव्य, १५ गंभीरता, १६ सद्भाव, १७ सन्तोष, १८ कैसी स्त्रीशिक्षाकी जरूरत है, १९ फुरसतके काम, २० शरीररक्षा, २१ सन्तान पालन, २२ गृह कर्म, २३ गर्भवतीका कर्तव्य और नवजात शिशुपालन, २४ विविध उपदेश, प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री इस पुस्तकसे लाभ उठा सकती है। भाषा भी इसकी सबके समझने योग्य सरल है। मूल्य आठ आने।

**कहानियोंकी पुस्तक**—लेखक लाला मुन्शीलालजी एम. ए. गवर्नमेंट पेन्शनर लाहौर। इसमें छोटी छोटी ७५ कहानियोंका संग्रह है। बालकों और विद्यार्थियोंके बड़े कामकी है। इसकी प्रत्येक कहानी मनोरंजक और शिक्षाप्रद है सुप्रसिद्ध निर्णयसागर प्रेसमें छपी है। मूल्य पाच आना।

**समाज**—वंग साहित्यसम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी बंगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद। इस पुस्तककी प्रशंसा करना व्यर्थ है। सामाजिक विषयोंपर पाण्डित्यपूर्ण विचार करनेवाली यह सबसे पहली पुस्तक है। पुस्तकमेंके समुद्रयात्रा, अयोग्यभक्ति, आचारका अत्याचार आदि दो तीन लेख पहले जैनहितैषीमें प्रकाशित हो चुके हैं। जिन्होंने उन्हें पढ़ा होगा वे इस ग्रन्थका महत्त्व समझ सकते हैं। मूल्य आठ आना।

**राष्ट्रीय सन्देश**—परमहंस श्रीस्वामी रामतीर्थजी एम. ए. के अंग्रेजी लेखों-
का अनुवाद। अनुवादक बाबू नारायणप्रसादजी अरोड़ा बी. ए. कानपुर। इस
पुस्तकमें स्वामी रामतीर्थजीके उत्तम उत्तम लेख और उनकी संक्षिप्त जीवनी है।
इनमेंसे अधिकतर लेख स्वामीजीने अमेरिकामे या अमेरिकासे आनेके पश्चात्
लिखे थे इसमे स्वामीजीका अमेरिकाका अनुभव भी मौजूद है। इन लेखोसे
स्वामीजीका देश प्रेम और असली वेदान्त टपकता है। पृष्ठ संख्या ९६
मूल्य छ. आने।

**स्वाधीन विचार**—श्रीयुक्त लाला हरदयालसिंहजी एम्. ए. के नामसे देशका
शिक्षित समुदाय अपरिचित नहीं। आज कल आप संयुक्त राज्य अमेरिकाके बड़े
भारी विश्वविद्यालयमें हिन्दू दर्शन शास्त्रके अध्यापक हैं। इस पुस्तकमें आपके ही
लेखोंका संग्रह है। इसमें निम्न लिखित ९ विषय हैं १ पंजाबमें हिन्दीके प्रचारकी
जरूरत, २ भाषा और जातिका सम्बन्ध, ३ धर्मका प्रचार, ४ अमेरिकामे भारत-
वर्ष, ५ यूरोपकी नारी, ६ राष्ट्रकी सम्पत्ति, ७ कुछ भारतीय आन्दोलनोंपर विचार,
८ भारतवर्ष और संसारके आन्दोलन, ९ महापुरुष। पृष्ठ संख्या ९४ मूल्य सिर्फ
चार आना।

**राज्यप्रबंध शिक्षा**—यह सुप्रसिद्ध देशी राजनीतिज्ञ ट्रावंकोर, बड़ोदा,
इन्दौरके भूतपूर्व दीवान सर टी. माधवरावके अँगरेजी ग्रन्थ 'माइनर हिंटस्'का
हिन्दी अनुवाद है। काशी नागरी प्रचारिणी सभाने छपवाया है। इसमें देशी
राजाओं और जमीदारोंको अपनी रियासतोंका प्रबन्ध कैसे करना चाहिए, प्रजाके
प्रति उनका क्या कर्तव्य है आदि बातोंका बड़ी सरल भाषामें वर्णन है। मूल्य ।॥)

**पश्चिमीतर्क**—इसे डी. ए. वी. कालेज लाहौरके प्रोफेसर लाला दीवानचन्द
एम. ए. ने लिखा है। इसमें पाश्चात्य संसारके दर्शनशास्त्रका प्रारंभसे लेकर
अबतकका इतिहास, उसका विकाश, उसके सिद्धान्त और दार्शनिकोंका इति-
हास आदि है। पुस्तक इतनी अच्छी है कि पंजाबके शिक्षाविभागने लेखकको
प्रसन्न होकर १५००) पारितोषिक दिया है। मूल्य एक रुपया।

**प्रेमप्रभाकर**—रूसके प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा टाल्सटायकी २३ कहानि-
योंका हिन्दी अनुवाद। प्रत्येक कहानी दया, करुणा, विश्वव्यापी प्रेम, श्रद्धा
और भक्तिके तत्त्वोंसे भरी हुई है। बालक स्त्रियाँ जवान बूढ़े सब ही इनसे
लाभ उठा सकते हैं। मूल्य १)

**धर्मदिवाकर**—इसमे मनुष्यके जीवनका आदर्श बतलाया गया है। ससारमे कितना दु ख है और परोपकार स्वार्थत्याग प्रेममें कितना सुख है, यह उसमें एक कथाके वहाने दिखलाया है। मूल्य ‖)

**नवजीवनविद्या**—जिनका विवाह हो चुका है अथवा जिनका विवाह होनेवाला है उन युवकोंके लिए यह विलकुल नये ढंगकी पुस्तक हाल ही छपकर तैयार हुई है। यह अमेरिकाके सुप्रसिद्ध डाक्टर काविनके ' दी सायन्स आफ ए न्यू लाईन' नामक ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद है। इसमे नीचे लिखे अध्याय हैं—१ विवाहके उद्देश्य और लाभ, २ किस उमरमें विवाह करना चाहिए, ३ स्वयंवर, ४ प्रेम और अनुरागकी परीक्षा, ५ स्त्रीपुरुषोंकी पसन्दगी, ७ सन्तानोत्पत्तिकारक अवयवोंकी वनावट, ९ वीर्यरक्षा, १० गर्भ रोकनेके उपाय, ११ ब्रह्मचर्य, १२ सन्तानकी इच्छा, १३ गर्भाधानविधि, १४ गर्भ, १५ गर्भपर प्रभाव, १६ गर्भस्थजीवका पालनपोषण, १७ गर्भाशयके रोग, १८ प्रसवकालके रोग, इत्यादि प्रत्येक शिक्षित पुरुष और स्त्रीको यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। हम विश्वास दिलाते हैं कि इसे पढकर वे अपना वहुत कुछ कल्याण कर सकेंगे। पक्की जिल्द मूल्य पौने दो रुपया।

**चन्द्रकांत प्र० भा०**—( वेदान्त ज्ञानका मुख्यग्रथ ) वम्बईप्रान्तके सुप्रसिद्ध ' गुजराती ' साप्ताहिक पत्रके गुजराती ग्रथका अनुवाद, अनेक ग्रंथोंका सार लेकर इस ग्रथकी रचना हुई है। वेदान्त जैसे कठिन विषयको वड़ी सहज रीतिसे समझाया है। मूल्य २॥)

**विद्यार्थीके जीवनका उद्देश**—क्या होना चाहिए उसका एक ग्रेटुएट द्वारा लिखित इगलिश लेखका हिन्दी अनुवाद। मूल्य एक आना।

**विचित्रवधूरहस्य**—वगसाहित्यसम्राट् कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके वगाली उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। रवीन्द्रवावूके उपन्यासोंकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं करुणारसपूर्ण उपन्यास है। मूल्य ॥ )

**स्वर्णलता**—वहुत ही शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। वंगाली भाषामें यह चौदह वार छपके छपके विक चुका है। हिन्दीमें अभी हाल ही छपा है। मूल्य १।)

**माधवीकंकण**—वड़ोदा राज्यके भूतपूर्व दीवान सर रमेशचन्द्रदत्तके वंगला उपन्यासका हिन्दी अनुवाद। मूल्य ॥।)

**षोड़शी**—बंगलाके सुप्रसिद्ध गल्पलेखक बाबू प्रभातकुमार मुख्योपाध्याय बैरिस्टर एँटलाकी पुस्तकका अनुवाद। इसमें छोटे छोटे १६ खण्ड उपन्यास हैं। मूल्य १)

**महाराष्ट्रजीवनप्रभात**—सर रमेशचन्द्र दत्तके बंगला ग्रन्थका नया हिन्दी अनुवाद, इंडियन प्रेसका। वीर रसपूर्ण बड़ा ही उत्तम उपन्यास है।॥ल)

**राजपूतजीवनसन्ध्या**—यह भी उक्त ग्रन्थकारका ही बनाया हुआ है। इसमें राजपूतोंकी वीरता कूट कूट कर भरी है। मूल्य बारह आने।

**सुशीलाचरित**—स्त्रियोपयोगी बहुत ही सुन्दर ग्रन्थ। मूल्य एक रुपया

**शेख चिल्लीकी कहानियाँ**। पुराने ढंगकी मनोरंजक कहानियाँ हाल ही छपी हैं। बालक युवा वृद्ध सबके पढ़ने योग्य। मूल्य ॥)

**ठोक पीटकर वैद्यराज**। यह एक सभ्य हास्यपूर्ण प्रहसन है। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी ग्रन्थके आधारसे लिखा गया है। हसते हंसते आपका पेट फूल जायगा। आजकल विना पढ़े लिखे वैद्यराज कैसे बन बैठते हैं, सोभी मालूम हो जायगा। मूल्य सिर्फ चार आना।

**आर्यललना**—सीता, सावित्री आदि २० आर्यस्त्रियोंका संक्षिप्तजीवन चरित। मूल्य ॥)

**बालाबोधिनी**—पाँच भाग। लड़कियोंको प्रारंभिक शिक्षा देनेकी उत्तम पुस्तक। मूल्य क्रमसे ≈), ≡), ।), ।-), ।≈)।

**आरोग्यविधान**—आरोग्य रहनेकी सरल रीतिया। मू०≡)॥

**अर्थशास्त्रप्रवेशिका**—सम्पत्तिशास्त्रकी प्रारंभिक पुस्तक। मूल्य ।)

**सुखमार्ग**–शारीरिक और मानसिक सुख प्राप्त करनेके सरल उपाय। मू० ।)

**कालिदासकी निरंकुशता**—महाकवि कालिदासके काव्यदोषोंकी समालोचना। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकृत। मूल्य ।)

**हिन्दीकोविदरत्नमाला**—हिन्दीके ४० विद्वानों और सहायकोंके चरित। मू० १॥)

**कर्तव्यशिक्षा**—लार्ड चेस्टर फील्डका पुत्रोपदेश। मूल्य १)

**रघुवंश**—महाकवि कालिदासके संस्कृत रघुवंशका सरल, सरस और भावपूर्ण हिन्दी अनुवाद। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी लिखित। मूल्य २)

# हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर-सीरीज् ।

हमने श्रीजैनग्रन्थरत्नाकरकी ओरसे हिन्दी साहित्यको उत्तमोत्तम ग्रन्थरत्नोंसे भूषित करनेके लिए उक्त ग्रन्थमाला निकालना शुरू की है। हिन्दीके नामी नामी विद्वानोंकी सम्मतिसे इसके लिए ग्रन्थ तैयार कराये जाते हैं । प्रत्येक ग्रन्थकी छपाई, सफाई, कागज़, जिल्द आदि लासानी होती है । स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं । जो ग्राहक होना चाहें उन्हें पहले आठ आना जमा कराकर नाम दर्ज करा लेना चाहिए । सिर्फ ५०० ग्राहकों की जरूरत है । अब तक इसमें जितने ग्रन्थ निकले हैं, उन सबहीकी प्राय सब ही पत्रोंने एक स्वरसे प्रशंसा की है । हमारे जैनी भाइयोंको भी इसके ग्राहक बनकर अपने ज्ञानकी वृद्धि करनी चाहिए । नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है —

## १ स्वाधीनता ।

यह हिन्दी साहित्यका अनमोल रत्न, राजनैतिक सामाजिक और मानसिक स्वाधीनताका अचूक शिक्षक, उच्च स्वाधीन विचारोंका कोश, अकाट्य युक्तियोंका आकर और मनुष्य समाजके ऐहिक सुखोंका पथप्रदर्शक ग्रन्थ है । इसे सरस्वतीके धुरन्धर सम्पादक पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदीने अँग्रेजीसे अनुवाद किया है । मूल्य दो रु० ।

## २ जॉन स्टुअर्ट मिलका जीवन चरित ।

स्वाधीनताके मूल लेखक और अपनी लेखनीसे युरोपमें नया युग प्रवर्तित कर देनेवाले मिल साहबका बड़ा ही शिक्षाप्रद जीवन चरित है । इसे जैनहितैषीके सम्पादक नाथूराम प्रेमीने लिखा है । मू० चार आने.

## ३ प्रतिभा ।

मानव चरितको उदार और उन्नत बनानेवाला, आदर्श धर्मवीर और कर्मवीर बनानेवाला हिन्दीमें अपने ढँगका यह पहला ही उपन्यास है । इसकी रचना बड़ी ही सुन्दर प्राकृतिक और भावपूर्ण है । मूल्य कपड़ेकी जिल्द १।), सादी १)

## ४ आँखकी किरकिरी।

जिन्हें अभी हाल ही सवालाख रुपयेका सबसे बड़ा पारितोषिक (नोबेल प्राइज) मिला है जो संसारके सबसे श्रेष्ठ महाकवि समझे गये हैं, उन बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रसिद्ध बंगला उपन्यास 'चोखेर बाली' का यह हिन्दी अनुवाद है। इसमे मानसिक विचारोंके, उनके उत्थान पतन और घात प्रतिघातोंके बड़े ही मनोहर चित्र खींचे हैं। भाव सौन्दर्यमे इसकी जोड़का दूसरा कोई उपन्यास नहीं। इसकी कथा भी बहुत ही सरस और मनोहारिणी है। मूल्य पकी जिल्दका १।।।) और सादीका १।।) रु०

## ५ फूलोंका गुच्छा।

इसमे ११ खण्ड उपन्यासो या गल्पोंका संग्रह है। इसके प्रत्येक पुष्पकी सुगन्धि, सौन्दर्य और माधुर्यसे आप मुग्ध हो जावेंगे। प्रत्येक कहानी जैसी सुन्दर और मनोरंजक है वैसी ही शिक्षाप्रद भी है। मूल्य दश आने।

## ६ मितव्ययिता।

यह प्रसिद्ध अँगरेज लेखक डा० सेमवल स्माइल्स साहबकी अँगरेजी पुस्तक 'थिरिफ्ट' का हिन्दी अनुवाद है। इसके लेखक हैं बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी ए। इस फिजूल खर्ची और विलासिताके जमानेमे यह पुस्तक प्रत्येक भारतवासी बालक युवा वृद्ध और स्त्रीके नित्य स्वाध्याय करने योग्य है। इसके पढ़नेसे आप चाहे जितने अपव्ययी हों, मितव्ययी संयमी और धर्मात्मा बन जावेंगे। बड़ी ही पाण्डित्य पूर्ण युक्तियोंसे यह पुस्तक भरी है। इसमें सामाजिक, नैतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय आदि सभी दृष्टियोंसे धन और उसके सदुपयोगोंका विचार किया गया है। स्कूलके विद्यार्थियोंको इनाममें देनेके लिए यह बहुत ही अच्छी है। जून महींनेमे तैयार हो जायगी।

## ७ चौबेका चिट्ठा।

बंगभाषाके सुप्रसिद्ध लेखक बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जीके लिखे हुए 'कमलाकान्तेर दफ्तर' का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक पं० रूपनारायण पाण्डेय। इस पुस्तकके ५—६ लेख जैनहितैषीमें 'विनोद विवेक—लहरी' के नामसे निकल

चुके हैं। जिन पाठकोंने उन्हें पढा है वे इस पुस्तककी उत्तमताको जान सकते हैं। हँसी दिल्लगी और मनोरंजनके साथ इसमें ऊँचेसे ऊँचे दर्जेकी शिक्षा दी है। देशकी सामाजिक धार्मिक और राजनैतिक बातोंकी इसमे बड़ी ही मर्मभेदी आलोचना है। हिन्दीमें तो इसकी जोड़का परिहासमय किन्तु शिक्षा पूर्ण ग्रन्थ है ही नहीं, पर दूसरी भाषाओंमें भी इस श्रेणीके बहुत कम ग्रन्थ हैं। एकबार पढ़ना शुरु करके फिर आप इसे मुश्किलसे छोड़ सकेंगे। मूल्य ग्यारह आने।

स्वदेश ( रवीन्द्र बाबूकृत ), शिक्षा ( रवीन्द्रकृत ) आदि और कई ग्रन्थ तैयार हो रहे हैं।

## क्या ईश्वर जगत्का कर्ता है ?

दूसरी बार छपकर तैयार है। इसके लेखक बाबू दयाचन्द जैन बी. ए. ने इस छोटेसे लेखमें अनेक युक्तियो द्वारा इस बातको सिद्ध किया है कि इस जगतका कोई कर्त्ता हर्त्ता नहीं है। ईश्वरको जगतका कर्त्ता माननेवाले आर्यसमाजी आदि मतावलम्बियोंमें बाटनेके लिए यह ट्रेक्ट बड़ा अच्छा है। मूल्य )॥ सैकड़ा २।।) मंगानेका पता—अजिताश्रम—लखनऊ

मिलनेका पता

**जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय**

हीराबाग, पो० गिरगांव—बम्बई।

छप गया ! छप गया !! छप गया !!

जैनियोंकी इच्छा पूर्ण ! अपूर्व आविष्कार !! न भूतो न भविष्यति !

# जैनार्णव

अर्थात्

१) रुपयामें १०० जैन पुस्तकें।

हमारी बहुत दिनोंसे यह इच्छा थी कि एक ऐसा पुस्तकोंका संग्रह छपाया जाय जो कि यात्रा व परदेशमें एक ही पुस्तक पास रहनेसे सब मतलब निकल जाया करे। आज हम अपने भाइयोंको खुशीके साथ सुनाते हैं कि उक्त पुस्तक " जैनार्णव " छपकर तैयार हो गया। हमने सर्व भाइयोंके लाभार्थ इन १०० पुस्तकोंको इकट्ठा कर छपाया है। [illegible] मूल्य सिर्फ १) रुपया है। [illegible] अलग [illegible] लीजी जावें तो करीब ३) रु० के होती हैं। [illegible] पुस्तकें [illegible] पुस्तक पास रखना काफी होगा। [illegible] और [illegible] चिकने [illegible] कागज पर सुन्दर [illegible] छपी है। [illegible] मजबूत और सुन्दर [illegible] [illegible] क्योंकि हमारे [illegible] [illegible] पुस्तकोंका [illegible] जैनियोंकी पुस्तकें [illegible]

[illegible]

[illegible] जैन [illegible]